



Impact Factor :
4.553

गीना देवी शोध संस्थान

द्वारा श्रीगंगानगर, राजस्थान से प्रसारित

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037

अक्टूबर 2023

Vol. 11, Issue 10(2)

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

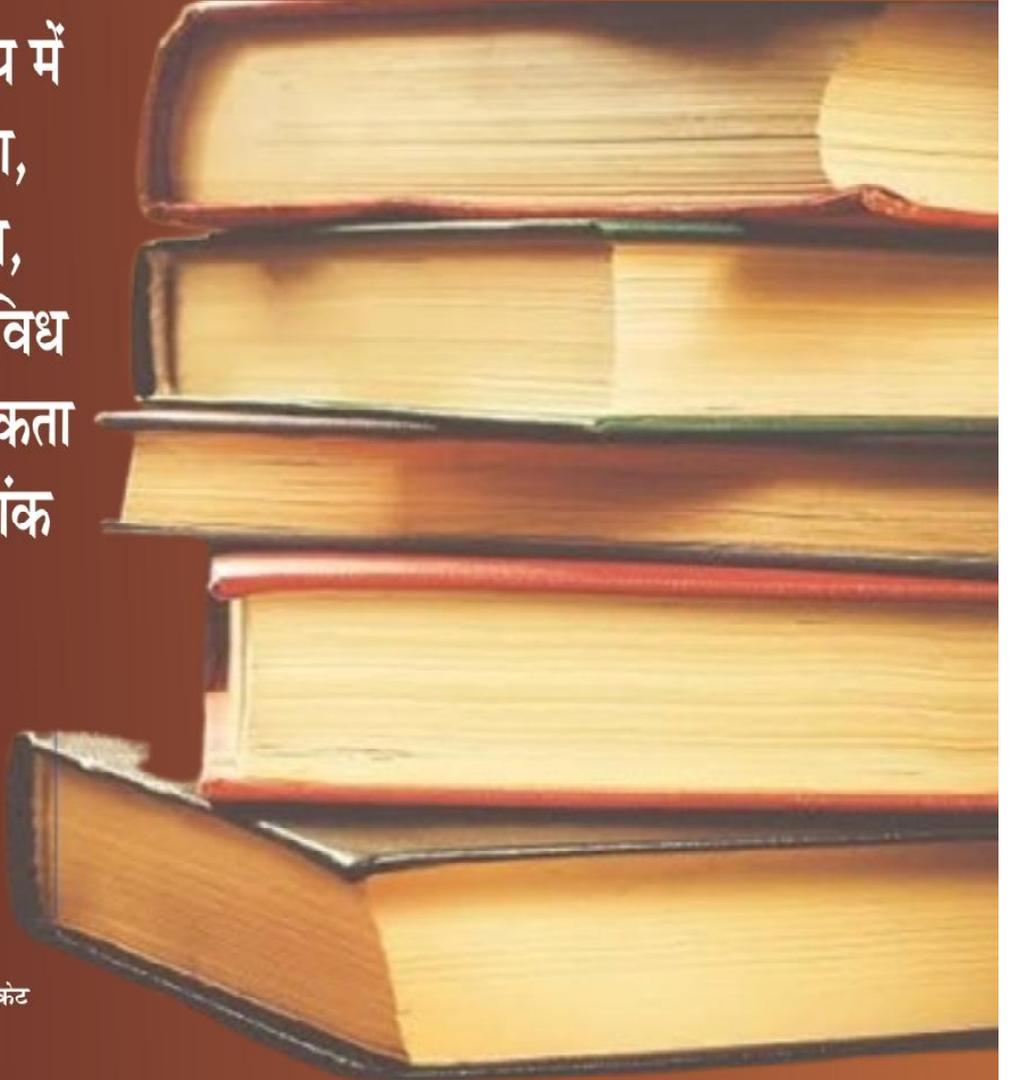
International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में
भारतीय शिक्षा,
साहित्य, कला,
संस्कृति एवं विविध
धर्मों की प्रांसगिकता
सेमिनार विशेषांक

विशेषांक संपादक :
डॉ. विकास शर्मा

संपादक :
डॉ. रेखा सोनी

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट



संगम SANGAM

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
A Peer Reviewed International Refereed Journal

वर्ष : 11

अंक : 10 (2)

अक्टूबर : 2023

आईएसएसएन : 23 21-803 7



संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष डॉ. विश्वकीर्ति

संरक्षक :
हरविन्द्र कमल, पटियाला

मार्गदर्शन :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

इन्जीनियर सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रॉनिक्स एंड
कम्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक
कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्रेष्ठ चौधरी
सीनियर मैनेजर, स्टेट बैंक ऑफ
इंडिया, साहिबजादा अजित सिंह
नगर, मोहाली, पंजाब।

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीनादेवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

विशेषांक सम्पादक :
डॉ. विकास शर्मा
गुरु विद्यापीठ, रोहतक।

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि.,
श्रीगंगानगर - 33 5001 (राज.)

सम्पादकीय कार्यालय :
6-एच 30, जवाहर नगर,
श्रीगंगानगर, राजस्थान - 33 5001

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)
डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय,
भिवानी (हरियाणा)
डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)
डॉ. अल्पना शर्मा
आईएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर
(राजस्थान)
डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)
डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)
डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।
श्री राकेश शंकर भारती
यूकेन।
श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।
डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।
डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय,
हिसार।
प्रो. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश
डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)
डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
तोशाम (हरियाणा)
डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर
(राजस्थान)
डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सुरतगढ़ (राजस्थान)
डॉ. मुकेश चंद
राजकीय महाविद्यालय, बाडी,
धौलपुर, राजस्थान।
डॉ. पवन ठाकुर
बरेली (उत्तर प्रदेश)
डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटेड किंगडम।
डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविद्यालय, अंकारा, टर्की
डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, टांटिया, वि.वि.

कानूनी सलाहकार : डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट, भिवानी
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट, पटियाला।

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्स, पुराना बस स्टेण्ड रोड, नया
बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
A Peer Reviewed International Refereed Journal
(Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा। सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

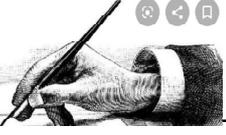
- Disclaimer :**
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
 2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
 3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originality of their views/opinions expressed in their articles.
 4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdiction only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

अनुक्रमिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. विकास	06-06
2.	अंबेडकर के शिक्षा संबंधी विचार	डॉ. श्रद्धा हिरकने, प्रोफेसर (डॉ.) के.पी. यादव	07-12
3.	सतत् विकास के लिए सामाजिक और राजनीतिक संरचनाएँ	डॉ. अजयपाल सिंह	13-19
4.	साहित्य की प्रासंगिकता की प्रक्रिया में पाठक	डॉ. अरूण प्रसाद रजक	20-23
5.	फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास साहित्य : एक अनुशीलन	दिगंत बोरा	24-28
6.	रत्नकुमार साम्भरिया की कहानियों में व्याप्त भ्रष्टाचार (‘झुनझुना’ कहानी के विशेष सन्दर्भ में)	बर्णाली गोगोई	29-33
7.	वैश्विक चेतना से युक्त है हिंदी साहित्य	डॉ. गोपीराम शर्मा	34-38
8.	प्राकृतिक सौंदर्य के सदर्भ में डॉ० राजकुमार निजात का काव्य	गुरप्रीत कौर	39-45
9.	वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय शिक्षा	डॉ. हेमलता	46-50
10.	आनन्दरामायण में द्वीपों का वर्णन	इतिश्री मिश्र, डॉ. विनीता पाण्डेय	51-55
11.	प्रथम पूज्य श्रीगणेश की प्रतीकात्मकता तथा प्रासंगिकता के साथ ह्वेतार्क गणपति के औषधीय जीवनदायी प्रयोग	जयकुमार ठाकर	56-61
12.	वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय धर्म की प्रासंगिकता	कौशल किशोर	62-65
13.	गांधीवादी शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता	डॉ. (श्रीमती) मंजुलता कश्यप	66-71
14.	वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता	डॉ. परमानंद पाटीदार	72-77
15.	आचार्य शंकरदेव (एक शरण) की भक्ति-भावना का स्वरूप	पिंकी देवी	78-82
16.	लोक कला	डॉ पूजा चौहान	83-87
17.	रामचरितमानस धार्मिक ग्रंथ की उपादेयता	कु. पूजा रमेशचन्द्र शुक्ला	88-92
18.	भारतीय संस्कृति हमारी पहचान	प्रीति चौहान	93-100
19.	वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय हिंदी कथा साहित्य में विद्यमान मानवीय व कौटुंबिक मूल्यों की प्रासंगिकता	राज कुमार	101-103

20. विश्व में हिन्दी भाषा का वैशिष्ट्य एवं भारतीय संस्कृति का स्वरूप	डॉ. रमेश चन्द्र टांक	104-109
21. वैदिक कालीन महिला शिक्षा	रामसेवक राम भगत	110-114
22. राष्ट्रीय नई शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. रश्मी मालगी	115-117
23. महाभारतकालीन धर्म की वर्तमान प्रासंगिकता	डॉ. रेखा गुप्ता	118-122
24. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय साहित्य और नई शिक्षा नीति	सब्दीप कौर	123-125
25. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय शिक्षा संस्कृति और साहित्य	डॉ. शक्ति	126-130
26. महाकवि कालिदास के नाटकों में वर्णित संस्कृति का बोध (वैश्विक परिप्रेक्ष्य में)	शिल्पी प्रसाद	131-137
27. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता और राहुल सांकृत्यायन	शीशा कुमारी	138-141
28. साहित्य के शाश्वत एवं प्रासंगिक मूल्यों की समाजवादी व्याख्या	डॉ. सुलेखा कुमारी	142-145
29. प्रेमचंद के साहित्य की प्रासंगिकता	डॉ. सुनीता राठौर	146-151
30. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति, धर्म, शिक्षा और साहित्य का प्रसार और प्रासंगिकता	टुम्पा शर्मा	152-156
31. Exploring Gender Dynamics in Indian Culture : An Analysis of Representation, Empowerment, and Global Implications	Dr. Ruchi Thakar	157-163
32. RELEVENCE OF BUDDHISM IN THE MODERN ERA	Dr. Kanchan Babarao Jambhulkar	164-171
33. Study of psychosocial distress among orphan children living in orphanage care in Udaipur	Dr. Bhavna Devi	172-183
34. पितृपक्ष में गया महात्म्य : एक अध्ययन	पूनम कुमारी	184-186



विशेषांक सम्पादक डॉ. विकास शर्मा की कलम से..

गुरु विद्यापीठ द्वारा अक्टूबर 2023 में “वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय शिक्षा, साहित्य, कला, संस्कृति एवं विविध धर्मों की प्रासंगिकता” विषय पर ऑनलाईन/ऑफलाईन माध्यम से आयोजित संगोष्ठी में प्रतिभागिता करने वाले शोधार्थियों, प्राध्यापकों ने जो शोध आलेख प्रस्तुत किए थे उन्हीं शोध आलेखों द्वारा विद्यापीठ द्वारा अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त संगम पत्रिका में हम प्रकाशित कर रहे हैं, क्योंकि अनेक बार हम देखते हैं कि बहुत सी संस्थाएं संगोष्ठियों का आयोजन करती हैं किन्तु संगोष्ठियों में प्रस्तुत शोध आलेखों का प्रकाशन समय पर नहीं कर पाती हैं। बहुत बार प्रतिभागी जब किसी संस्थान में मौखिक परीक्षा, साक्षात्कार के लिए जाता है तो उसे पूछा जाता है कि आपने जो शोध आलेख संगोष्ठी में प्रस्तुत किया जो प्रमाण-पत्र में टॉपिक दर्ज है वह किसी आईएसबीएन पुस्तक या आईएसएसएन मानक धारक पत्रिका में प्रकाशित है या नहीं? उस अवस्था में प्रतिभागी कोई जवाब नहीं दे पाता। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए गुरु विद्यापीठ ने यह निर्णय लिया है कि विद्यापीठ द्वारा जब भी कोई राष्ट्रीय/अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया जायेगा तो उनमें प्रस्तुत शोध आलेख को पुस्तक या पत्रिका में अवश्य प्रकाशित किया जायेगा ताकि प्रतिभागी लाभान्वित हो सके।

प्रस्तुत विशेषांक में भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों से प्रतिभागियों द्वारा उच्च कोटि के शोध आलेखों का प्रकाशन किया है ताकि भविष्य में यह विशेषांक साहित्य, शिक्षा, धर्म आदि विषयों पर शोध कार्य करने वाले शोधार्थियों और विद्वानों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। विविधताओं का देश, भारत अपनी विभिन्न संस्कृतियों के लिए जाना जाता है। भारत में गीत-संगीत, नृत्य, नाटक-कला, लोक परंपराओं, कला-प्रदर्शन, धार्मिक-संस्कारों एवं अनुष्ठानों, चित्रकारी एवं लेखन के क्षेत्रों में एक बहुत बड़ा संग्रह मौजूद है जो मानवता की ‘अमूर्त सांस्कृतिक विरासत’ के रूप में जाना जाता है। भारतीय धर्म या दक्षिण एशियाई धर्म ऐसे धर्म हैं जो भारतीय उपमहाद्वीप में उत्पन्न हुए हैं। ये ‘धर्म’ के सिद्धान्त पर आधारित हैं तथा विश्व के कई धर्मों के मूल हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में अलग-अलग समय पर हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म, अय्यावाज्ही धर्म अस्तित्व में आये तथा समय के साथ दुनिया भर में फैल गये।

प्राचीन भारतीय शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता थी कि इसमें गुरु अपने प्रत्येक विद्यार्थी पर पर्याप्त ध्यान दे सकता था। वार्तालाप एवं प्रश्नोत्तर के माध्यम से गुरु अपने विद्यार्थी की क्षमताओं और उसके सामर्थ्य के विषय में परिचय प्राप्त कर लेता था। अतः औपचारिक मूल्यांकन की बहुत आवश्यकता शेष नहीं रह जाती थी। भारतीय संस्कृति की कहानी एकता, समाधानों के समन्वय एवं प्राचीन परंपराओं के पूर्ण सहयोग तथा उन्नति की कहानी है। प्राचीनता, आध्यात्मिकता, समन्वयशीलता, बहुदेवोंपासना, धर्म एवं कर्म की प्रधानता, सहिष्णुता, सर्वांगीणता, ग्रहणशीलता, वर्णाश्रम व्यवस्था तथा सर्व-धर्म-समभाव भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएं हैं।

मैं कार्यकारिणी एवं आप सभी लेखकगणों का हृदय से धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने हमें अपना लेखनीय सहयोग प्रदान कर इस विशेषांक को बहुउपयोगी बनाने में सहयोग किया।



अंबेडकर के शिक्षा संबंधी विचार

डॉ. श्रद्धा हिरकने, शोधार्थी

प्रोफेसर (डॉ.) के.पी. यादव, शोध सलाहकार एवं कुलपति
मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़।

प्रस्तावना :-

विश्व में विद्वानों और शिक्षाविदों की संख्या बहुत है जिन्होंने शिक्षा के बारे में अपना अपना विचार रखा है सभी ने शिक्षा को अलग-अलग तरीके से परिभाषित किया है। शिक्षा को एक सम्मानित जीवन जीने के लिए आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने की विस्तृत प्रक्रिया या अभ्यास के रूप में काम करती है जो व्यक्ति विशेष को समाज से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है तथा समाज की संस्कृति की निरंतरता को बनाए रखती है। बच्चा शिक्षा द्वारा समाज के आधारभूत नियमों व्यवस्थाओं समाज के प्रतिमानों एवं मूल्यों को सीखता है। शिक्षा को किसी ने ज्ञान का तीसरा चक्षु कहा है, तो किसी ने "सा विद्या या विमुक्तये" कोई उसे शरीर और आत्मा को पूर्णता प्रदान करने वाली बताता है तो कोई आंतरिक शक्तियों को बाहर प्रकट करने वाली बताता है। कोई उसे व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व का विकास करने वाली प्रक्रिया बताता है। लेकिन डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने इन सब से हटकर कहा है कि "शिक्षा सामाजिक समरसता व मानवीय सद्गुणों का विकास करता है। उन्होंने यह भी कहा है कि शिक्षा शेरनी के दूध के समान है जिसे पीकर हर व्यक्ति दहाड़ने लगता है। भीमराव अंबेडकर विश्व प्रसिद्ध महापुरुष हैं जो भारत भूमि पर जन्म लेकर समाज उत्थान का बीड़ा उठाते हैं। वे कुशल राजनीतिज्ञ, कानूनतज्ञ, पत्रकार, समाज सुधारक, दलितोद्धारक, समाजशास्त्री, धर्मशास्त्री होने के साथ-साथ प्रबुद्ध शिक्षा शास्त्री भी थे। अंबेडकर ज्ञान या शिक्षा को जीवन के अंधकारको हराने वाला प्रकाश पथ मानते थे जिसके माध्यम से उन्होंने हजारों वर्षों से अंधकार में पड़े समाज को प्रकाशमान बनाया। उन्होंने देखा कि शूद्रों का शिक्षा के अभाव में हर प्रकार का शोषण हो रहा है। उनका जीवन पशु के समान हो गया है। वे जानते थे की शिक्षा प्राप्त कर विवेकी मानव देश व समाज की उन्नति में अपना योगदान दे सकता है। अंबेडकर मानते थे कि शोषित, पीड़ित, वंचितों के उत्थान का मार्ग शिक्षा के राजमार्ग से ही होकर गुजरता है। अंबेडकर पर गौतम बुद्ध व महात्मा फुले के विचारों और कार्यों का बड़ा गहरा प्रभाव था साथ ही महान शिक्षा शास्त्री जॉन ड्यूक अमेरिका में उनके गुरु थे जिनके विचारों का उन पर प्रभाव था। इस शोध आलेख के माध्यम से बाबा साहब भीमराव अंबेडकर का शिक्षा संबंधी क्या विचार था उसे प्रस्तुत किया गया है।

शिक्षा का अर्थ :-

"शिक्षा संस्कृति के 'शिस' धातु से बना है। अंग्रेजी में शिक्षा का पर्यायवाची शब्द एजुकेशन है। यह शब्द

लैटिन भाषा के तीन शब्दों से मिलकर बना है जो प्रायः समानार्थी समझे जाते हैं। यह शब्द है एजुकटेम, एजुसीयर और एजुकेयर। इन शब्दों का अर्थ अंदर से बाहर लाना, आगे बढ़ाना या आगे ले जाना है। एजुकेटर का अर्थ 'एक्ट आफ टीचिंग' से भी लगाया जाता है अतः शिक्षा का अर्थ सीखना, निर्देशन देना, बढ़ाना, आगे ले जाना आदि से लिया जाता है।¹

शिक्षा का वास्तविक अर्थ :-

“शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति को उसकी नैसर्गिक शक्तियों के विकास में सहायता पहुंचाती है तथा उसे अपने वातावरण से समायोजन स्थापित करने की योग्यता देती है। व्यक्ति को उसके व्यक्तिक व सामाजिक दायित्वों को निभाने की योग्यता, कौशल व ज्ञान प्रदान करती है। इस अर्थ में शिक्षा मस्तिष्क की शक्तियों का अभ्यास और विकास है।”²

शिक्षा की परिभाषा :-

- 1 प्लेटो के अनुसार – “शारीरिक मानसिक तथा बौद्धिक विकास की प्रक्रिया ही शिक्षा है।”³
- 2 अरस्तु के अनुसार – “शिक्षा एक सामाजिक और व्यावहारिक कला का रूप है।”⁴
- 3 डॉ. भीमराव अंबेडकर के अनुसार – “शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है।”⁵

बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर के अनुसार शिक्षा का महत्व :-

डॉ. अंबेडकर शिक्षा के महत्व से भली-भांति परिचित थे। दरअसल अछूत समझी जाने वाली जाति में जन्म लेने के चलते उन्हें अपने स्कूली जीवन में अनेक अपमानजनक स्थितियों का सामना करना पड़ा था। उनका विश्वास था की शिक्षा ही व्यक्ति में वह समझ विकसित करती है कि वह अन्य से अलग नहीं है, उसके भी समान अधिकार हैं। उन्होंने एक ऐसे राज्य निर्माण की बात रखी जहां संपूर्ण समाज शिक्षित हो। वे मानते थे की शिक्षा ही व्यक्ति की अंधविश्वास, झूठ पाखंड और आडंबर से दूर करती है। शिक्षा का उद्देश्य लोगों में नैतिकता व जनकल्याण की भावना विकसित करने का होना चाहिए। शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो विकास के साथ-साथ चरित्र निर्माण में भी योगदान दे सके। बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर के शिक्षा दर्शन को हम इस बात से भली-भांति समझ सकते हैं कि उनकी हर एक गतिविधि में शिक्षा को अवश्य स्थान दिया गया है। 27 सितंबर सन 1927 को महाड में एक महिला सम्मेलन में उन्होंने कहा था – “अपने पुत्रों, पति तथा संबंधियों को यदि वह शराबी हो तो भोजन न दो। अपने बच्चों को स्कूलों में भेजो। शिक्षा जितनी पुरुषों के लिए आवश्यक है, उतना ही महिलाओं के लिए अनिवार्य भी है। यदि आप पढ़ लिख जाएं तो बहुत उन्नति हो सकती है। जैसे आप होंगे वैसे ही आपके बच्चे। उनके जीवन को सच्चरित्र बनाओ क्योंकि पुत्र ऐसे होने चाहिए जो संसार में अपने चिन्ह छोड़ जाएं।

बाबा साहेब अंबेडकर के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य :-

बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर ने कहा था कि – “शिक्षा के बिना आपकी गुलामी और दरिद्रता दूर नहीं हो सकती। महात्मा ज्योतिबा फुले ने कहा था– “विद्या बिना सोचे की योग्यता चली गई, सोचने की योग्यता के अभाव में कोई नीति नहीं बन सकी, नीत के अभाव में आगे नहीं बढ़ पाए, जिसके कारण हमारी अर्थव्यवस्था गड़बड़ा गई और धन के अभाव में शुद्र समाज की दुर्दशा हुई इतना भारी नुकसान सिर्फ और सिर्फ विद्या यानी

शिक्षा नहीं मिलने के कारण हुई क्योंकि मनु के संविधान जाने की मनुस्मृति के अनुसार शुद्र समाज और स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। डॉ. आंबेडकर के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य लोगों में नैतिकता और सामाजिकता की छाप पैदा करना है। शिक्षा का उद्देश्य लोक कल्याण भी उन्होंने कहा है। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य मेहनत करके केवल पेट भरना ही नहीं बल्कि सुसंस्करित और स्वाभिमानी होना है। बुद्धिमान उसी को कहा जाता है जो अपने अर्जित ज्ञान का उपयोग समाज सेवा में लगता है। जो शिक्षित व्यक्ति केवल अपने लिए ही कमाते हैं, खाते हैं और मर जाते हैं उनमें और पशुओं में फर्क नहीं है। इसलिए बाबा साहब कहते हैं कि शिक्षा दो धारी तलवार है इसका उपयोग बहुत सावधानी से करना होता है अतः शिक्षा के साथ शील यानी आचरण भी जरूरी है। शील और आचरण के बिना मानव एक दानव के समान है। किसी व्यक्ति की शिक्षा गरीबी के कल्याण में बाधा है तो उसे व्यक्ति की शिक्षा समाज के लिए अभिशाप है इसलिए शिक्षा से ज्यादा शील का महत्व है। शील विहीन व्यक्ति घातक होता है। अच्छी शिक्षा शेरनी का दूध है जो इसे पियेगा वही शक्तिमान बनेगा, वही समझ में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकता है। इन शब्दों में शिक्षा कठोर संघर्ष से ही संभव है इसके लिए त्याग करना और कष्ट सहना पड़ता है। सुख सुविधाओं की तिलांजलि देनी पड़ती है। शिक्षण अभ्यास के दौरान आई अनेक बाधाओं को पार करना होता है। बाबा साहब भीमराव अंबेडकर कहते हैं कि जो माता-पिता अपने बच्चों की अच्छी शिक्षा का प्रबंध नहीं करते वह पशुओं के नर-मादा के समान होते हैं। शिक्षा ग्रहण के समय माता-पिता को चाहिए कि बच्चे पर शादी का बोझ ना लादे। शादी एक बोझ है यह बच्चों पर तब तक ना लादे जब तक बच्चे आर्थिक रूप से सक्षम ना हो जाए। इस प्रकार अच्छी शिक्षा यानी शील युक्त शिक्षा व्यक्ति में आत्मविश्वास आत्मनिर्भरता पैदा करती है। बाबा साहब अंबेडकर कहते हैं कि बच्चों को स्नातक शिक्षा के बाद ही अपना ध्यान राजनीति के क्षेत्र में लगाना चाहिए। दलित विद्यार्थियों को बाबा साहब संदेश देते हैं कि उन्हें अवसर मिलने पर सवर्णों से भी आगे शिक्षा क्षेत्र में बढ़ाना चाहिए। उन्हें हर संभव समाज सेवा के क्षेत्र में हमेशा तैयार रहना चाहिए और समय आने पर समाज का कुशल नेतृत्व करना चाहिए। बाबा साहब अंबेडकर शिक्षा का राष्ट्रीयकरण चाहते थे जिससे देश में एक ही तरह की शिक्षा व्यवस्था लागू हो। इस तरह से बाबा साहब अंबेडकर ने शिक्षा का उद्देश्य तय किया है।

बाबा साहब अंबेडकर के अनुसार पाठ्यक्रम :-

डॉ. भीमराव अंबेडकर कोई शिक्षा शास्त्री की भांति किसी निश्चित पाठ्यक्रम की योजना प्रस्तुत नहीं की, उन्होंने शिक्षा जीवन का अभिन्न अंग माना है और उन्होंने कहा है कि शिक्षा के द्वारा समाज में सामाजिक क्षमता व लोकतांत्रिक भावना का विकास हो ऐसे विषयों को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाए। बाबा साहब के अनुसार विद्यालय एक कारखाना है जिसमें श्रेष्ठ नागरिक तैयार किए जाते हैं इसलिए इस कारखाने के मिस्त्रियों को होशियार होना चाहिए अर्थात् मिस्त्री जितना होशियार या जानकार होगा उतना ही अच्छा माल (प्रोडक्ट) बनकर कारखाने से निकलेंगे। कहने का अभिप्राय शिक्षक लोग मिस्त्रियों के समान हैं और शिक्षक जितने होशियार और गुणवान होंगे उसी प्रकार से विद्यार्थी भी होशियार और गुणवान होंगे जिसके आधार पर अच्छे समाज का निर्माण होगा। बाबा साहब अंबेडकर विद्यालय को समाज का लघु रूप मानते थे इसलिए विद्यालय में उन्होंने सामूहिक शिक्षा पर बल दिया विद्यालय में स्वतंत्रता, समता और भ्रातृत्व के वातावरण पर बल दिया। विद्यालय में विद्वान और शील का निर्माण होना चाहिए।

बाबा साहब अंबेडकर के शिक्षक शिक्षार्थी संबंध में विचार :-

डॉ. अंबेडकर ने शिक्षक की तुलना सारथी से की है, इसलिए एक सारथी को अपने रथ चलाने के लिए जितना होशियार और शीलवान होना चाहिए वैसे ही शिक्षक को अपने विद्यालय में विद्यार्थियों को गुणवान और शीलवान बनाने की क्षमता होनी चाहिए, यह तभी संभव है जब यह विशेषता स्वयं में होगी। वे मानते हैं कि शिक्षक को ज्ञान पिपासु, आत्मविश्वासी, विषय का मर्मज्ञ, लोकतांत्रिक व सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण, भेदभावपूर्ण व्यवहार से रहित, उदार हृदय, निष्पक्षतापूर्ण मूल्यांकनकर्ता नैतिक गुणा से युक्त होना चाहिए तभी वह अपने विद्यालय रूपी लघु समाज में अच्छे नागरिक जिसमें शील भरा हो का निर्माण कर सकता है। इसी प्रकार से शिक्षार्थी के संबंध में बाबा साहब अंबेडकर ने कहा है कि उसे जिज्ञासु प्रकृति का होना चाहिए तथा ज्ञान प्राप्त करने की लालसा से युक्त होना चाहिए। तभी वह अपने शिक्षक के द्वारा दिए गए ज्ञान को ग्रहण कर अपने जीवन को सार्थक बना सकेगा।

डॉ अंबेडकर के अनुसार स्त्री शिक्षा :-

डॉ. अंबेडकर का मानना था कि "समाज का आधार स्त्री पुरुष दोनों है। अतः यह दोनों एक दूसरे के पूरक है एवं समाज के विकास के लिए दोनों का समान महत्व है। परंतु फिर भी स्त्री को सामाजिक जीवन में पुरुष के समान अधिकार व स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। वह घर की चार दीवारी तक सीमित है जबकि सामाजिक व व्यापारिक दृष्टि से पुरुष की अपेक्षा स्त्री की भूमिका हमेशा अधिक सहयोगी व लाभदाई रही है।"⁶ डॉ. अंबेडकर महिलाओं के पतन के लिए मनु को उत्तरदाई मानते थे। उनके अनुसार मनु ने ब्राह्मणवाद को मजबूत करने के लिए महिलाओं को सहभागी नहीं अपितु दासी बना दिया था एवं उन्हें शिक्षा, संपत्ति एवं स्वतंत्रता से वंचित कर दिया जिसके कारण महिलाएं शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाईं और अज्ञानता रूपी दलदल में फस गईं। "स्त्रियों की अज्ञानता का प्रमुख कारण वह अशिक्षा को मानते थे क्योंकि धर्म ग्रंथों में स्त्री शिक्षा का विरोध किया गया था। वह मनु के इस बात का विरोध करते थे कि यदि स्त्री शिक्षा प्राप्त करेगी तो कुमार्ग पर चलेगी और अकाल वैधव्य को प्राप्त करेगी।"⁷ डॉ. अंबेडकर ने प्रारंभ से ही नारी शिक्षा एवं स्वतंत्रता की पुरजोर वकालत की। उनका मानना था कि लड़कों के साथ लड़कियों को भी शिक्षा दी जाए तो देश की प्रगति होगी और इसलिए नारी शिक्षा की शुरुआत उन्होंने अपने घर से की। सर्वप्रथम अपनी अनपढ़ पत्नी रमाबाई को सतत प्रोत्साहित कर पढ़ना लिखना सिखाया जिससे जब वह विदेश आगे की पढ़ाई करने गए तो रमाबाई उन्हें पत्र लिखकर भेजती थी तथा डॉ अंबेडकर के पात्र स्वयं पढ़ लेती थी। ऐसे ही बाबा साहब अंबेडकर ने भारतीय नारी में शिक्षा चेतना जागृत करने एवं उन्हें अधिकार दिलाने के लिए आजीवन संघर्ष किया। "डॉ. अंबेडकर द्वारा संवैधानिक, समानता एवं अधिकारों को स्थापित करने के अतिरिक्त महिलाओं के उत्थान हेतु भी ऐसे प्रावधान निर्धारित किए गए कि उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समानता मिले एवं उसका हित साधन हो। इन प्रावधानों पर समय-समय पर गहन विचार किया गया। डॉ. अंबेडकर के कार्यों से महिलाओं ने भारत में संवैधानिक हक प्राप्त किया। डॉ. अंबेडकर का मानना था कि महिलाएं कानून का संरक्षण लेकर समाज में आत्म सम्मान के साथ आत्मनिर्भर होकर स्वतंत्रता पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकती है। उन्होंने विधि के रूप में महिलाओं के लिए हिंदू कोड बिल का निर्माण किया परंतु उनके कार्यकाल में संसद में पारित न हो सका। परंतु बाद में इस बिल के अनुसार महिलाओं को अधिकार एवं समानता प्राप्त हुई।"⁸

डॉ. आंबेडकर के अनुसार शिक्षण विधियां :-

डॉ. आंबेडकर के अनुसार प्रचलित शिक्षण विधियां के बजाय लोकतांत्रिक विधि होना चाहिए। वे प्रचलित शिक्षण विधियों में आमूल चूल परिवर्तन करना चाहते थे। उनके अनुसार मातृभाषा ही शिक्षण का माध्यम होना चाहिए। लोकतांत्रिक विधि से सभी विद्यार्थी रुचि लेकर अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकेंगे। शिक्षक केवल पुस्तकिए विद्वान ना हो बल्कि स्पष्ट आवाज में उसका व्यक्तित्व हो। उनके अनुसार शिक्षण में सजीवता लाने के लिए बालक की रुचियों व संवेगों पर आधारित शिक्षण विधि होना चाहिए और इसी कारण जब वह स्वयं कॉलेज में शिक्षण कराए तो अमिट छाप छोड़ी। वे तुलनात्मक विधि, अनुसंधानात्मक विधि, विश्लेषणात्मक विधि के हिमायती थे इस लिहाज से वे खोज, उपागम, समस्या समाधान विधि तथा वैज्ञानिक विधि के द्वारा शिक्षण करने के पक्ष कार थे।

डॉ. आंबेडकर के अनुसार विद्यालय :-

डॉ. आंबेडकर विद्यालय को सामाजिक संस्था मानते थे। समाज अपने सदस्यों की शिक्षा के लिए इनका निर्माण करता है। उनके अनुसार विद्यालय ऐसा हो जिससे समाज को नया रूप दिया जा सके इसलिए वह परंपरागत विद्यालय के स्वरूप में परिवर्तन चाहते थे क्योंकि उनमें पूर्व निर्धारित परंपराओं और आदर्शों का ही ज्ञान कराया जाता है। वे विद्यालय को समाज का लघु रूप मानते थे इसलिए वे सभी की शिक्षा का अनिवार्य होने के पक्षधर थे। उनके अनुसार विद्यालय में केवल 12 खड़ी ही ना पढ़ाया जाए बल्कि उनके मन को सुसंस्कारित करके समाज के हितोपयोगी बनाने के लिए होनी चाहिए। वे कहते हैं कि विद्यालय एक कारखाना है जिसके मिस्त्री को होशियार होना चाहिए अर्थात् शिक्षक को होशियार होना चाहिए जो कि समाजोपयोगी गुणों का विकास विद्यार्थियों में कर सके। बाबा साहब के अनुसार सामूहिक शिक्षा पद्धति लागू होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को आत्मानुभूति व आत्मोन्नति व भौतिक विकास करना हो। उन सबके लिए सामाजिक आदर्शों, मूल्यों और नैतिकता पूर्ण उच्च सामाजिक पर्यावरण की आवश्यकता है जो कि विद्यालयों में ही संभव है। विद्यालय में ही विद्वान व शील का निर्माण करते हैं।

निष्कर्ष :-

बाबा साहब आंबेडकर का संपूर्ण जीवन सतत संघर्ष से भरा हुआ है। उन्होंने समस्त मानव कल्याण के साथ ही दलित व महिला कल्याण के लिए संपूर्ण ताकत के साथ पूरे जीवन भर संघर्ष किया जिसका परिणाम यह है कि आज भारत में महिलाओं व दलितों को संविधान के माध्यम से काफी अधिकार मिले जिसका लाभ उठाते गए और सम्मानजनक जीवन यापन करने लगे हैं। बाबा साहब ने सभी के लिए शिक्षा को अनिवार्य बनाया है लेकिन खासकर महिलाओं और दलितों के बारे में उन्होंने कहा कि शिक्षा ही वह हथियार है जिसका उपयोग अपने जीवन में करें तो देश में अपना जीवन सम्मान पूर्वक व्यतीत कर पाएंगे। उनके द्वारा शिक्षा के लिए बहुत से कार्य किए गए हैं जिनका लाभ दलित व महिलाएं उठाकर आज अंधविश्वास और रूढ़िवाद से ऊपर उठकर तर्कपूर्ण निर्णय करते हैं तथा उचित अनुचित का भी पता करते हैं यह भी महसूस करते हैं कि कहां उसका शोषण होता है कहां उसके साथ अन्याय होता है और इन सब से निपटने के लिए अपने शिक्षित होने के लाभ उठाते हुए उचित उपाय के साथ अन्याय के खिलाफ संघर्ष करते हैं।

अंत में स्पष्ट रूप से गर्व के साथ कहा जा सकता है कि बाबा साहब आंबेडकर ने शिक्षा को सब लोगों

के लिए अनिवार्य बताया तथा शिक्षा को परम पूज्य आराध्य मानते हुए उन्होंने कहा कि – शिक्षा के बिना मनुष्य न शांति पा सकता है और ना ही मनुष्यता। जिस प्रकार वृक्ष को सजीव रखने के लिए भोजन की जरूरत है ठीक उसी प्रकार सामाजिक अस्तित्व और संरचना के लिए शिक्षा की जरूरत है। अतः मनुष्य को स्वयं शिक्षित रहते हुए दूसरों को भी शिक्षित करते रहना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा है कि जो भी शिक्षित व्यक्ति अपने शिक्षा का लाभ समाज को ना दिलाए वह समाज के लिए अभिशाप है। इसी प्रकार से बाबा साहब अंबेडकर के समय उन्होंने शिक्षा के संबंध में जो भी विचार रखे थे वे सभी विचार वर्तमान में उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उस समय थे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि डॉ. आंबेडकर के शिक्षा संबंधी महान विचार हर काल में शिक्षा व्यवस्था का मार्गदर्शन करने में सहायक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बैस डॉ. एच. एस. "शिक्षा की रूपरेखा" आशीष पब्लिकेशंस हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 07
2. वही, पृष्ठ संख्या 89
3. कालिया एच.एल.एन. के सिंह, रीता सिंह, इन साइक्लोपीडिया ऑफ द वर्ल्ड साइल्लोजिक्स", पृष्ठ संख्या 1240
4. चौबे डॉ. सरयू प्रसाद, "शिक्षा दर्शन", दि मैकमिलन क. ऑफ इंडिया लिमिटेड दिल्ली 1976, पृष्ठ संख्या 26
5. नैमिशराय मोहन दास 1996 "बाबा साहब ने कहा था" आनंद साहित्य सदन, अलीगढ़।
6. पासवान प्रज्ञा चक्षु, "भारत रत्न डॉक्टर अंबेडकर : सुकून, सृष्टि और दृष्टि" भावना प्रकाशन, दिल्ली 2002, पृष्ठ संख्या 344
7. सिंह तेज, "अंबेडकरवादी विचारधारा और समाज" स्वराज प्रकाशन दिल्ली 2008, पृष्ठ संख्या 194
8. यादव हेमा, "डॉ. भीमराव अंबेडकर संस्कार साहित्य" नई दिल्ली 2009, पृष्ठ संख्या 141
9. नैमिशराय मोहन दास, "डॉ अंबेडकर का शिक्षा दर्शन परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन" संस्थान 17 बी, अरविंद मार्ग नई दिल्ली, वर्ष 6 अंक 1-2 अप्रैल, अगस्त 1999, पृष्ठ संख्या 110
10. नायक डॉ. शशि का आलेख दि मासिक रचना मध्य प्रदेश शासन उच्च शिक्षा विभाग एवं मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी का सम्वेत उपक्रम, अंक 38, 39 सितंबर-दिसंबर 2002



सतत् विकास के लिए सामाजिक और राजनीतिक संरचनाएँ

डॉ. अजयपाल सिंह

भूगोल विभाग, किसान पी. जी. कॉलेज, सिंभावली, हापुड़।

अमूर्त :-

यह शोध पत्र सतत् विकास के लिए सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं के एकीकरण का पता लगाता है। यह उनकी परस्पर निर्भरता का विश्लेषण करता है, चुनौतियों की पहचान करता है और उनकी प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए रणनीतियाँ प्रस्तुत करता है। वैश्विक स्थिरता लक्ष्यों को प्राप्त करने में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की महत्वपूर्ण भूमिका पर भी चर्चा की गई है। केस अध्ययन वास्तविक दुनिया की सफलताओं और चुनौतियों का वर्णन करते हैं। यह पेपर सहभागी लोकतंत्र, शिक्षा, मजबूत नियमों और प्रोत्साहनों की वकालत करता है। यह नागरिक समाज की भूमिका और सूचित, संलग्न नागरिकों की अनिवार्यता पर जोर देता है। पर्यावरणीय संकटों और असमानता का सामना कर रही दुनिया में, स्थायी भविष्य के लिए सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं में सामंजस्य बनाना आवश्यक है।

परिचय :-

सतत् विकास, अपने सार में, मानव समाज और जिस ग्रह पर हम रहते हैं उसकी बेहतरी के लिए एक गहन आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करता है। यह एक ऐसी दृष्टि है जो भविष्य के संरक्षण के साथ वर्तमान की जरूरी जरूरतों के बीच सामंजस्य बिठाने का प्रयास करती है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि आने वाली पीढ़ियों को एक ऐसी दुनिया विरासत में मिले जो समृद्ध, न्याय संगत और पर्यावरण की दृष्टि से लचीली हो। सतत् विकास की खोज एक अलग प्रयास नहीं है, बल्कि एक जटिल और बहुआयामी चुनौती है जिसके लिए दुनियाभर के देशों, समुदायों और व्यक्तियों के ठोस प्रयासों की आवश्यकता है। यह शोध पत्र सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं के बीच जटिल अंतर संबंध और सतत् विकास को आगे बढ़ाने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका का पता लगाने की यात्रा पर निकलता है। यह इस मूल प्रश्न पर प्रकाश डालता है कि कैसे ये संरचनाएँ स्थिरता लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में प्रगति को सुविधाजनक बना सकती हैं या बाधित कर सकती हैं।

इसके बाद के पृष्ठों में, हम केस अध्ययनों का पता लगाएंगे, महत्वपूर्ण चुनौतियों का विश्लेषण करेंगे, रणनीतियों का प्रस्ताव करेंगे, और सतत् विकास की प्राप्ति में सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं की भूमिका

की गहरी समझ को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सिफारिशों पर विचार करेंगे।

सामाजिक संरचना और सतत् विकास :-

सामाजिक संरचनाएँ वह आधारशिला हैं जिन पर समाज का निर्माण होता है। वे रिश्तों, संस्थानों, मानदंडों और मूल्यों के जटिल जाल को शामिल करते हैं जो किसी समुदाय या राष्ट्र के भीतर मानवीय संबंधों और अनुभवों को आकार देते हैं।

1. समानता और समावेशिता :-

सामाजिक संरचनाएं सामाजिक समानता और समावेशिता को बढ़ावा देने में सहायक हैं, जो सतत् विकास के आवश्यक स्तंभ हैं। समानता यह सुनिश्चित करती है कि विकास का लाभ समाज के सभी वर्गों के बीच उचित रूप से वितरित किया जाए, चाहे उनकी पृष्ठ भूमिया परिस्थिति कुछ भी हो। समावेशी सामाजिक संरचनाएं एक ऐसा वातावरण बनाती हैं जहां हाशिए पर रहने वाले समूहों को अवसरों और संसाधनों तक समान पहुंच मिलती है, जिससे असमानताएं कम होती हैं और सामाजिक एकजुटता को बढ़ावा मिलता है।

2. शिक्षा और जागरूकता :-

शिक्षा, एक मौलिक सामाजिक संरचना के रूप में, व्यक्तियों को सूचित निर्णय लेने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल प्रदान करती है। एक शिक्षित आबादी के स्थायी प्रथाओं में संलग्न होने, पर्यावरण संरक्षण की वकालत करने और नागरिक प्रक्रियाओं में भाग लेने की अधिक संभावना है। शिक्षा गरीबी के चक्र को तोड़ने और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो स्थिरता के साथ जुड़ी हुई है।

3. स्वास्थ्य देखभाल और कल्याण :-

स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच और एक मजबूत स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली सामाजिक संरचनाओं के अभिन्न अंग हैं जो सतत् विकास में योगदान करते हैं। स्वस्थ व्यक्ति उत्पादक गतिविधियों में संलग्न होने, आर्थिक विकास का समर्थन करने और सामाजिक सुरक्षा जाल पर बोझ कम करने के लिए बेहतर ढंग से सुसज्जित होते हैं। इसके अलावा, निवारक स्वास्थ्य देखभाल और सार्वजनिक स्वास्थ्य पहल पर ध्यान केंद्रित करने से पर्यावरणीय स्वास्थ्य जोखिमों को कम किया जा सकता है।

4. सामुदायिक जुड़ाव :-

सामाजिक संरचनाएं सामुदायिक जुड़ाव और सामूहिक कार्रवाई की सुविधा प्रदान करती हैं, जो जमीनी स्तर पर पर्यावरणीय और सामाजिक चुनौतियों का समाधान करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। संगठित और सशक्त होने पर समुदाय स्थायी प्रथाओं को लागू कर सकते हैं, पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा दे सकते हैं और नीति निर्माण में अपने हितों की वकालत कर सकते हैं।

सतत् विकास के लिए राजनीतिक संरचनाएँ :-

राजनीतिक संरचनाएँ वे प्रणालियाँ और संस्थाएँ हैं जो समाजों को नियंत्रित करती हैं, शक्ति के वितरण, नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन और व्यवस्था के रख रखाव की देखरेख करती हैं। वे सतत् विकास के पाठ्यक्रम को आकार देने में सहायक होते हैं, क्योंकि वे निर्धारित करते हैं कि संसाधनों का आवंटन कैसे किया

जाता है, नियम कैसे लागू किए जाते हैं और आर्थिक विकास से लेकर पर्यावरण संरक्षण तक के मुद्दों पर निर्णय लिए जाते हैं।

1. संसाधन आवंटन :-

सरकारें तय करती हैं कि शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, बुनियादी ढांचे और पर्यावरण संरक्षण सहित विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों को कैसे वितरित किया जाए। ये निर्णय सीधे स्थिरता की दिशा में प्रगति को प्रभावित करते हैं।

2. विनियमन और प्रवर्तन :-

राजनीतिक संरचनाएं ऐसे नियम स्थापित और लागू करती हैं जो उद्योगों, व्यवसायों और व्यक्तियों को टिकाऊ प्रथाओं की ओर मार्गदर्शन करते हैं। उदाहरण के लिए, पर्यावरणीय नियम औद्योगिक गतिविधियों के नकारात्मक प्रभाव को कम कर सकते हैं।

3. सहभागी लोकतंत्र :-

यह सुनिश्चित करना कि नागरिकों को निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में भाग लेने का अवसर मिले, विविध दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करने और स्थिरता पहल के स्वामित्व को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है।

4. कोस्टारिका की पर्यावरण नीतियां :-

पर्यावरणीय स्थिरता के प्रति कोस्टारिका की प्रतिबद्धता का उदाहरण इसकी राजनीतिक संरचनाएं हैं। देश ने ऐसी नीतियां लागू की हैं जो इसकी समृद्ध जैव विविधता की रक्षा करती हैं और पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास दोनों में योगदान करते हुए पारिस्थितिक पर्यटन को बढ़ावा देती हैं।

5. वनों की कटाई पर ब्राजील की प्रतिक्रिया :-

ब्राजील की राजनीतिक संरचनाओं को आर्थिक हितों के कारण अमेज़न वर्षा वन में वनों की कटाई को संबोधित करने में चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। इस मामले की जांच प्रभावी राजनीतिक संरचनाओं के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण के साथ आर्थिक विकास को संतुलित करने के महत्व पर प्रकाश डालती है।

सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं का अंतर्विरोध :-

सामाजिक और राजनीतिक संरचनाएं अलग-अलग संस्थाएँ नहीं हैं, बल्कि जटिल रूप से एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं, प्रत्येक दूसरे पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। यह चौराहा सतत् विकास की दिशा को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है :-

1. नीति निर्माण :-

सामाजिक संरचनाएँ, जैसे जनमत और सांस्कृतिक मूल्य, राजनीतिक एजेंडे को प्रभावित कर सकते हैं। सतत् विकास से संबंधित नीतियां बनाते समय राजनीतिक नेता अक्सर सामाजिक मांगों और मूल्यों पर प्रतिक्रिया देते हैं।

2. संसाधन आवंटन :-

सामाजिक संरचनाएं राजनीतिक संस्थानों पर स्थिरता लक्ष्यों के अनुरूप संसाधनों को आवंटित करने के

लिए दबाव डाल सकती हैं। उदाहरण के लिए, नवीकरणीय ऊर्जा की सार्वजनिक मांग स्वच्छ ऊर्जा प्रौद्योगिकियों में सरकारी निवेश को प्रभावित कर सकती है।

3. नीति परिवर्तन में सार्वजनिक जागरूकता और वकालत की भूमिका :-

शैक्षणिक संस्थानों और मीडिया सहित सामाजिक संरचनाओं की स्थिरता के मुद्दों के बारे में सार्वजनिक जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका है। सूचित नागरिकों के वकालत में शामिल होने और नीतिगत बदलावों की मांग करने की अधिक संभावना है। जन जागरूकता अभियान, विरोध प्रदर्शन और वकालत के प्रयास स्थिरता को प्राथमिकता देने के लिए राजनीतिक संरचनाओं पर दबाव बना सकते हैं। निर्वाचित अधिकारी अक्सर अपने मतदाताओं की मांगों पर प्रतिक्रिया देते हैं।

चुनौतियाँ और बाधाएँ :-

1. समन्वय की कमी :-

प्राथमिक चुनौतियों में से एक सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं के बीच समन्वय और तालमेल की कमी है। अक्सर, ये दोनों क्षेत्र स्वतंत्र रूप से संचालित होते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप खंडित नीतियाँ और स्थिरता के मुद्दों पर अपर्याप्त प्रतिक्रियाएं होती हैं।

2. भ्रष्टाचार :-

राजनीतिक संरचनाओं के भीतर भ्रष्टाचार संसाधनों को सतत विकास पहल से दूर कर सकता है। पर्यावरण संरक्षण, गरीबी उन्मूलन, या स्वास्थ्य देखभाल के लिए इच्छित धनराशि को भ्रष्ट आचरण के माध्यम से निकाल लिया जा सकता है, जिससे प्रगति में बाधा आ सकती है।

3. संसाधन असमानताएँ :-

दुनिया के कई क्षेत्रों को स्वच्छ पानी, कृषि योग्य भूमि और ऊर्जा जैसे महत्वपूर्ण संसाधनों तक पहुँच में असमानताओं का सामना करना पड़ता है। इन संसाधनों तक पहुँच की कमी सामाजिक और आर्थिक विकास को सीमित कर सकती है।

4. राजनीतिक संघर्ष :-

राजनीतिक संघर्ष, घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय दोनों, सतत विकास लक्ष्यों से ध्यान और संसाधनों को भटका सकते हैं। संघर्ष सामाजिक संरचनाओं को बाधित कर सकते हैं, आबादी को विस्थापित कर सकते हैं और वैश्विक स्थिरता चुनौतियों पर सहयोग में बाधा डाल सकते हैं।

मामले का अध्ययन :-

1. पर्यावरणीय स्थिरता के लिए कोस्टारिका का अग्रणी दृष्टिकोण :-

शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल सहित सामाजिक संरचनाओं पर कोस्टारिका के जोर ने उच्च मानव विकास संकेतकों को जन्म दिया है और गरीबी में कमी आई है। एक सुशिक्षित और स्वस्थ आबादी स्थिरता प्रयासों का समर्थन करने की अधिक संभावना रखती है। नागरिक समाज संगठनों और जमीनी स्तर के आंदोलनों ने टिकाऊ नीतियों की वकालत करने और सरकार को उसके कार्यों के लिए जवाबदेह बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई

है। जन जागरूकता और वकालत महत्वपूर्ण रही है। कोस्टारिका में सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं के सफल एकीकरण के परिणाम स्वरूप एक संपन्न इको टूरिज्म उद्योग, वनों की कटाई में कमी और नवीकरणीय ऊर्जा के प्रति एक मजबूत प्रतिबद्धता सामने आई है। देश सतत् विकास में सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं के सफल अंतर्संबंध के लिए एक मॉडल के रूप में कार्य करता है।

2. दिल्ली में वायु प्रदूषण से निपटने में भारत की चुनौती :-

भारत गंभीर वायु प्रदूषण से जूझ रहा है, खासकर इसकी राजधानी दिल्ली में। राजनीतिक संरचनाओं और प्रयासों के बावजूद, यह मुद्दा एक महत्वपूर्ण चुनौती बनी हुई है। भारत की संघीय राजनीतिक संरचना अक्सर निर्णय लेने और नीति कार्यान्वयन में जटिलताओं का कारण बनती है। सरकार के विभिन्न स्तरों के बीच समन्वय चुनौतीपूर्ण हो सकता है। जबकि भारत ने दिल्ली में वायु प्रदूषण को संबोधित करने के प्रयास किए हैं, सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं के एकीकरण को महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। ठोस सुधार हासिल करने का संघर्ष स्थिरता को प्राथमिकता देने के लिए अधिक समन्वय और राजनीतिक प्रतिबद्धता की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है।

ये केस अध्ययन सतत् विकास के लिए सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं को एकीकृत करने से जुड़े विविध दृष्टिकोण और परिणामों को दर्शाते हैं। जबकि कोस्टारिका जैसे कुछ देशों ने स्थिरता लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इस एकीकरण का सफलता पूर्वक लाभ उठाया है, वहीं भारत और चीन जैसे अन्य देश जटिल चुनौतियों से जूझ रहे हैं जिनके समाधान के लिए निरंतर अनुकूलन और प्रतिबद्धता की आवश्यकता होती है। वास्तविक दुनिया के ये उदाहरण संदर्भ-विशिष्ट रणनीतियों के महत्व और वैश्विक स्तर पर स्थिरता उद्देश्यों की चल रही खोज को रेखांकित करते हैं।

रणनीतियाँ और सिफारिशें :-

1. अंतर-क्षेत्रीय नीति एकीकरण को बढ़ावा देना :-

रणनीति : विभिन्न मंत्रालयों और विभागों में सतत् विकास लक्ष्यों को एकीकृत करके सरकारों को 'संपूर्ण-सरकार' दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना। पर्यावरण, अर्थव्यवस्था और सामाजिक कल्याण जैसे क्षेत्रों के बीच सहयोग को बढ़ावा देना।

सिफारिश : नीति विकास और कार्यान्वयन के समन्वय के लिए क्रॉस-मंत्रालयी समितियों या टास्क फोर्स की स्थापना करें, यह सुनिश्चित करते हुए कि सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय विचारों पर लगातार ध्यान दिया जाए।

2. नागरिक जुड़ाव और भागीदारी को मजबूत करें :-

रणनीति : निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में सार्थक भागीदारी के लिए मंच प्रदान करके नागरिकों को सशक्त बनाना। इसमें सार्वजनिक परामर्श, नागरिक सभाएँ और नीतियों और परियोजनाओं पर प्रतिक्रिया के अवसर शामिल हैं।

सिफारिश : ऐसे कानून या विनियम बनाएं जो समावेशिता और विविध दृष्टिकोण सुनिश्चित करते हुए

स्थिरतारण नीतियों और परियोजनाओं के विकास में सार्वजनिक भागीदारी को अनिवार्य बनाते हैं।

3. शिक्षा और जागरूकता बढ़ाएँ :-

रणनीति : शैक्षिक कार्यक्रमों और जागरूकता अभियानों में निवेश करें जो स्थिरता, पर्यावरण संरक्षण और जिम्मेदार नागरिकता पर जोर देते हैं। नागरिकों में जिम्मेदारी और नेतृत्व की भावना को बढ़ावा देना।

सिफारिश : स्कूली पाठ्यक्रम में स्थिरता शिक्षा को एकीकृत करें और सार्वजनिक अभियानों और सामुदायिक आउटरीच के माध्यम से टिकाऊ प्रथाओं के बारे में आजीवन सीखने को बढ़ावा दें।

4. पर्यावरण एवं सामाजिक नियमों को सुदृढ़ बनाना :-

रणनीति : मौजूदा पर्यावरणीय और सामाजिक नियमों को लागू करें और उभरती स्थिरता चुनौतियों को प्रतिबिंबित करने के लिए उन्हें अद्यतन करें। नियामक प्रवर्तन में पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा देना।

सिफारिश : नियामक एजेंसियों को संसाधन आवंटित करें, निगरानी और प्रवर्तन क्षमताओं को बढ़ाएं, और नियमों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए नागरिक समाज संगठनों के साथ जुड़ें।

निष्कर्ष :-

सतत् विकास की खोज में, सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं का प्रभावी एकीकरण न केवल एक वांछनीय विकल्प है बल्कि एक अनिवार्यता भी है। इस शोध पत्र ने इन दोनों क्षेत्रों के बीच जटिल संबंधों का पता लगाया है, उनके प्रतिच्छेदन, चुनौतियों और संभावित समाधानों की जांच की है। इसने वैश्विक स्थिरता लक्ष्यों को आगे बढ़ाने में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की भूमिका पर भी चर्चा की है। जैसे ही हम इस यात्रा को समाप्त करते हैं, कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आते हैं :

1. सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं का अंतर्संबंध :

हमारा विश्लेषण इस बात पर जोर देता है कि सामाजिक और राजनीतिक संरचनाएँ एक दूसरे से अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई हैं, प्रत्येक एक दूसरे को प्रभावित करती हैं और आकार देती हैं। प्रभावी सतत् विकास के लिए इनडोमेन के बीच तालमेल की आवश्यकता होती है, जिसमें सामाजिक संरचनाएं न्याय संगत कल्याण की नींव प्रदान करती हैं और राजनीतिक संरचनाएं नीति और विनियमन का मार्गदर्शन करती हैं।

2. चुनौतियाँ और बाधाएँ :

हमने सामान्य चुनौतियों और बाधाओं की पहचान की है, जिनमें समन्वय की कमी, अल्पावधिवाद, परिवर्तन का प्रतिरोध, भ्रष्टाचार, असमानता और राजनीतिक संघर्ष शामिल हैं। ये चुनौतियाँ इनसे निपटने के लिए विचारशील रणनीतियों और सरकारों, नागरिक समाज और नागरिकों की अटूट प्रतिबद्धता की आवश्यकता पर प्रकाश डालती हैं।

3. संवर्धन के लिए रणनीतियाँ :-

शोध पत्र में सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं की प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए रणनीतियों और सिफारिशों का प्रस्ताव किया गया है। नीतिगत सुसंगतता से लेकर नागरिक जुड़ाव, शिक्षा और टिकाऊ प्रथाओं को प्रोत्साहित करने तक की ये रणनीतियाँ, सरकारों और समाजों को सतत् विकास के पथ पर आगे बढ़ने के

लिए एक रोड मैप प्रदान करती हैं।

अंत में, सतत विकास की ओर यात्रा एक साझा जिम्मेदारी है जो सीमाओं, विचारधाराओं और राजनीतिक संबद्धताओं से परे है। इसके लिए सरकारों, नागरिक समाज, निजी क्षेत्र और व्यक्तियों को अतीत के ज्ञान और वर्तमान की नवीन भावना का उपयोग करते हुए सहयोगात्मक रूप से काम करने की आवश्यकता है। जैसे-जैसे हम आधुनिक दुनिया की जटिलताओं से जूझ रहे हैं, आइए याद रखें कि सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं का अंतर्संबंध ही वह जगह है जहां मानवता का भविष्य और हमारे ग्रह का स्वास्थ्य निर्धारित होता है। यह सुनिश्चित करना हमारा सामूहिक कर्तव्य है कि यह चौराहा समानता, न्याय और पर्यावरणीय प्रबंधन के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित हो, जिससे आने वाली पीढ़ियों के लिए एक टिकाऊ और समृद्ध दुनिया का मार्ग प्रशस्त हो।

सन्दर्भ :-

1. अमर्त्या सेन, 'सहायता एक आवश्यकता', लाइट हॉउस साहित्य, 1983.
2. गोविन्द गोविन्दन, 'सामाजिक विकास और सरकार : एक अध्ययन', आर्थिक और राजनीतिक अनुसंधान, 2000
3. रवींद्र नाथ टैगोर, 'समाज और राजनीति', विश्वभारती प्रकाशन, 1916.
4. जयप्रकाश नारायण, 'सामाजिक संरचनाएँ और भारतीय समाज', समाजशास्त्र और राजनीति, 2010.
5. अरविंद केजरीवाल, 'जन लोकपाल और सामाजिक संरचनाएँ', समाज और राजनीति, 2012.



साहित्य की प्रासंगिकता की प्रक्रिया में पाठक

डॉ. अरुण प्रसाद रजक

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, गोरुबथान गवर्नमेंट कॉलेज, कलिम्पोंग।

लेखक की रचना—प्रक्रिया में पाठक की सौन्दर्य—चेतना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पाठक ही साहित्य को प्रासंगिक बनाता है। एक पाठक के रूप में एक साहित्य—रचना से हमारी क्या अपेक्षाएं होती हैं; इस बात का ध्यान सबसे पहले रखना चाहिए। मध्यकालीन रीति साहित्य और आधुनिक काल की अकविता, बीट कविता इत्यादि पर विचार करते समय हम नाक—भौं सिकोड़ने लगते हैं इसका एक कारण यह भी है कि इनके कवियों ने पाठक की सौन्दर्य—चेतना की परवाह नहीं की। रचना में सौन्दर्य—बोध संकटग्रस्त तब होता है, जब रचनाकार अत्यधिक कला बटोरने में पाठक को गुमशुदा कर देता है। 'कला कला के लिए' माननेवाले रचनाकार समझते हैं कि पाठक रूपी व्याघ्र कलारूपी शावक को खा जाता है। पाठक चेतना से सम्पन्न कृति में कला और सौन्दर्य पर अंकुश लग जाता है। पाठक और सौन्दर्य इन दो शब्दों को एक साथ देखते ही कलावादियों के कान खड़े हो जाते हैं। जबकि सर्वेश्वर प्रश्न उठाते हैं कि कविता किसके लिए हैं? साहित्य किसके लिए हैं? रचना के प्रभाव और उससे पाठक की समृद्धि की बात वे प्रमुखता से उठाते हैं।

जब नयी कविता के श्रेष्ठ कवि और आलोचक कविता में कम शब्द और अधिक मौन की वकालत करते थे, तब सर्वेश्वर बार—बार यह याद दिलाते हैं— "भई, सवाल यह उठता है कि कविता किसके लिए? अगर कविता मौन की ही कविता है तो वह किसके लिए है? मैं यह नहीं मानता कि काव्य के चार मर्मज्ञों तक ही अपनी कविता पहुंचानी है। मैंने एक जगह लिखा भी है कि आज ऐसी कविता रची जानी चाहिए जो एक ही समय में काव्य मर्मज्ञों, अर्द्धशिक्षितों और हो सके तो अशिक्षितों के भी एक साथ संतुष्ट कर सके। अगर मौनवाली दृष्टि से देखा जाय तब तो कबीर सबसे घटिया कवि सिद्ध होंगे। किन्तु ऐसा नहीं है। उनकी कविता सब तक पहुंचती है संतुष्ट करती है।" काव्य के चार मर्मज्ञ ही सर्वेश्वर के लिए साहित्य के पाठक नहीं हो सकते। अगर ऐसा होगा तो कविता का सौन्दर्यबोध संकुचित होगा। व्यापक अनुभव सम्पदा वाले लेखकों का साहित्य काव्य—मर्मज्ञों के साथ अर्द्धशिक्षित और अशिक्षितों को भी संतुष्ट करता है। एक लेखक का सौन्दर्यबोध तभी समृद्ध और कलात्मक हो सकता है जब उसका व्यवहार झूठ, छल, पूर्वाग्रह, अहं, पाखंड, लोभ से रहित हो। उसमें एक सहज 'शिशुता' हो, वह एक बच्चे की तरह सब कुछ को उसके वास्तविक रूप में देख सके।

सर्वेश्वर के बारे में यह सर्वविदित है कि उन्होंने अपनी कविताओं में अधिकांशतः बस्ती और बस्ती के निकटवर्ती क्षेत्र के लोक प्रचलित और ठेठ आंचलिक शब्दों का भी प्रयोग किया है। पर कुछ लोग यह मानते हैं कि यदि रचनाकार अपने आंचलिक शब्दों का प्रयोग रचना में करते हैं तो पाठक का सौन्दर्यबोध सीमित होने के

साथ-साथ उसका दायरा भी सीमित होकर रह जाता है। इस संबंध में पाठकों से संवाद करते हुए सर्वेश्वर कहते हैं— “आंचलिक शब्दों का प्रयोग भाषा की ताकत बढ़ाने के लिए ही किया जाता है। इससे पाठकों का दायरा सीमित नहीं होता, बल्कि उनको अपनी भाषा का दायरा बढ़ाने में मदद मिलती है। उनकी शब्द शक्ति बढ़ती है।”² दरअसल सर्वेश्वर यह गहरे स्तर तक समझते थे कि आज की कविता की सबसे बड़ी जरूरत है कि वह अपनी जमीनी सौन्दर्य से जुड़े, अपनी लोक संस्कृति से संवाद करे और इसके लिए लोकजीवन की ठेठ खुशबू आवश्यक है। लोकजीवन और लोक संस्कृति ही वह सबसे बड़ी ताकत है जो पाठक को गहरे तक समृद्ध करती है। सौन्दर्यबोध में लोकजीवन का हस्तक्षेप जरूरी है।

कविता भाषा में रची जाती है। सारे मानवीय कार्यकलाप अंततः भाषा में ही संभव होते हैं। कविता, मानवीय कार्यकलाप के रूप में, सौन्दर्यानुभव का भाषा की भूमि पर अवतरण है। सर्वेश्वर ने काव्य-सौन्दर्य को व्यापकता एवं गहराई से जोड़ने के लिए पाठकीय सौन्दर्य का हमेशा स्थान रखा है। इसके लिए उन्होंने भाषा को आदमी से जोड़ने पर जोर दिया। भवानी प्रसाद मिश्र ने ‘जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख’ के सिद्धांत से अपनी भाषा को एक पाठकीय आत्मीयता दी, उसी तरह भाषा की सरलता या सहजता की तरफ सर्वेश्वर का विशेष आग्रह रहा है। ऐसी भाषा से कविता में कवितापन या सौन्दर्य हल्का नहीं पड़ता। सर्वेश्वर ने लिखा है— “ऐसा काव्य जिसके लिए दुरुह, जटिल और अमूर्त की भाषा आवश्यक हो, मैं नहीं रच सकता, क्योंकि मेरी संवेदना की बनावट वैसी नहीं है। इसलिए किसी आग्रहवश ऐसा नहीं किया है, बल्कि सहज प्रकृतिवश ही मैंने कविता में सरल भाषा को स्वीकार किया है— उसी में काव्य रचा है।”³ दुरुह, जटिल और अमूर्त संवेदना से लैस अज्ञेय की काव्य-भाषा का परिष्कृत काव्य संसार धीरे-धीरे मामूली आदमी से दूर पड़ता गया। उनके शब्दों से पाठक चौंकते-चमत्कृत होते रहें, किन्तु आत्मीयता से स्थापित नहीं कर पाते हैं। सहज और सरल संवेदनावाले सर्वेश्वर की भाषा के सौन्दर्य पर कृष्णदत्त पालीवाल की टिप्पणी देखने लायक है— “सर्वेश्वर की भाषा के लिए यह कहना अच्छा लगता है कि भेड़ियों के लिए यह भाषा अपने मध्यवर्गीय चेतना के पाठक में भाषा की मशाल जलाती है।”⁴ स्पष्ट है कि पाठक की सौन्दर्य-चेतना का स्वाभाविक ध्यान सर्वेश्वर की रचना-प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है।

आधुनिक समाज में कविता की यह मजबूरी है कि लिखित या मुद्रित पाठ में उसे अपनी काया संजोनी पड़ती है। लोक और वाचक कविता में रसिकता निर्बन्ध होती है। वह उच्छल संवेदना के साथ बहती है, लेकिन मुद्रित पाठ में कविता एक ऐसे पाठक की कविता होती है, जिसके सामाजिक बोध पर साक्षरता का अनिवार्य अनुशासन होता है। सर्वेश्वर ने अपनी रचना-प्रक्रिया में काव्य-सम्प्रेषणीयता की खाई को ध्यान में रखा है। वे मानते हैं कि बोलने तथा लिखने की भाषा में दूरी नहीं होनी चाहिए। ऐसी भाषा ही जीवन के व्यापक अर्थ-स्तरों को अनेक भंगिकाओं से प्रकाश में लाती है। कविता की आवाज चंद चार मर्मज्ञों तक ही नहीं पहुंचानी है “कविता का उद्देश्य तो यही होना चाहिए कि वह सब तक पहुंचे। जितने भी बड़े कवि हैं वे सब तक पहुंचाते हैं।”⁵ सौन्दर्य की आवाज सभी सुन सकते हैं। यह जरूरी नहीं है कि हर शिक्षित व्यक्ति में सौन्दर्य प्रतीति की उच्चस्तरीय क्षमता हो। एक अशिक्षित व्यक्ति भी काव्य रसिक हो सकता है, अगर उसके पास संगीतकर्मी कान हों। सर्वेश्वर मानते हैं ‘ऐसा नहीं कि कबीर की कविता लाल किले के सम्मेलन में नहीं पढ़ी जा सकती।’⁶ काव्य रसिकता का कोई तयशुदा पैमाना नहीं हो सकता। हालांकि इस बात पर भी गौर किया जाना चाहिए कि कविता के मुद्रित पाठ

ने निरक्षर जन को कविता के कथित लोकतंत्र से बाहर कर दिया है। कैसी विडम्बना है कि आधुनिक शिक्षा अनपढ़ को अ-रसिक भी मान बैठी है। इस दृष्टि से सर्वेश्वर की सौन्दर्य-दृष्टि आत्म सजगता बरतती है।

‘साहित्य का लोकजनीन सौन्दर्य’ के बारे में पत्रकारिता विभाग के छात्रों से भेंटवार्ता के दौरान सर्वेश्वर कहते हैं— “वास्तव में आज का साहित्य, आम आदमी की भाषा में आम आदमी को आंदोलित करनेवाला होना चाहिए। पूर्व का साहित्य, लोक में स्वीकृत होने के बाद ही अपना मूल्य स्थापित करता रहा है। चूंकि जो लोकजीवन में स्वीकृत होने के बाद साहित्य में आते हैं, वास्तव में वही देशव्यापी साहित्य की रचना करते हैं। इसी संदर्भ में कबीर, जायसी और नागार्जुन विशेष तौर पर उल्लिखित हैं। साहित्य सदैव तीन स्तरों पर लिखा जाता रहा है, साहित्य मर्मज्ञों, कम पढ़े और अनपढ़ के लिए।” कबीर, जायसी और नागार्जुन की कविता जनता में काफी लोकप्रिय थे। इनकी कविताएं जनता के सौन्दर्यबोध का स्तर भी ऊंचा करती हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है— “हर विकासमान देश के समाजवादी आन्दोलन के सामने यह समस्या आती है कि साहित्य को कैसे लोकप्रिय बनाया जाये साथ ही उसे कलात्मक स्तर से गिरने न दिया जाये।”⁸ ऐसे में यही समाधान है कि लोकप्रिय साहित्य और कलात्मक सौन्दर्य के संतुलन को कायम रखा जाय। सर्वेश्वर ने भी सिद्धत से महसूस किया था कि कविता मनुष्य की बुनियादी जरूरत है जो उसके अन्दर सौन्दर्यता और सजगता का संसार रचती है। काव्य रचना के क्षेत्र में सर्वेश्वर ने सौन्दर्यता और सजगता के इसी संतुलन को बनाये रखने की कोशिश की। तभी वह कह पाये —

“एक सच्चा कलाकार
सोते सोते ही
कला का सृजन कर जाता है
जो सारे विश्व को जगा दे।”⁹

संदर्भ- सूची :-

1. सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल, ‘कविता किसके लिए’, वीरेन्द्र जैन (सं.), ‘सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली खण्ड-दो’, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 401
2. सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल, ‘कविता किसके लिए’, वीरेन्द्र जैन (सं.), ‘सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली खण्ड-दो’, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 395
3. सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल, ‘कविता किसके लिए’, वीरेन्द्र जैन (सं.), ‘सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली खण्ड-दो’, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 401
4. पालीवाल, कृष्णदत्त, ‘सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचनाकर्म’, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, पृ. 79
5. सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल, ‘कविता किसके लिए’, वीरेन्द्र जैन (सं.), ‘सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली खण्ड-दो’, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 401
6. सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल, ‘कविता किसके लिए’, वीरेन्द्र जैन (सं.), ‘सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली खण्ड-दो’, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 402

7. सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल, 'साहित्य क्रांति नहीं लाता वह तो एक हथियार है', वीरेन्द्र जैन (सं.), सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, ग्रंथावली खण्ड—दो, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 398
8. शर्मा, डॉ. रामविलास, 'नयी कविता और अस्तित्ववाद', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1993, पृ. 154
9. सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल, 'युग— जागरण का गीत', वीरेन्द्र जैन (सं.), 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली खण्ड—एक', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 95

पता (पत्राचार के लिए)

20, पी. बी. एम. रोड

चांपदानी, पोस्ट— बैद्याबाटी

हुगली (पं बंगाल), पिन— 712222

मो— 7003098240

ईमेल— arunrajak28@gmail.com



फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास साहित्य : एक अनुशीलन

दिगंत बोर

सहायक प्राध्यापक (हिंदी), जे. डी. एस. जी. महाविद्यालय, बोकाखात, असम।

शोध सारांशिका :-

फणीश्वरनाथ रेणु ने अपनी साहित्य यात्रा का प्रारंभ कविता से करके कहानी, उपन्यास साहित्य में प्रसिद्ध हुए। फणीश्वरनाथ रेणु ने भले ही कविता के द्वारा अपनी साहित्य यात्रा का प्रारंभ किया, परंतु उन्हें कविता के क्षेत्र में उतनी प्रसिद्धि नहीं मिली, जितनी उन्हें उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में मिली। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा मानवीय जीवन यथार्थ, मानवीय मूल्यों, संवेदना को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी उपन्यास विधा में एक ऐसे उपन्यासकार हैं, जो अपनी पहली कृति में ही उस स्तर पर पहुँच जाते हैं, जिस स्तर पर प्रेमचंद अपने अंतिम उपन्यास गोदान में पहुँचते हैं। रेणु के साहित्य में पाठकों को रस के साथ-साथ तत्कालीन समाज तथा जीवन यथार्थ भी देखने को मिलते हैं। बदलते हुए यथार्थ के कारण रेणु के साहित्य में लोगों की बदलती हुई रुचि, पारिवारिक विघटन आदि की झलक देखने को मिलती है। उनके साहित्य का क्षेत्र लोकजीवन से लेकर शहर, कस्बे तक का जीवन है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से तत्कालीन भारतीय जीवन यथार्थ को ही रूप प्रदान किया है।

बीज शब्द :- मानवीय मूल्य, जीवन यथार्थ, पारिवारिक विघटन, आंचलिकता।

प्रस्तावना :-

फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी कथा साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकारों में हैं। हिंदी साहित्य में उन्होंने कथा साहित्य के साथ-साथ कथेतर साहित्य में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने हिंदी साहित्य के लगभग सभी विधाओं में लेखन कार्य किया है। नलिन विलोचन शर्मा उनके उपन्यास 'मैला आँचल' के विषय में लिखते हैं— "मैला आँचल फणीश्वरनाथ रेणु का प्रथम उपन्यास है। यह ऐसा सौभाग्यशाली उपन्यास है। जो लेखक की प्रथम कृति होने पर भी उसे ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त करा कि वह चाहे तो कुछ और न भी लिखे। मैंने इसे गोदान के बाद का हिंदी का वैसा महान उपन्यास माना है। हिंदी में उपन्यास साहित्य में यदि गल्पावरोध था, तो इस कृति से वह हट गया है।"¹ रेणु ने अपने साहित्य में जीवन और समाज के यथार्थ का चित्रण किया है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में अद्भुत सामंजस्य है। उनकी कहानियों और उपन्यासों को उनके व्यक्तित्व से अलग करके नहीं देखा जा सकता। वे अपने साहित्य में जीवन का भोगा हुआ यथार्थ का ही चित्रण करते हैं। विश्वनाथ प्रसाद को दिए एक साक्षात्कार में रेणु कहते हैं— "लिखता मैं वहीं हूँ, जो देखता हूँ, सोचता हूँ, अनुभव करता हूँ।"²

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित हैं :-

‘मैला आँचल’ उपन्यास का प्रकाशन सन 1954 ई. में हुआ। इस उपन्यास के प्रकाशन के साथ ही हिंदी उपन्यास साहित्य परंपरा में युगांतर परिवर्तन हुआ। यह हिंदी का पहला उपन्यास है, जिसे स्वयं लेखक ने आंचलिक उपन्यास कहा है। रेणु ने ‘मैला आँचल’ में तत्कालीन भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक उत्थान और पतन का सजीव वर्णन किया है। उपन्यास की कथा बिहार के पूर्णिया जिले के मेरीगंज नामक अंचल पर आधारित है। इसे केवल मेरीगंज न कहकर भारत के सभी ग्राम्य अंचलों का प्रतीक कहा जा सकता है। यह गाँव भारत की राजधानी से दूर पर स्थित होने के कारण अत्यंत ही पिछड़ा हुआ गाँव है। रेणु ने ‘मैला आँचल’ के द्वारा मेरीगंज अंचल की निर्धनता, मानसिक पिछड़ापन, अशिक्षा, गरीबी, आर्थिक शोषण आदि का वर्णन किया है। गरीबी, निर्धनता के कारण वे अपने लिए दो वक्त की रोटी तक नहीं कमा पाते हैं। बिना दवा के ही बच्चे, औरत मर जाते हैं। अशिक्षा, अंधविश्वासों के कारण गाँव के लोग औरत, बच्चे तक को डायन समझकर मार डालते हैं। गरीबी, निर्धनता के कारण हर जगह गंदगी फैली हुई है। गंदगी के कारण लोगों में बीमारियाँ बढ़ रही हैं। किसी के भी पास दवा के लिए पैसा नहीं है। उस अंचल के लोगों की गरीबी तथा निर्धनता का प्रमुख कारण जमींदार तथा तहसीलदार होने के साथ-साथ व्यवस्था भी है। रेणु के ‘मैला आँचल’ में किसानों की गरीबी तथा आर्थिक शोषण का चित्रण करने के साथ-साथ गाँव में फैल रही राजनीतिक चेतना, राजनीतिक बदलाव का भी चित्रण किया है।

गोपाल राय लिखते हैं कि— “मेरीगंज समकालीन भारतीय राजनीति का लघुरूप बन गया है। तत्कालीन आम आदमी की सरलता, अबोधता और पुराने मूल्यों के प्रति आस्था का लाभ उठाकर राजनीति व्यवसायी उसे आसानी से ठग लेता है। ‘मैला आँचल’ का विश्वनाथ प्रसाद इन राजनीतिक व्यवसायियों का प्रतीक है।”³ मैला आँचल में रेणु ने ग्राम्य जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। डॉ. प्रशांत मानवतावादी विचारों के कारण ही शहर से गाँव में लोगों के इलाज तथा मलेरिया पर शोध करने आया है। उसी के जीवन मूल्य से प्रभावित होकर अंत में विश्वनाथ प्रसाद लोगों में थोड़ी बहुत जमीन बाँट देता है। इस उपन्यास में रेणु ने मानवतावादी विचारधाराओं के चित्रण के साथ-साथ ग्राम्य जीवन-संस्कृति का भी वर्णन किया है। रेणु ने प्रशांत और कमला, बालदेव और लक्ष्मी के प्रेम के वर्णन से ग्राम्य समाज के प्रेम का चित्रण किया है।

‘परती परिकथा’ रेणु का दूसरा उपन्यास है। इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1957 ई. में हुआ था। परती परिकथा की कथाभूमि भी पूर्णिया है। परती परिकथा पूर्णिया जिले की परती भूमि और उसके पास के गाँव परानपुर पर आधारित है। गोपाल राय लिखते हैं— “परती परिकथा में अपढ़ ग्रामीणों, अक्षरकटू युवकों, स्कूल और कॉलेजों में पढ़ने वाले छात्रों, जातिवादी संस्कारों से ग्रस्त नर-नारियाँ, घुमंतू और नारदी प्रवृत्ति की स्त्रियाँ, सभी राजनीतिक दलों के अधकचरे नेता, शातिर मुकदम्मेबाजों और इसके साथ-साथ लोककथा-गीतों के गायन, लोकनाटकों के मंचन आदि के यथार्थ चित्रण उपलब्ध हैं।”⁴ इस उपन्यास में फणीश्वरनाथ रेणु ने पूर्णिया की परती भूमि पर गुलाब की खेती करवाया है। जिसके लिए जितेंद्र नाथ शहर से गाँव लौट आता है। गाँव में खेती करने की इच्छा से ही वह शहर से गाँव लौट आता है और अपनी भूमि में खेती करने लगता है। गाँव में परती भूमि के साथ-साथ ताजमनी भी उसके इंतजार में रहती है। गाँव में वापस आकर जितेंद्र अनेक समस्याओं का सामना करते हुए गाँव में रहने का फैसला करता है। गाँव के लोग उन्हें देखना नहीं चाहते हैं, गाँव के सब लोग

उनके विरोध में मोर्चा निकालती हैं। इस तरह की समस्याओं का सामना करते हुए जितेंद्र गाँव में रहता है, और परती भूमि पर गुलाब का बाग लगाता है। उसी के प्रयास से परती हरी-भरी हो जाती है। इस उपन्यास में लोगों के स्वप्न भंग, मोह का टूटना आदि का भी वर्णन हुआ है। लोगों को आजादी के पहले अनेक सपने दिखाए गए थे, वे स्वप्ने पूरे न होने पर लोगों में स्वप्न भंग होता है। उसकी प्रतिक्रिया का भी सुंदर चित्रण हुआ है।

‘दीर्घतपा’ उपन्यास का बाद में नाम बदलकर कलंक मुक्ति नाम से प्रकाशित किया। उपन्यास की कथाभूमि पटना का वर्किंग वीमेन होस्टल में चल रहा शोषण और भ्रष्टाचार है। नारी का शोषण, प्रशासनिक अधिकारियों के होस्टल पर रहने वाली लड़कियों का यौन शोषण आदि का सटीक वर्णन हुआ है। छात्रावास के अधिकारी अपने फायदे के लिए उन लड़कियों का शारीरिक तथा यौन शोषण करते हैं। छात्रावास से संबंधित अधिकारी चरित्रहीन हैं। वे छात्रावास के फंड से लेकर सभी चीजों में भ्रष्टाचार करना चाहते हैं। हर समय लड़कियों का यौन शोषण, यहाँ तक कि लड़कियों का बलात्कार भी करता है। छात्रावास के अधिकारी अपने मित्रों या अधिकारियों को खुश करने के लिए होस्टल की लड़कियों के शरीर को ही आगे कर देता है। इस अन्याय और अत्याचार के विरोध में लड़कर अंत में बेला गुप्ता को जेल हो जाती है। अधिकारी बेला गुप्ता को चरित्रहीन, भ्रष्टाचारी सिद्ध कर देता है। बेला गुप्त अपने परित्याग से भी इस अन्याय और अत्याचारों का अंत नहीं कर पाती है। बेला गुप्ता निर्भीक होकर व्यवस्था के खिलाफ लड़ती है। परंतु व्यवस्था की चक्की में पीसकर रह जाती है।

‘जुलूस’ रेणु का चौथा उपन्यास है, जो रेणु की कहानी ‘एक रोमांस शून्य प्रेम कथा की भूमिका’ का विस्तारित रूप है। यह उपन्यास भारत विभाजन तथा पूर्वी पाकिस्तान से भारत आये शरणार्थियों की पीड़ा, हताशा की कहानी है। विभाजन से लाखों लोग अपने लोगों तथा अपनी जमीन से दूर कर दिया था। वे लोग अपने लोगों से दूर होकर भारत में शरणार्थी बनकर आये थे। अपने सगे संबंधियों से दूर होकर वे असहनीय पीड़ा झेल रहे थे। जिसे शब्दों में व्यक्त कर पाना असंभव है। इस उपन्यास में पूर्वी बंगाल की शरणार्थियों के दुख, पुनर्वास की समस्याएँ, उन लोगों पर आस-पास के लोग तथा अधिकारियों के द्वारा शोषण करने का प्रयास आदि ‘जुलूस’ उपन्यास की मूल कथा है। पूर्वी बंगाल से भारत आये शरणार्थियों को बिहार के नोबीनगर गाँव में बसाया जाता है। आस-पास के गाँव के लोग उन लोगों से घृणा करते हैं। साथ ही उन लोगों के साथ अपने देश के लोगों जैसा व्यवहार नहीं कर पाते हैं, क्योंकि वे विदेश से आये हुए लोग हैं। शरणार्थी भी अपने आपको भारतीय नहीं मान पा रहे थे। वे भारत को पराये देश मानते हैं और यहाँ के लोगों से दूर रहना चाहते हैं। वे लोग कहते हैं कि हम लोगों का वतन तो पाकिस्तान है। यहाँ के देश तथा इस देश की मिट्टी से उन लोगों को प्रेम नहीं है। वे इस देश को अपना वतन मान ही नहीं पाते हैं।

इसी तरह शरणार्थी भारत को अपना देश मानने में असमर्थ रहते हैं। वे हर बात पर अपने देश पूर्वी पाकिस्तान को याद करते हैं। इसके साथ ही रेणु ने लोगों की सामाजिक, मानसिक स्थिति का भी वर्णन किया है। पवित्रा हर जगह कासिम के उस कामातुर नजर से टकराती है, जो पवित्रा को पाना चाहती है। पवित्रा जानती है कि जुमापुर में कासिम ने ही लोगों को भड़काकर दंगा-फसाद शुरू किया था। कासिम की वह नजर हर जगह पवित्रा का पीछा करती है। पवित्रा अब उससे डरती नहीं है, उसका उपयोग करना सीख गयी है। वह समझ गयी है कि समाज में जीना है तो कासिम की नजर का उपयोग करके जीना होगा, अन्यथा वह नजर पवित्रा जैसी लड़की को जीने नहीं देगी।

लेखक शरणार्थी के अलगाव की समस्या का समाधान भावनात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि शादी, प्रेम से ही इस समस्या का समाधान हो सकता है। इसलिए लेखक ने पवित्रा और नरेश वर्मा का प्रेम संबंध, हरिप्रसाद और संध्या का विवाह के प्रसंगों का चित्रण किया है।

‘कितने चौरहे’ रेणु का पाँचवा उपन्यास है। इस उपन्यास में रेणु ने स्वाधीनता संग्राम के समय का चित्रण किया है। देश की आजादी तथा स्वाधीनता संग्राम के प्रति युवक मनमोहन के मन में उठनेवाली भावनाओं का यथार्थ वर्णन उपन्यास की कथा है। यह उपन्यास स्वाधीनता संग्राम तथा देश की आजादी के संग्राम में छात्रों के कूद पड़ने और आत्म बलिदान की कथा है। उपन्यास के नायक मनमोहन गाँव से अररिया शहर के स्कूल में पढ़ने के लिए आता है। वहाँ आकर वह प्रियोदा से मिलता है। प्रियव्रत के जीवन मूल्य और व्यक्तित्व से मनमोहन इतना प्रभावित होता है कि उन्हीं मूल्यों के आधार पर अपना जीवन व्यतीत करता है। वह देश सेवा को ही अपना जीवन लक्ष्य मानकर देश सेवा में ही अपना सब कुछ समर्पित कर देता है। वह अपने जीवन में अनेक चौराहे को पार करते हुए देश सेवा के लक्ष्य तक पहुँचता है। मनमोहन को देश सेवा का व्रत भी प्रियव्रत की प्रेरणा से ही मिला था। मनमोहन स्वाधीनता संग्राम में भाग लेता है। जिसके कारण उन्हें स्कूल के शिक्षक से सजा भी मिली। नमक आंदोलन में वह भाग लेता है। गांधी के कारावास जाने पर वह और उनके साथी अररिया शहर में हड़ताल करते हुए दुकान बंद कराने के साथ-साथ पिकेटिंग भी किया था। 1942 के आंदोलन की लहर समूचे देश में फैली थी। इसका प्रभाव मनमोहन तथा उनके साथियों पर भी हुआ। वे अररिया कोर्ट में झंडा फहराने के लिए गए थे। जहाँ उनके मित्र झण्डा फहराते हुए शहीद हो जाते हैं। वह अपने मित्र के साथ शहीद न हो सका और अपने आँखों के सामने ही मित्रों को मरते हुए देखा।

देशवासी अनेक कठिनाईयों को पार करते हुए आजादी को प्राप्त करते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए देशवासियों ने अनेक प्रयत्न किये हैं। उन्हीं प्रयत्नों के कारण देश आजाद हुआ। रेणु ने मनमोहन के चरित्र चित्रण के द्वारा स्वाधीनता संग्राम के समय देश के युवकों के मन में उठनेवाली भावनाओं को दिखाया है।

‘पल्टू बाबू रोड’ रेणु का अंतिम उपन्यास है। इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1979 ई. में हुआ था। इस उपन्यास की कथा भूमि पूर्णिया जिले के एक कस्बे की कहानी है। इसी कस्बे के लोगों के सामाजिक, राजनीतिक परिवेश का चित्रण उपन्यास में हुआ है। उपन्यास का प्रमुख परिवार राय परिवार है। पल्टू बाबू के कथानुसार ही राय परिवार के लोग चलते हैं। पल्टू बाबू अत्यंत ही कामुक व्यक्ति है। वह राय परिवार में आकर उस जगह पर बैठता है, जहाँ से नहाते हुए औरतों को नंगी देख सके। वह औरतों को नंगी देखने की वासना को पूरा करता है। औरतों को नहाते हुए देखकर अपने मन को शांत करता है। वह उस परिवार की सभी स्त्रियों का शारीरिक शोषण करता है। कोई उसका विरोध नहीं कर पाता है। राय परिवार उस कस्बे का सबसे भ्रष्ट परिवार है। वे अपनी बेटियों तक को बेच कर पैसा कमाना चाहता है। इसलिए हर कोई इस बात का फायदा उठाते हुए उन लोगों के शरीर का भरपूर उपभोग करते हैं। अंत में पल्टू बाबू कुंतला से शादी करता है और सुहागरात में हृदरोग से मर जाता है। इस उपन्यास में राजनीतिक तथा प्रशासनिक नेताओं के भ्रष्ट रूप का चित्रण हुआ है। मनुष्य पैसा कमाने के लिए अपनी बेटियों तक को बेच सकता है इसका उदाहरण राय परिवार है। यह उपन्यास लोगों के पारिवारिक विघटन और पतनशील मूल्यों की ही कहानी है।

फणीश्वरनाथ रेणु का साहित्य संसार विस्तृत है। उन्होंने केवल एक ही विधा पर अपनी लेखनी नहीं

चलायी है, अपितु हिंदी साहित्य के सभी विधाओं में रेणु ने अपना लेखन कार्य किया है। कहानी, उपन्यास, संस्मरण, रेखाचित्र, कविता आदि के अतिरिक्त रेणु के साक्षात्कार, डायरी और बहुत सी प्रकाशित आधी-अधूरी रचनाएँ हैं, जिनका संकलन भारत यायावर ने 'रेणु रचनावली' शीर्षक से किया है। उनके उपन्यास और कहानी हिंदी साहित्य जगत में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' उनकी महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। 'मैला आँचल' उपन्यास ने हिंदी साहित्य में एक नई धारा की शुरुआत की। उनके उपन्यास हो या कहानी जीवन यथार्थ से भिन्न नहीं है। उनके उपन्यास तत्कालीन ग्राम्य जीवन, समाज और संस्कृति के साथ-साथ गाँव के आर्थिक, राजनीतिक परिवेश को समझने में सहायक है। उनके साहित्य में लोकजीवन और संस्कृति के सभी तत्व विद्यमान हैं। उनकी रचनाएँ लोक से भिन्न नहीं है। तत्कालीन भारतीय जीवन तथा समाज को समझने के लिए रेणु की रचनाएँ सहायक हैं।

संदर्भ सूची :-

1. रेणु रचनावली, भाग- 2, भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, चौथी आवृत्ति, 2012, पृ. 11
2. फणीश्वरनाथ रेणु का कथा साहित्य : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबंध) राजीव आर. डाँगर, पृष्ठ 44
3. हिन्दी का उपन्यास साहित्य, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, चौथी आवृत्ति, 2014, पृ. 244
4. हिन्दी का उपन्यास साहित्य, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन-नयी दिल्ली, चौथी आवृत्ति, 2014, पृ. 250

सहायक ग्रंथ :-

1. रेणु रचनावली, भाग- 2, भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, चौथी आवृत्ति 2012
2. रेणु रचनावली, भाग- 3, भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, चौथी आवृत्ति 2012



रत्नकुमार साम्भरिया की कहानियों में व्याप्त भ्रष्टाचार (‘झुनझुना’ कहानी के विशेष सन्दर्भ में)

बर्नाली गोगोई

शोधार्थी, हिंदी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजल, मिजोरम।

सारांश :-

‘झुनझुना’ कहानी सरकारी दफ्तरों में होने वाले भ्रष्टाचार और भ्रष्ट राजनेताओं का यथार्थ चित्रण करती है। अपनी जिम्मेदारियों को अच्छी तरह से नहीं निभाने के कारण जनता को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कहानी देशराज नामक पात्र के ईर्द-गिर्द घुमती है। उसका घर राज्य की राजधानी में है। वह अपने माता-पिता से दूर गाँव के एक स्कूल में चपरासी की नौकरी करता है। जब सरकार तबादले से रोक हटाती है। यह सूचना पाकर देशराज खुश होता है। वह अपने बूढ़े माता-पिता के साथ रहना चाहता है। जिस कारण से अपना तबादला घर के पास के स्कूल में करवाना चाहता है। तबादला करने की अर्जी देने के लिए उसके सामने बहुत समस्याएँ आती हैं। अपने तबादले की अर्जी देने के लिए ही उसे टाइपिस्ट से लेकर मंत्री तक को रिश्वत देना पड़ता है। वह अपने अंधे बीमार माता-पिता तक को वहाँ ले जाता है। पर उनकी कोई नहीं सुनता। मंत्री भी उससे काम करने के लिए पैसा ले लेता है। जो काम एक आवेदन देने पर ही हो जाना चाहिए था। उसके लिए देशराज को खुद जा जाकर आवेदन देना पड़ता है। पर वह हर जगह से निराश होकर लौटता है। कहानी में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के यथार्थ रूप का चित्रण किया गया है। समाज में भ्रष्टाचार बहुत बड़े पैमाने पर पाया जाता है। भ्रष्टाचार ने हमारे समाज में अपनी जड़े समाज की गहराई तक जमा ली हैं। हर स्थान पर भ्रष्टाचार का ही बोलबाला है। ऐसी कोई जगह नहीं रही, जहाँ बिना रिश्वत के कुछ काम हो जाये।

बीज शब्द :- भ्रष्टाचार, रिश्वत, समाज, राजनीति, व्यवस्था।

मूल विषय :-

रत्नकुमार साम्भरिया की कहानी ‘झुनझुना’ आवाज का प्रतीक है। कहानी में भ्रष्ट राजनेता, भ्रष्ट स्कूल कर्मचारी के साथ-साथ दफ्तर के भ्रष्ट कर्मियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। कहानीकार ने कहानी में चित्रण किया है कि आम जनता को अपना काम करवाने के लिए सरकारी दफ्तरों में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। बिना रिश्वत के कोई काम नहीं हो पाता है। हर जगह केवल भ्रष्ट अधिकारियों का ही बोलबाला है। कहानी का पात्र देशराज एक दिव्यांग है। वह अपने परिवार से दूर एक गाँव के मिडिल स्कूल में चपरासी का काम करता है। उसके माता-पिता प्रदेश की राजधानी में रहते हैं। वह अपने बूढ़े और बीमार माँ-पिता के साथ उनकी देखभाल के लिए रहना चाहता है। पर अपनी नौकरी के कारण यह संभव नहीं था। जिस कारण से वह

अपने घर के पास के स्कूल में तबादले के बारे में सोचता था। पर तबादला पर रोक लगी होने के कारण चाहकर भी अपना तबादला वह नहीं कर पाया था। एक दिन खबर आती है कि— “तबादला पर लगी रोक हटाई।” यह खबर देखकर देशराज तबादले की तैयारी करता है। वह जल्दी करने लगता है और सोचता है कि फिर से तबादले पर रोक न लग जाय। इसलिए जल्दी—जल्दी स्कूल जाने लगता है— “स्कूल के चारों ओर गोड़ो पानी खड़ा था। गेट के सामने सवाया था। लकड़ी के दो लट्टे पाट कर स्कूल आने—जाने का रास्ता खोला हुआ था। करनट रस्सी पर चलता है। देशराज लट्टे पर संभल कर चलकर स्कूल में पहुँच गया था। स्कूल लगे, वह अपना आवेदन मांड नचीत हो जाए। मेह—पानी का भरोसा हो सकता है। तबादलों पर रोक कब लग जाए, विश्वास नहीं।”

देशराज तबादले की अर्जी देने स्कूल जाता है। वह आवेदन टाइप करवाने के लिए टाइपिस्ट के पास जाकर देखता है कि अब तक टाइपिस्ट स्कूल आया ही नहीं है। देशराज उसका इंतजार करता है। उसके आने के पश्चात आवेदन निकालकर कहता है— “जी, बाबूजी तबादलों से रोक हट गई है। मैंने अपना आवेदन मांड लिया है। टाइप कर दो। हाथ लिखा ठीक नहीं है। आगे जाएगा न।” टाइपिस्ट देर से दफ्तर आने के बाद भी काम करने का मन नहीं करता है। देशराज को आवेदन रखकर जाने के लिए कहता है। क्योंकि उसे देशराज से कुछ मिलने की आशा है। जब देशराज उसे चाय लाकर देता है, तो चाय पीने के बाद वह टाइप करने लग जाता है— “बाबूजी को मानो चाय की ही चाहत थी। उसने चाय पीकर माथे पर रखा चश्मा आँखों पर चढ़ाया। वह टाइप करने जुट गया था।” बिना चाय के वह आवेदन को भी हाथ नहीं लगा रहा था। देशराज द्वारा चाय देने के बाद ही वह उसका काम करता है। इससे स्कूलों में होने वाले भ्रष्टाचार का पता चलता है। इस कहानी में विद्या के मंदिर में होनेवाले भ्रष्टाचार का यथार्थ वर्णन है।

कहानी में एक जगह स्कूल के हेडमास्टर का भी जिक्र आता है। उसके मन में दया भाव नहीं था। एक दिन हेडमास्टर ने विकलांग होने के कारण देशराज को लंगड़ा कहा था। जिससे देशराज बहुत उदास हो गया था। इसी कारण वह हेडमास्टर को आवेदन देने को झिझक रहा था। कहानी में इसका वर्णन है— “हेडमास्टर साहब का नाम आते ही देशराज के मन में एक टीस—सी उठी। एक दिन हेडमास्टर साहब ने उसे लंगड़ा कह दिया था। उस दिन से स्कूल शूल था। हेडमास्टर शमशीर। वह बुझा—बुझा—सा, खोया—खोया—सा रहने लगा था।” हेडमास्टर एक ऊँचे पद का व्यक्ति है। उसके मुँह से ऐसी बातें अच्छी नहीं लगती। इस तरह की बातें बोलकर दूसरों को आघात पहुँचाना अमानवीय है। हेडमास्टर की बातों के कारण देशराज को ठेस पहुँची। देशराज दिव्यांग होने के बावजूद अपनी नौकरी पूरी निष्ठा से करता है। अपने बूढ़े माता—पिता की देखभाल करता है। वह अपने अपाहिज होने पर ध्यान ही नहीं देता। हेडमास्टर के व्यवहार से उसका आत्मविश्वास डगमगाने लगता है।

गाँव और शहर की सड़कों में काफी अंतर था। गाँव और शहर की सड़क की सीमा में एक बड़ा नाला था। जिसके किनारे मिट्टी की बाँध लगाई गई थी। बरसात के समय वहाँ का हाल बहुत ही बुरा हो जाता था। गाँव के लोग वहाँ से नहीं जा पाते थे। कहानी में इसका जिक्र है— “मुख्य सड़क और गाँव की सीमा के बीच बीस फीट का एक नाला पड़ता था। नाले के दोनों किनारे कच्ची मिट्टी की बाँध थी। नाला लबालब था। बरसता के दिनों में यह नाला गाँव के लिए पिचाश—सा था, जानलेवा। संपर्क टूट जाते थे। गाँव टापू बन जाता था।”

गाँव में इस तरह की हालत थी। कोई उस रास्ते को ठीक करने के बारे में नहीं सोचता। गाँव वालों के लिए यह बहुत ही कष्टदायक था। उनकी मदद के लिए कोई नहीं था। राजनेता वोट के समय सब करने का वादा करता है। पर चुनाव जाने के बाद कुछ नहीं करता। इसका जिक्र भी कहानी में है— “दुनिया अन्तरिक्ष में हो आई है और एक हम हैं। भैंस की पूछ पकड़ कर नाला उतर रहे हैं। नेता—नाँगलों को वोट चाहिए, जनता की चाहत से वास्ता नहीं।” नेताओं को सिर्फ वोट की आवश्यकता होती है। जनता से कोई मतलब नहीं है। चुनाव के समय वह जनता की खैरियत लेते हैं। चुनाव के बाद किसी को पहचानते तक नहीं। अपना किया हुआ वादा भी भूल जाते हैं। कहानी में इसी का यथार्थ चित्रण हुआ है।

देशराज अपने तबादले की अर्जी के लिए शहर पहुँचकर जिला शिक्षा अधिकारी के दफ्तर जाता है। वहाँ जाकर वह दफ्तर को देखता है। दफ्तर की बहुत ही बुरी हालत रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस दफ्तर में कोई आता ही नहीं है। कोई साफ—सफाई नहीं। कोई आदमी नहीं। देशराज अकेला वहाँ सब देख रहा था। कहानी की कुछ पंक्तियाँ देख सकते हैं— “पुरानी एक हवेली थी। खण्डहर। दो—तीन कमरों को साफ—सूफ कर जिला शिक्षा अधिकारी का दफ्तर तैयार किया हुआ था। सामने के बरामदे में चमगादड़ झूल रहे थे। मधुमक्खी के छत्ते लटक रहे थे, कुम्हार के चाक हों, जैसे। एक कोने में झरे—बावड़ी थे। स्याह काली छिपकलियों का दीवारों पर अविजित शासन था। झरबेरियाँ खड़ी थीं। उनके इर्द—गिर्द बन्दर किलौल रहे थे। वह इसी दफ्तर में अपनी नौकरी का साक्षात्कार देने आया था। उसे उस दिन यह दफ्तर इतना नहीं काटा था, जितना आज काट—चुभ रहा था।” जिला शिक्षा अधिकारी के दफ्तर की ऐसी हालत देख देशराज आश्चर्य में था। जिस दफ्तर में लोग होने चाहिए, वहाँ चमगादड़, मधुमक्खी, छिपकलियाँ, बन्दर आदि का निवास था। ऐसी परिस्थिति में देश की शिक्षा व्यवस्था कैसे ठीक हो सकती है।

जिला शिक्षा अधिकारी के आते ही देशराज अपना आवेदन देता है। अधिकारी उससे कहता है— “देशराज तुम निःशक्त हो। तुम्हारे घर की परिस्थितियाँ विषम हैं। तुम्हारा केस जेनुइन है। मुझे नहीं लगता, ट्रान्सफर न हो। लेकिन आजकल चपरासी तक के ट्रान्सफर भी मंत्री जी ने अपने हाथ में ले लिए हैं। मैं तो दस्तखत मात्र हूँ।” यहाँ कार्यालयों में होने वाली घोटालों का चित्रण किया गया है। ऊँचे पद पर रहने वाले किस तरह से घोटाला करते हैं, उसका सजीव चित्रण है। जो काम एक ही बार में हो सकता है। उसके लिए जनता को अनेक बार दफ्तर में जाना पड़ता है। वह अपाहिज होने के बावजूद हार नहीं मानता। उसे जहाँ—जहाँ जाने को बोला गया वह वहाँ—वहाँ गया। फिर भी उसका काम नहीं हो पाया। अंत में देशराज मंत्री जी के पास जाने को सोचता है। वह पहले घबराता भी है। बाद में सोचता है— “हाँ है। मंत्री जी भी आदमी ही हैं, कोई शेर—बघेरा नहीं, गटक जायेंगे, मुझे। वे हमारी वोट से ही चुने गए हैं। मैं उनसे मिलूँगा और ट्रान्सफर करवाऊँगा अपना।” इससे जाहिर है कि आम जनता नेताओं की कही बात कभी नहीं भूलती। वह सोचती है कि नेता अपनी बात पर जरूर कायम रहेंगे। परंतु चुनाव जीतने के बाद नेता सबकुछ भूल जाता है। उन्हें जनता से कोई मतलब नहीं रहता है। उन्हें केवल वोट चाहिए। जिसके लिए चुनाव से पहले कुछ भी कर सकता है। परंतु चुनाव के बाद सब भूल जाता है।

देशराज अपने माता—पिता को भी मंत्री के पास ले जाता है। ताकि उन दोनों पर तरस आकर कम से कम तबादला करवा दे। वह बहुत उम्मीद के साथ मंत्री के पास जाता है। देशराज अपने बूढ़े माता—पिता को

दोनों तरफ गोद में उठाकर ले जाता है। वहाँ के कुछ लोग तो उसका उपहास करते हैं— “उसने माँ को अपनी बाई गोद में लिया। बापू को दाई गोद में लिया, मानो वह उसके माँ और बापू नहीं, जुड़वा टाबर हो। वह उन दोनों को लेकर हाँफता—काँपता—लंगड़ाता मंत्री जी के पास पहुँच गया था। स्वयं मंत्री जी और वहाँ मौजूद तमाम लोग देशराज को हंसी और उपहास भरी नजरों से देख रहे थे, तमाशगीर हो। किसी ने कटाक्ष किया— ‘अरे वाह, भाई वाह, श्रवन कुमार आ गया है, सच में।’ देशराज ने तबादले के लिए आवेदन मंत्री को दिया। मंत्री ने कुछ नहीं कहा। उसे लेकर पी.ए. को दे दिया। दुःखी होकर देशराज घर आया। उसकी माँ ने कानों की मुर्कियाँ और कुछ चांदी के गहने निकाल कर दिए। जाकर मंत्री को देने को कहा। वह बस चाहते थे कि तबादला हो जाए।

अगले दिन देशराज मंत्री के पास फिर गया। वह जब मंत्री के चैम्बर में गया। उसने देखा कि चैम्बर में न्याय की मूर्ति के स्थान पर भ्रष्टाचार की तस्वीर थी। लेकिन वहाँ अन्दर ही अन्दर भ्रष्टाचार भरा था। “मंत्री जी ने आवेदन टेबल पर रख कर मुँह फेर लिया था। बड़ा आदमी छोटी सी चीज को भी खतरा मान बैठता है। वे एक बार डरे जरूर लेकिन देशराज की दयनीयता देख कर जिज्ञासा और जुगुप्सा से पोटली की गाँठ खोलने लग गए थे। धन देख वे चौंके और सहज होते गए।” इसमें दिखाया है कि मंत्री भी भ्रष्टाचार से अछुता नहीं है। अन्यथा वह बिना रिश्वत के ही देशराज का काम कर देता। यहाँ दिखाया है कि पैसा लेने के बाद भी मंत्री अपना कार्य नहीं करता। जैसा कि यहाँ देख सकते हैं— “मंत्री जी ने पोटली रख ली थी और देशराज का आवेदन फाड़ कर डस्टबिन में पटक दिया था।” मंत्री चुनाव के वक्त जो जो वादा करता है। चुनाव होने के बाद वह सब भूल जाता है। ठीक उसी तरह देशराज से पैसा लेने के बावजूद मंत्री उसका काम यानि तबादला नहीं करता। देशराज अपना आवेदन और धन मंत्री को देकर चला जाता है। वह जाते वक्त अपनी बैग से झुनझुना निकाल कर बजाते हुए जाता है। यहाँ झुनझुना विद्रोह का प्रतीक है। देशराज झुनझुना बजा बजाकर मंत्री के कानों में अपनी बात पहुँचाना चाहता है। वह अपने दुःख को सबको दिखाना चाहता है। वह झुनझुना बजाकर अपने मन की पीड़ा को लोगों के सामने अभिव्यक्त करता है। ताकि लोग व्यवस्था के विरोध में अपनी आवाज उठाये। समाज से भ्रष्टाचार समाप्त हो।

कहानी में एक जगह यह भी दिखाया है कि सरकारी नौकरी के लिए कोई पहचान वाला या पार्टी की नेता से पहचान आवश्यक है। कहानी में स्वयं नेता देशराज को देख सोचने लगता है— “न पार्टी का कोई नेता इसके साथ है, न उनका कोई सगा—सम्बन्धी—बिचौलिया या दलाल है। पांगला—पगला भी है। सरकारी नौकरी में आ मरा है।” इससे पता चलता है कि सरकारी नौकरी उन्हीं को मिलती है, जिसका किसी नेता के साथ पहचान हो।

निष्कर्ष :-

‘झुनझुना’ कहानी रत्नकुमार साम्भरिया की एक सशक्त कहानी है। इसमें उन्होंने समाज में फैले भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्रण किया है। रत्नकुमार सांभरिया ने कहानी के माध्यम से पाठक वर्ग को भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाने को प्रेरित किया है। उन्होंने पाठक वर्ग को भ्रष्टाचार का सच्चा आईना दिखाया है। कहानी में स्कूल, सरकारी कार्यालयों में होने वाले भ्रष्टाचार को रूप प्रदान किया गया है। समाज में भ्रष्टाचार गहरे रूप में विद्यमान है। एक चपरासी की नौकरी के तबादला के लिए भी रिश्वत देना पड़ता है। देशराज एक दिव्यांग था। फिर भी वह अपने तबादला के लिए पूरी कोशिश करता है। उसे जहाँ—जहाँ जाने को कहा गया था, वह

गया। लेकिन उसका काम नहीं हुआ। सब उसे दूसरी जगह भेज देते हैं। 'झुनझुना' कहानी के माध्यम से रत्नकुमार सांभरिया ने समाज को जागरुक होने को कहा है। साथ ही भ्रष्ट नेताओं की कर्तुत से रूबरू करवाया है। आज भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि स्कूल के कर्मचारियों से लेकर के ऊँचे पद पर रहने वाले मंत्री तक को रिश्वत देनी पड़ती है। इस तरह समाज का भला कैसे हो सकता है। इस तरह तो देश पतन की ओर अग्रसर होगा।

संदर्भ सूची :-

1. एयरगन का घोड़ा, रत्नकुमार साम्भरिया, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड-नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2015, पृ-87
2. वही, पृ-88
3. वही, पृ-88
4. वही, पृ-90
5. वही, पृ-90
6. वही, पृ-90
7. वही, पृ-91-92
8. वही, पृ-94-95
9. वही, पृ-95
10. वही, पृ-96
11. वही, पृ-99
12. वही, पृ-101
13. वही, पृ-101
14. वही, पृ-101

मौ- bernaligogoi733@gmail.com



वैश्विक चेतना से युक्त है हिंदी साहित्य

डॉ. गोपीराम शर्मा

सह आचार्य, हिंदी विभाग, डॉ. भीमराव अंबेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान 335001

‘साहित्य समाज का दर्पण होता है’। ऐसा माना जाता है और यह भी कहा जाता है कि ‘ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है।’ यह दोनों ही युक्तियां साहित्य के विषय में प्रचलित रही हैं। हित की भावना के साथ जो रचना सृजित होती है वही साहित्य है। मनुष्य प्राणी होने के नाते सामुदायिक जीवन में रहना चाहता है। पाषाण युग से लेकर 21वीं सदी तक की यात्रा में मनुष्य ने ‘सामाजिकता’ को मुख्य आग्रह माना है। मनुष्य ने ऐसे सामाजिक नियम बनाए हैं जिससे वह प्रत्येक मनुष्य के साथ आबद्ध रहे। वह प्राणिजगत् में स्वयं को सबसे उच्च कोटि का मानता है। इसका सबसे बड़ा आधार है उसका विचारवान होना।

‘प्रत्येक राष्ट्र का अपना विशेष जीवन संगीत होता है और उसी लय तरंग के साथ राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है। भारत राष्ट्र ने अनादि काल से इस विशिष्टता को सुरक्षित रखा है।’ भारत की विशिष्टताओं में केवल भौतिकता या सुख संपत्ति मुख्य नहीं है। भारत ज्ञान विज्ञान को शिखर तक पहुंचाने के लक्ष्य को सामने रखकर चला है।

साहित्य और समाज के संबंधों को लेकर बहुत बार चर्चा होती रही है। वह ‘स्वांतः सुखाय’ रूप से लेकर ‘लोक हिताय’ तक की यात्रा कर आया है। समाज के उद्धार के लिए साहित्य की रचना की जाती रही है। साहित्य मानव जीवन की संवेदना और विचारों का संवाहक होता है।

साहित्य ज्ञान परंपरा और जीवन पद्धति को लेकर आगे बढ़ता है। भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल स्रोत हैं ‘वेद’। वेद भारतीय धर्म दर्शन संस्कृत साहित्य आदि के मूल स्रोत रहे हैं। प्राचीन काल में इतने विशाल और समृद्ध साहित्य के विकास में हजारों वर्ष लगे होंगे। इस साहित्य का बहुत-सा भाग विदेशी आक्रमणकारियों ने नष्ट भी कर दिया।

साहित्य बहुत सामर्थ्यवान होता है। किसी समाज या राष्ट्र की एकात्मकता को प्रकट करने और बनाए रखने का माध्यम साहित्य ही होता है। इसी कारण आक्रमणों से यह राष्ट्र बचा रहा है। क्योंकि यहां की साहित्य की एक परंपरा रही है। विश्व के अनेक राष्ट्र अपना अस्तित्व इसीलिए नहीं बचा पाए क्योंकि उनके पास ऐसा समृद्ध साहित्य नहीं रहा।

साहित्य क्यों लिखा जाए, इसके लिए अलग-अलग मत दिए जाते हैं। साहित्य केवल कला के लिए ही लिखा जा सकता है या मनोरंजन के लिए, ऐसा कहने वाले बहुत लोग हैं परंतु वास्तव में साहित्य का उद्देश्य समाज का निर्माण होता है। इसी से श्रेष्ठ व्यक्तित्व बनाए जाते, हैं गढ़े जाते हैं। 'जिस तरह साहित्य समाज के लिए उपयोगी है उसी तरह समाज, साहित्य के लिए। समाज के अभाव में साहित्य की कल्पना तक नहीं की जा सकती।'²

साहित्य समाज का दर्पण मान लिया जाता है। जैसा समाज है वैसी ही साहित्य की रचना होती है, जबकि साहित्य दीपक की तरह होता है वह समाज को अंधकार में दिशा दिखाने का कार्य करता है। दीर्घकालीन पराधीनता के कारण इस समाज में जो अव्यवस्थाएं आ गई हैं उनको दूर करने का कार्य साहित्य ही कार्य कर सकता है। लंबी पराधीनता के कारण हमारी सभी व्यवस्थाओं में संकुचन आ गया इसीलिए कहा गया—

आजादी के जंग में बब्बर शेर कुर्बान हो गए।

मारी शेर की खाने वाले शेर हिंदुस्तान हो गए।

भारतीय समाज में कुरीतियां, जड़ता, अंधविश्वास, जातिवाद आदि घर कर गए हैं उन्हें साहित्य के प्रहार से ही हटाया जा सकता है। परंतु आज जो साहित्य लिखा जा रहा है वह वास्तव में लिखा नहीं जा रहा बल्कि लिखवाया जा रहा है। नए-नए वाद और विमर्श सामने प्रस्तुत किए जा रहे हैं। कहा जा रहा है कि यही आज का चलन है, यही समय की मांग विदेशी विचार से प्रभावित साहित्य और साहित्यकारों ने साहित्य की उद्देश्यों को सीमित करके रख दिया है। वे मानते हैं कि साहित्यकार का कार्य सुधारक का नहीं है, साहित्य कोई रूपांतरकारी कार्य नहीं करता। यथार्थवाद के नाम पर जितना कलुषित और खराबी वाला साहित्य लिखा जा सकता है, उसे ही ठीक या श्रेष्ठ माना जाता है। यही कारण है बहुत सारे लोग तुलसीदास जी के साहित्य को इसलिए ठीक नहीं मानते की उनके साहित्य में बहुत सारी कलुषिता, समाज की बुराई नहीं मिलती। जो साहित्यकार उत्साह, आनंद और सकारात्मक भविष्य का काव्य लिखता है, वह दो कौड़ी का है, इसके प्रत्युत् समाज को बिल्कुल खराब और बर्बाद बताता है और भविष्य को अंधकारमय घोषित करता है वही ऊंचे किस्म का साहित्यकार है।

तुलसीदास के काव्य को 'स्वान्त सुखाय' के मिस यह बतलाने की चेष्टा की जाती है कि यह काव्य केवल उनके अपने आनंद के लिए है, जबकि तुलसी का स्वान्त सुखाय तब पूरा होता है जब पूरा जगत सुखी हो। 'पर हित सरिस धर्म नहीं भाई' जैसा आदर्श तुलसी सामने रखते हैं। जो साहित्य लोकरंजन के लिए रखा जाता जाता है मनोरंजन से के उद्देश्य से भरा होता है। वह साहित्य एक पक्षीय होता है। साहित्य कला के लिए है— यह गौण उद्देश्य है। जो युगांतरकारी साहित्य होता है, उसी से श्रेष्ठ समाज का निर्माण संभव होता है।

साहित्य की अनिवार्य दिशा उसकी कल्याणकारी शक्ति है। जिस साहित्य में इसका अभाव है वह साहित्य निर्णायक नहीं हो सकता। साहित्य की प्रतिबद्धता मानव जीवन और जीवन मूल्यों की प्रतिस्थापन के लिए है। समाज या राष्ट्र कितना सामर्थ्यवान है, इसका पता दो प्रकार से होता है—एक तो क्षात्र बाल अर्थात् सेना की

शक्ति से। दूसरा समाज व राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना से। आज यह समर्पण की भावना साहित्य के द्वारा ही बनाई जा सकती है।

साहित्य के माध्यम से संस्कृति का फैलाव होता है। एक भाषा निर्मित होती है और राष्ट्र के प्रति आत्मीय भाव जाग्रत होता है। किसी भी स्थान पर रहने वाला मनुष्य मानवता की दृष्टि से एक ही है। भौगोलिक स्थिति, जलवायु और स्थानीय उपलब्धता के आधार पर मनुष्य का खान-पान, रहना व वेशभूषा होती है परंतु इन सभी व्यक्तियों के बीच एक जैसा भाव संबंध तभी बनता है, जब इनके बीच कोई परंपरा स्थापित हो। कोई एक जीवन पद्धति स्थापित हो। इस जीवन पद्धति का बोध साहित्य द्वारा ही संभव होता है। यदि श्रेष्ठ साहित्य होता है तो यह संबंध गहरा और स्थाई बन जाता है।

‘आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि जो हृदय संसार की जातियों के बीच अपनी जाति की स्वतंत्रता का अनुभव नहीं कर सकता, वह देश प्रेम का दावा नहीं कर सकता। इस स्वतंत्रता सत्ता से अभिप्राय स्वरूप की स्वतंत्रता सत्ता से है। केवल अन्न धन संचित करने और अधिकार भोगने की स्वतंत्रता से नहीं। अपने स्वरूप को भूल कर यदि भारतवासियों ने संसार में सुख समृद्धि प्राप्त की तो क्या? यह ठीक है कि विज्ञान की साधना द्वारा संसार के वर्तमान युग का बहुत सा रूप यूरोप का खड़ा किया हुआ है पर इसका क्या यह मतलब है कि युग का सारा रूप विधान यूरोपीयन करे और हम आराम से जीवन के सब क्षेत्र में उसी के दिये रूप को लेकर रूपवान बनते चलें? क्या अपने स्वतंत्र स्वरूप विकास की हमारी शक्ति सब दिन के लिए मारी गई है?’³

आज साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न वाद विचारधाराएं सक्रिय हैं। अनेक विमर्श चर्चा में है परंतु हमें ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो देश के समाज के मूलभूत प्रश्नों को लेकर लिखा जाए। साहित्य पर समाज के निर्माण की जिम्मेदारी है, केवल यह कह करके कि ‘कला कला के लिए है’ और ‘कला मनोरंजन के लिए है’ साहित्य का उद्देश्य पूरा नहीं होता।

हिंदी का समृद्ध और विश्वस्तरीय साहित्य है। इस दृष्टि से देखा जाए तो हिन्दी के प्रथम लेखक सरहपा को लगभग 1350 वर्ष होने को हैं। हिन्दी इस समय से कुछ और भी पुरानी रही होगी। इस लम्बे काल में हिन्दी ने बहुत बड़ा साहित्य मानवता के लिए दिया है। वैश्विक चेतना लिए उत्कृष्ट भाव और शैली में प्रचुर हिंदी साहित्य उपलब्ध है। पूरा भक्तिकाल का साहित्य ही विशिष्ट है। यह काल मानवीय कल्याण से ओतप्रोत है।

हिंदी साहित्य ने इस लंबे काल में कई उतार चढ़ावों को पार किया है। अपने प्रारंभिक काल ‘आदिकाल’ से ही हिंदी साहित्य ने समाज पर अमिट छाप छोड़ी है। ऐसा नहीं है कि हिंदी का ‘आदिकाल’ प्रारंभिक काल होने के कारण अप्रौढ़ साहित्य है। हिंदी का आदिकाल जब प्रारंभ हो रहा था तो यह समय भारतीय इतिहास का वह समय था जब विदेशी आक्रांता भारत को अपने अधीन करने की कुचेष्टा कर रहे थे। ऐसे समय में जो साहित्य लिखा गया उसमें राष्ट्रीय चेतना की भावना मिलती है। रासोकार हो या दूसरे साहित्यकार, सबने राष्ट्रीय चेतना जागते हुए, उस समय के राजाओं को एक होने की आवाज लगाई। हिंदी का आदिकाल राष्ट्रीय चेतना का कल है इसमें अपने युग के प्रति ऐसी चेतना मिलती है जो वीरता और राष्ट्रीय भावों को एक विशिष्ट ऊंचाई

प्रदान करती है।

भक्ति काल हिंदी का बहुत विशिष्ट काल है। इसमें कबीर, जायसी, तुलसी या अन्य संत-भक्त कवि, सभी ने मानवता के कल्याण के नए आयाम स्थापित किए हैं। कबीरदास हो या तुलसीदास, इनमें भी राष्ट्रीय चेतना की भावना मिलती है। इन्होंने विदेशी आक्रांताओं को ध्यान में रखते हुए अपने समाज को मजबूत करने के उद्देश्य से जाति-पांति, वर्ण व्यवस्था और कुरीतियों को हटाने की बात कही। तुलसीदास अपने राम काव्य के माध्यम से अपनी जमीन या अस्मिता को वापस लाने की बात कहते हैं। समाज सुधार और मानवता के कल्याण की दृष्टि से यह काल विश्व के लिए एक धरोहर है।

रीतिकाल बहुत श्रृंगार प्रभावित काल है, इसमें भी भूषण आदि कई कवि राष्ट्रीय चेतना की आवाज को बुलंद किए हुए हैं। काव्य की कला पक्षों को इसमें मजबूती मिली है। आधुनिक काल में गद्य और पद्य दोनों विधाओं में समाज सुधार राष्ट्रीय चेतना मुखर हुई है। इसके साथ विभिन्न वाद और विचार हिंदी साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं।

रामचरितमानस, कामायनी, गोदान, वोल्गा से गंगा, उर्वशी, मैला आंचल, राग दरबारी, चिदम्बरा, चन्द्रकांता आदि विश्वस्तरीय रचनाएं हैं। पृथ्वीराज रासो, साकेत, राम की शक्ति पूजा, बिहारी सतसई, कितने पाकिस्तान, पहला गिरमिटिया आदि ऐसे ग्रंथ हैं जो विश्व स्तरीय हैं।

हिंदी का काव्य विश्व कल्याण का काव्य है। साकेत के राम हो या प्रिय प्रवास की राधा, कामायनी के मनु हो या राम की शक्ति पूजा के राम, यशोधरा की यशोधरा हो या बुद्ध, सभी के द्वारा मानव कल्याण और संघर्ष की भावना अभिव्यक्त की गई है। केवल काव्य ही नहीं नाटकों, उपन्यासों और कहानियों में भी विश्व कल्याण का भाव समाहित है। हिंदी भाषा और हिंदी का साहित्य संस्कृत साहित्य के बाद विश्व को दिशा दिखाने में सफल और उपयुक्त है।

हिंदी साहित्य में वैश्विक चेतना का संस्पर्श मिलता है। हिन्दी विश्व मानव के विचार विनिमय का माध्यम रही है। भारतीय संस्कृति तथा विश्व बन्धुत्व की विरासत उसे संस्कृत से मिली है। विश्व स्तर पर भारतीय एवं विदेशी विचारधाराओं का आदान-प्रदान हिन्दी में हुआ है। अद्वैत वेदान्त, शैवागम, पुष्टिमार्ग, कबीर पंथ, आर्य समाज, गांधीवाद एवं रहस्यवाद सहित विदेशी विचारधाराएं जैसे विकासवाद, मानवतावाद, अस्तित्ववाद मनोविश्लेषणवाद, मार्क्सवाद, यथार्थवाद, व्यक्तिवाद, राष्ट्रवाद, अभिव्यंजनावाद, समाजवाद, स्वच्छंदतावाद, हालावाद, आधुनिकतावाद, उत्तर आधुनिकतावाद, संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद, उत्तर यथार्थवाद आदि का बोध हिन्दी साहित्य में मिल जाता है। हिन्दी भाषा का प्रकृति परिवेश इतना विस्तीर्ण हो गया है कि वियतनाम में गोली चलती है तो उन हताहत प्राणियों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए हिन्दी जगत् में कवि गोष्ठियां आयोजित होती हैं तथा काव्य संकलन निकल जाते हैं —

‘विश्व चेतना या विश्व मानवबोध की दृष्टि से अंग्रेजी, फ्रेंच का स्वरूप संदिग्ध है। अंग्रेजी का चरित्र अंधराष्ट्रवादी तथा औपनिवेशिक है, जर्मन फासिस्ट है और रूसी, चीनी, अरबी, स्पेनिश आदि अर्द्धविकसित हैं।’⁴

कह सकते हैं हिंदी और हिंदी का साहित्य ही वैश्विक चेतना से भरा हुआ है और वही विश्व का मार्गदर्शन कर सकता है। 'भारतीय साहित्य विश्व बंधुत्व का पोषक रहा है। समाज को अमानवीय भावनाओं क्रियाकलापों से उबारकर उसे प्रगति के स्वभाविक मार्ग पर अग्रसर करना, दीनता-हीनता की स्थितियों से बाहर निकाल कर संपन्नता की स्थिति में लाना और भाईचारे का बीज बोकर समाज व राष्ट्र को एकता में सूत्र में बांधना उसका लक्ष्य रहा है।'⁵

यदि हम चाहते हैं कि हमारा समाज जीवन मूल्यों से आपूरित हो, श्रेष्ठ नागरिक संस्कारों से समुन्नत हो, धर्म और कर्मनिष्ठ चरित्रों प्रतिमूर्ति हो, तो साहित्य भी मूल्य प्रेरित होना चाहिए उद्देश्यनिष्ठ होना चाहिए, सद् साहित्य होना चाहिए। हिंदी भाषा में ज्ञान का साहित्य भले ही किंचित मात्रा में कम हो परंतु भाव का साहित्य अपने-अपने बहुत विशिष्ट है और वह मानव कल्याण की भावना से परिपूर्ण है। हिंदी साहित्य ही सही अर्थों में वैश्विक चेतना का साहित्य है।

संदर्भ संकेत :-

1. साहित्य का धर्म – श्रीधर पराड़कर, अखिल भारतीय साहित्य न्यास, दिल्ली, 2020, पृष्ठ 35
2. डॉ. सुधाकर मिश्र – साहित्य समाज और मीडिया, संपादक, डॉ. शीतला प्रसाद दुबे, अतुल प्रकाशन, कानपुर, 2013, पृष्ठ 19
3. साहित्य का धर्म, श्रीधर पराड़कर, अखिल भारतीय साहित्य परिषद न्यास, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ-44
4. प्रो.सूर्य प्रसाद दीक्षित- हिन्दी विश्व मंच पर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ 11
5. डॉ. सुधाकर मिश्र- साहित्य समाज और मीडिया, संपादक डॉ. शीतला प्रसाद दुबे, अतुल प्रकाशन, कानपुर, 2013, पृष्ठ 18

मोबाइल 9461550103

Email- drgrsharma76@gmail.com



प्राकृतिक सौंदर्य के सदंर्भ में डॉ० राजकुमार निजात का काव्य

गुरप्रीत कौर

शोधार्थी, हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

‘हरिणचरणक्षुण्णोपांता सशाद्वालनिर्झराः
कुसुमकलितैर्विष्वग्वातैस्तरंगितपादपाः ॥
विविध विहगश्रोणीचित्रस्वनप्रतिनादिता,
मनसि न मुद दध्यु केपां शिवा वनभूमयः ॥
सुभाषित।”¹

प्राकृतिक पर्यावरण में मानव जाति के समस्त क्रियाकलाप होते हैं। मानव का पर्यावरण के बिना अस्तित्व ही नहीं है। प्रकृति एक ऐसा प्राकृतिक पर्यावरण है जो मानव का पालन-पोषण करता है, जिसमें मानव सांस लेता है, फलता-फूलता है। प्रकृति मानव को सुरक्षा कवच प्रदान करती है। पर्यावरण मानव के चारों ओर का सुरक्षा कवच है जो मानव को नुकसान से बचाता है। वायु, जल, भूमि, अग्नि, अंबर, पेड़, पौधे, खनिज, जलवायु, मौसम जैसी प्रकृति के बिना मानव का पृथ्वी पर रहना असंभव है। ये मानव जीवन के आधार हैं, इन्हीं से ही जीवन संचार होता है। इस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी एकमात्र ऐसा ग्रह है जहाँ पर जीवन संभव है। प्रकृति ने अपनी गोद में सजीव-निर्जीव सभी को समाहित कर अनेक रंगों से भर रखा है। प्रकृति अपनी छटा पल-पल बदलती रहती है। जैसे सूर्योदय, सूर्यास्त, दोपहर के समय सूर्य की छटा अलग-अलग दिखाई देती है। चाँद की चाँदनी से दिल खुशी से भर जाता है। जिस प्रकार प्रकृति अपना रूप बदलती है। वह बड़ा ही मनमोहक है। बसंत में फूलों व हरी-हरी पत्तियों से भरे पेड़। पतझड़ में पीले तथा मुरझाए पत्ते टहनियों से अलग हो जाते हैं। मानव का स्वभाव भी प्रकृति के अनुसार ही बदलता रहता है। कभी खुश और आशावादी, कभी ऊबा तथा कभी थका हुआ।

मानव एक विवेकशील प्राणी है जीवन के विविध आयामों से अनायास ही प्रभावित होता है। जगत के अनेक रूप हैं। जगत के प्राकृतिक रूप के प्रति मानव मन अत्यधिक आकर्षित होता है। इस समस्त जगत में कहीं तो वनों का रमणीय प्रांगण है कहीं प्रहरी के रूप में पर्वतों का समूह है। कहीं पर तरंगों के माध्यम से अपनी भावनाएं व्यक्त करती तथा कल-कल करती नदियाँ अपने प्रियतम रूपी समुद्र में समा जाने के लिए व्याकुल

दिखाई देती हैं। कहीं-कहीं पर नाना रूपों में पुष्पों की मधुर कलियाँ अपनी स्नेहयुक्त तथा सुन्दर आभा से मन को मोह लेने की क्षमता रखती हैं। प्रकृति को गौरवान्वित करने का श्रेय मानव को ही जाता है। पदार्थ के गुण को उसके पहचानने वाले की दृष्टि के द्वारा ही उचित मूल्य या गौरव प्रदान होता है।

मानव को विकसित तथा पोषित करने का श्रेय प्रकृति को ही जाता है दोनों का आपस में घनिष्ठ संबंध है। जिन पाँच तत्वों पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, और अंबर से मानव सृष्टि की उत्पत्ति तथा विकास हुआ है वह भी मूलतः प्रकृति के ही अंग है। साहित्यकार साहित्य सर्जन के लिए जिन साधनों का उपयोग करता है उनमें प्रकृति प्रमुख हैं। प्रकृति मानव तथा समाज की बाह्य आवश्यकताओं के साथ-साथ मानवीय मन की अन्तःकरण की संवेदनाओं को भी प्रभावित तथा पोषित करने की क्षमता रखती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी भी प्रकृति के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं – “मनुष्य शेष प्रकृति के साथ अपने रागात्मक संबंध का विच्छेद करने से अपने आनंद की व्यापकता को नष्ट कर देता है। बुद्धि की व्याप्ति के लिए मनुष्य को जिस प्रकार विस्तृत और अनेक रागात्मक क्षेत्र मिला है, उसी प्रकार भावों की व्याप्ति के लिए भी।”²

काव्य में प्रकृति का चित्रण हर काल में मिलता है। संस्कृत काव्य से लेकर आधुनिक काव्य तक प्रकृति के विविध रूपों के द्वारा प्रकृति सौन्दर्य की स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ती है। प्रारंभिक काल में प्रकृति के विविध अंगों जैसे चांद, सूर्य, उषा, संध्या, नदी, वृक्षों, पर्वतों को देवत्व का स्थान प्राप्त था। अनेक पशु-पक्षी तथा जानवरों में भी देवत्व के दर्शन किए जाते थे। आज भी मानव में प्रकृति के प्रति जो देवत्व के भाव हैं वह विद्यमान है अर्थात् प्रकृति और मानव का संबंध अनादि काल से ही चला आ रहा है। इसी कारण ही मानव और साहित्य का संबंध उतना ही प्राचीन है जितना मानव और प्रकृति का। वैदिक साहित्य में ऋचाओं तथा सूक्तों के द्वारा प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। लौकिक साहित्य में भी प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण बेजोड़ मिलता है। कालिदास के मेघदूत तथा ऋतुसंहार में जिस प्रकार से प्रकृति का वर्णन किया गया है। यह उनके प्रकृति के प्रति प्रेम को दर्शाता है। ऋतुसंहार में प्रकृति सौन्दर्य का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

“काशौर्मही शिशिरदीधितिना रजन्यो हसैर्जलानि सरिता कुमुदैः सरांसि।

सप्तछदैः कुसुमभारनतैर्वनान्ताः शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीनि।”³

पालि, प्राकृत भी प्रकृति चित्रण में साहित्य का अंग रहा है। हिन्दी के प्रारंभिक कालों में प्रकृति के पृथ्वीराज रासो तथा विद्यापति के काव्य में उद्दीपन तथा आलम्बन रूप में प्रकृति सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। तुलसीदास के बारे में कहा गया है कि “मध्यकालीन हिन्दी कवियों में प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण सबसे अधिक तुलसीदास में ही दिखाई पड़ता है।”⁴

आधुनिक काल तक आते-आते प्रकृति सौन्दर्य अपने पूर्ण वैभव तथा चरमोत्कर्ष के साथ साहित्य में व्यक्त हुआ है। छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत जैसे कवियों ने प्रकृति को ही अपना सर्वस्व माना है। डॉ० नामवर सिंह लिखते हैं। “छायावादी कवियों का प्रकृति की ओर झुकना प्रकृति के सौन्दर्य को उद्घाटित करना यह सब आधुनिक विज्ञान का परिणाम है। विज्ञान में प्रकृति के रहस्यों को जानने की चेष्टा की। धर्म ने प्रकृति के प्रति अंध श्रद्धा का भाव जगाकर जहाँ प्रकृति को जानने से रोका। वहाँ विज्ञान ने विवेक के द्वारा उसका

रहस्योद्घाटन किया। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जिस युग में मनुष्य ने प्रकृति पर सबसे अधिक विजय प्राप्त की, उसी समय उसके प्रकृति पर सबसे अच्छी कविताएँ भी लिखी। वाल्मीकि, कालिदास का प्रकृति काव्य प्रकृति पर आरंभिक विजय का परिणाम है तो छायावादी कवियों का प्रकृति चित्रण आधुनिक विजय का।⁵ छायावाद के बाद के कवियों ने समाज में व्याप्त विपदाओं, रूढ़ियों, असमानता नये प्रयोगों पर अधिक बल दिया।

वर्तमान समय में प्रकृति के दोहन तथा अनेक प्रकार की पर्यावरणीय विपदाओं का वर्णन भी साहित्यकार साहित्य के द्वारा कर रहा है। इसके साथ-साथ प्रकृति के मनोरम सौन्दर्य का वर्णन भी किया जा रहा है। “प्रकृति साहित्य की आत्मा है। उसका अपनी मिट्टी से अपनी जमीन से जुड़ा रहना भी साहित्य की अनिवार्यता है।”⁶ ऐसे ही हरियाणा राज्य के सिरसा जिले के एक लेखक तथा कवि है डॉ० राजकुमार निजात। जिन्होंने अपने कवि कर्म के द्वारा प्रकृति के हर सौन्दर्य का वर्णन किया है। उन्होंने वर्णन ही नहीं कि अपितु स्वयं प्रकृति सम्मुख उपस्थित होकर तथा वार्तालाप करके प्रकृति के प्रति आत्मीयता प्रकट की है। डॉ० निजात के काव्य में प्राकृतिक जगत की उपस्थिति जीवंत पात्रों की तरह है। डॉ० ज्ञानप्रकाश पीयूष ने डॉ० निजात के प्रकृति प्रेम के विषय में कहा है। “डॉ० निजात का प्राकृतिक उपादानों के प्रति नैसर्गिक आकर्षण स्तुत्य एवं सराहनीय है। नदी, पर्वत, घाटियाँ, बाग, खेत, खलिहान, चाँद, सूरज, हवा, बरसात और इस सबका आहवान इन्हें बरबस वहाँ तक खींच ले जाता है। वहाँ के नयनाभिराम दृश्यों का अवलोकन कर ये हतप्रभ, तदरूप सा महसूस करते हैं।”⁷ कवि ने प्रकृति का मानवीकरण करके मानव के साथ तादात्म्य भी स्थापित करना चाहा है। नदी का सफेद जल कहीं से कल-कल करता तथा कहीं शांत स्वभाव में बहता है। कभी झरनों के रूप में नदी में गिरकर घाटियों की शोभा बनता है। तो कहीं पर समतल रूप में बहकर मधुर ध्वनि में परिवर्तित हो जाता है। ‘नदी माँ हो गई’ कविता में कवि लिखते हैं –

‘नदी के कितने ही रूप मैंने देखे हैं
महसूस किए हैं
कभी उसका चाँदी सा जल प्रपात बनाता है
तो कभी वह घाटियों का श्रृंगार हो जाता है
कभी उसका रौद्र स्वरूप डराता है तो
कभी वह संगीत की ध्वनि हो जाती है।’⁸

कवि ने प्रकृति के विभिन्न रूपों को दर्शाकर पाठक को अपने काव्य के द्वारा ही प्रकृति की सुन्दरता के दर्शन करवा दिए। सूर्योदय के समय सूर्य की किरणें धरती पर फैल जाती है तथा पूरी धरती के जगाती है। जैसे मुर्गे की बांग से पूरा घर जाग जाता है। यथा –

“सूरज ने, रोशनी की बांग दी।
दूर-दूर तक, धरती जाग उठी।”⁹

जहाँ गर्मी के दिनों में सूर्य की किरणें भयंकर उष्ण से भरी होकर मानव को अच्छी नहीं लगती। दूसरी ओर शीत ऋतु में वही उष्णता से भरी सूर्य की किरणें मानव को ठंड से बचाकर गर्मी प्रदान करती है। मानव

का मन भी प्रकृति के अनुसार ही बदलता रहता है। यथा –

“सर्दी के मौसम में, करकरी धूप गुनगुनी हो जाती है।
और सूरज हो जाता है, सबका राजा सूरज
बस बैठे रहे, सूरज की छत के नीचे
उसकी ओर निहारते रहे, धूप की उष्ण परतों को।”¹⁰

डॉ० निजात का प्राकृतिक उत्पादों के प्रति आह्वान इन्हें वहाँ तक खींच ले जाता है जहाँ के मनोहर दृश्यों का अवलोकर कर ये मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। जब आकाश में बादल उमड़ते हैं तो वर्षा की मोतियों के समान बून्दें जब धरती पर गिरती है तो वे बड़ों को भी बच्चा बनने पर मजबूर कर देती हैं। कवि के शब्दों में –

“जब होती है बरसात, जब पड़ती है फुहारें
रिम-रिम-झिम-झिम, तो पानी हमें
बच्चा बना देता है, भीतर से उगने लगती है अठखेलियाँ।”¹¹

भारत देश में कहीं गगनचुम्बी चोटियाँ तथा कहीं उन पर बर्फ की सफेद चादर तो कहीं पर पर्वतों की गोद में उगे आसमान को छूते वृक्ष हैं। बादलों की घटाएँ उमड़-उमड़ कर इन पहाड़ों का स्पर्श पाकर मानों खुशी से झूम उठते हैं। डॉ० निजात के द्वारा की गई पहाड़ की सुंदर छटा का वर्णन श्लाघनीय है यथा –

“मुझे पहाड़ हो जाना अच्छा लगता है
अब मैं दिन रात बर्फ ओढ़ता हूँ
बर्फ से खेलता हूँ और दिन रात
बर्फ से बतियाता हूँ
मैं वृक्षों के साथ खेलता हूँ
बादल मुझ पर अपना प्यार जताते हैं
वे मुझ पर उमड़ पड़ते हैं
मुझसे लिपट जाते हैं।”¹²

वृक्ष जीवन के लिए कितने उपयोगी है इस सत्य से कोई भी अनजान नहीं है। जीवनधारा वृक्षों के बिना नहीं चल सकती। प्राकृतिक संतुलन के लिए वृक्ष अत्यंत आवश्यक है। संतुलन के साथ-साथ वृक्षों की शीतल छाया फल, फूल, सब जीवन के लिए उपयोगी हैं। प्रकृति में इतना सौन्दर्य विद्यमान है कि मानव मन को दुःख तकलीफों से राहत महसूस हो सकती है। हवा के तेज झोंको से वृक्ष झूलने के साथ-साथ संगीतमय ध्वनि भी प्रस्तुत करते हैं। कवि ने वृक्षों के परम सौन्दर्य का मानवीकरण करके निम्न प्रकार से वर्णन किया है –

“ऊपर बहुत ऊपर, पहाड़ों के साथ
हसीन वृक्षों की हसीन कतारें थी
जैसे किसी परी के, नवयौवन में
हवा में अपना दुपट्टा बिखेर दिया है

जैसे पहाड़ों ने ओढ़ लिया हो
वृक्षों का श्रृंगार।¹³

पृथ्वी जिस पर जीवन संभव है। मानव को जीवन की निरंतरता के लिए जिस भी आधारभूत संसाधनों की आवश्यकता होती है। उन सब से धरती भरी पड़ी है। धरती को भारतीय संस्कृति में धरती माँ की उपाधि देकर पूजा की जाती है। धरती के पास मानव को देने के लिए अनमोल खजाने हैं जिसका मानव दिन-प्रतिदिन उपयोग करता है। धरती की गोद में पलता-बढ़ता तथा जीवन का अंत हो जाने पर धरती में ही समा जाता है। सभी प्राकृतिक उत्पादों में पृथ्वी और सूरज कवि की विचारशीलता के केन्द्र बिन्दु हैं। कवि धरती को माँ कहकर उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं –

“करे धन्यवाद किसी दिन
धरती माँ का जिसकी मिट्टी से
हमें मिला जीवन अनमोल
हम पैदा हुए, धरती माँ ने पाल-पोसकर
हमें बना दिया एक आदमी।”¹⁴

धरती पर ही मानव का तथा प्रकृति के अन्य उपादानों का जीवन संभव है। प्राकृतिक उपादानों में वृक्ष जिनमें कवि को पीपल और नीम का पेड़ बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। नीम और पीपल के पेड़ जहाँ पर पक्षियों के लिए रैन बसेरा है। वहीं पर ही मानव के स्वास्थ्य में भी लाभदायक है। अपने औषधिय गुणों के कारण इनके सौन्दर्य में कई गुणा वृद्धि हो गई है। पीपल का पेड़ तो पूजनीय भी है। कवि नीम और पीपल के सौन्दर्य के साथ-साथ मानव को इनके जैसा होने का संदेश भी देता है। यथा –

“नीम का एक पेड़ रोज बाँटता
सुबह शाम दातुन
हरे-पत्ते और निमोलियाँ।”¹⁵

कवि ने पीपल के पेड़ के सौन्दर्य तथा उसके गुणों का वर्णन निम्न प्रकार से किया है।

“पीपल जानता है, अपने देव होने के
विलक्षण गुण, फिर भी वह शांत रहता है
घमंड या गर्व से परे, तभी तो
वह हो गया है पूजनीय
वन्दनीय अर्चनीय देव सरीखा
वह केवल वृक्ष नहीं है
दिन रात देता है ऑक्सीजन।”¹⁶

सूरज तो कवि का प्रिय उपादान है। निजात ने लगभग अपने सभी काव्य संग्रहों में सूर्य के असीम सौंदर्य का वर्णन किया है। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक की सूरज की सभी गतिविधियों को कवि ने प्रकृति के अन्य

उपादानों के साथ जोड़कर बड़ा ही मनोरम चित्र अंकित किया है। यथा—

“सूरज के प्रतिबिम्ब से उतरी
उस रक्तिम आभा को
जो प्रभात होने पर
फैलती है आकाश के होठों पर
या सांझ होने पर
नभ के तरुण अवयवों पर मचलती है।”¹⁷

प्राकृतिक उपादानों में आसमान में पंख फैलाकर उड़ते पक्षी अपनी सुंदरता तो बिखेरते ही हैं साथ-साथ आसमान के सौन्दर्य को भी बढ़ा देते हैं। सुबह अपने घोंसलों से निकलकर शाम के वक्त अपने घोंसलों में वापिस आते वक्त संगीत की मधुर ध्वनि देते हुए अपने सौन्दर्य की सुंदर छटा बिखेरते हैं। डॉ० निजात ने प्रकृति के हर सुंदर रूप की छटा को अपने काव्य में बिखेरा है तो वह पक्षियों या परिन्दों के सौन्दर्य का बखान करने में कैसे पिछे रह सकते हैं। उन्हें तो चिड़िया, कोयल, गिलहरी हर परिंदा भाता है। वे उनसे बातें करते प्रतीत होते हैं। गिलहरी का डाल-डाल कर कूदना तथा वृक्षों पर ही रहकर अपनी व्यथा भी वृक्षों से ही बतियाना अच्छा लगता है। कवि भी कोयल तथा चिड़ियों की तरह ही मस्त रहना चाहता है। ‘आसमानों में कविता में कवि ने कोयल तथा चिड़ियों का सुंदर अंकन किया है —

“दिल करता है
किसी कोयल के संग-संग
जी भरकर देर तक गाएँ
चिड़ियों की तरह, चीं चीं चीं चीं
और उनकी तरह चहचहाएँ।”¹⁸

भारत देश जैसी भौगोलिक स्थिति अन्यत्र कहीं भी दिखाई नहीं देती है। भारत का प्राकृतिक वातावरण और सौन्दर्य इसी भौगोलिक स्थित के कारण ही अपने आप में बेजोड़ है। प्राचीन ऋषि, महर्षि तथा साहित्कारों ने प्रकृति के सौन्दर्य का विभिन्न रूपों में वर्णन कर साहित्य को समृद्ध किया है। वर्तमान समय में प्राकृतिक सौन्दर्य को खतरा उत्पन्न होता जा रहा है। पर्यावरण संकट भी आज कवियों तथा साहित्यकारों की कलम का अहम हिस्सा बन चुका है। प्रकृति अपने सौन्दर्य के द्वारा मानव को लुभाती आई है और लुभाती रहेगी। डॉ० राजकुमार निजात जी ने प्रकृति सौन्दर्य की मनोरम तथा ललाम छटा को पाठक वर्ग के मानस पटल पर बिखेरने में अहम भूमिका निभाई है।

संदर्भ सूची :-

1. प्राकृतिक सौन्दर्य www.hindwi.com
2. डॉ० पाण्डेय, रामसजन, सौन्दर्य स्वरूप और विद्यापति, उत्सव प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या — 45
3. डॉ० त्रिपाठी, ब्रह्मानंद (संपादक) कालिदास, ग्रन्थावली, चौखम्बा सुरभारती प्रकाश, वाराणसी, 2017, अक्टूबर 2023

पृष्ठ संख्या – 329

4. चौधरी, मटुकनाथ, रामचरितमानस और कामायनी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृष्ठ संख्या – 128
5. वहीं, पृष्ठ संख्या – 128
6. शर्मा, सुनीता, पर्यावरण चेतना के संदर्भ में एस. आर. हरनोट के कहानी संग्रह 'मिट्टी के लोग' का अध्ययन (लेख), परिशोध, संयुक्तांक 59–60, हिन्दी विभाव पंजाब विश्वविद्यालय, वर्ष 2014–16, पृष्ठ संख्या– 153
7. डॉ० निजात, राजकुमार, युग से युग तक, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2018, पृष्ठ संख्या – 45
8. वहीं, पृष्ठ संख्या – 22
9. डॉ० निजात, राजकुमार, नदी को तलाश है, एस. एन. पब्लिकेशन, दिल्ली, 2018, पृष्ठ संख्या – 15
10. वहीं, पृष्ठ संख्या – 110
11. डॉ० निजात, राजकुमार, युग से युग तक, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2018, पृष्ठ संख्या – 48
12. डॉ० निजात, राजकुमार, तुम अवतार नहीं ये, नवशिला प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या – 104
13. वहीं, पृष्ठ संख्या – 106
14. डॉ० निजात, राजकुमार, रास्ते इंतजार नहीं करते, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2018, पृष्ठ संख्या – 106
15. वहीं पृष्ठ संख्या – 45
16. वहीं पृष्ठ संख्या – 44
17. डॉ० निजात, राजकुमार, अब तुम रहने दो, राज पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 2004, पृष्ठ संख्या – 65
18. डॉ० निजात, राजकुमार, युग से युग तक, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2018, पृष्ठ संख्या – 40



वैश्विक परिपेक्ष्य में भारतीय शिक्षा

डॉ. हेमलता

सहायक प्रोफेसर (हिन्दी), राजकीय महाविद्यालय, फरुखनगर, (गुरुग्राम) हरियाणा

परम्परागत भारतीय शिक्षा को हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा माना जाता रहा है। परम्परागत भारतीय शिक्षा, मात्र शिक्षा नहीं वरन जीवन जीने का सूत्र और मन्त्र है। भारतीय शिक्षा मनुष्य और मनुष्यता का निर्माण करती है बल्कि पश्चिम की शिक्षा रोबोट का निर्माण करती है। इसलिए वैश्विक परिपेक्ष्य में आज भारतीय शिक्षा की महती आवश्यकता है। परम्परागत भारतीय शिक्षा का रोजगार के अवसरों से कोई लेना-देना नहीं है। "वैदिक शिक्षा भारत की संस्कृति और समृद्ध विरासत का मूल आधार है। कोई भी व्यक्ति शिक्षित नहीं कहा जा सकता जो अपनी सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण और विस्तार नहीं कर सकता। भारतीय शिक्षा उन सभी समस्याओं का समाधान है जो हम वर्तमान में इस दुनिया में पाते हैं। हमें उत्तर और समाधान खोजने के लिए अब गहराई से देखने की जरूरत है। नैतिक भावना के समुचित विकास द्वारा चरित्र का निर्माण भारतीय शिक्षा का उद्देश्य था।" इसलिए सभी शिक्षा का प्रत्यक्ष उद्देश्य, चाहे वह साहित्यिक हो या पेशेवर, छात्र को समाज का एक उपयोगी सदस्य बनने के योग्य बनाना होना चाहिए। शिक्षा को मनुष्य को एक निश्चित नैतिक भावना देकर और उसे अपने मूल पशु को नियंत्रित करने में सक्षम बनाकर उसके आदर्श स्वभाव का विकास करना चाहिए। भारतीय शिक्षा का उद्देश्य और आदर्श एक साथ और सामंजस्यपूर्ण विकास को बढ़ावा देना था। मनुष्य सामाजिक प्राणी हैं, भारतीय शिक्षा ने न केवल सामाजिक कर्तव्यों पर जोर दिया बल्कि सामाजिक खुशी को भी बढ़ावा दिया।

वैश्विक परिपेक्ष्य में आधुनिक समाजों में लोगों के बीच असमानता व्याप्त है। पश्चिम की शिक्षा पद्धति ने न की भारतीय शिक्षा पर अपितु भारतीय मूल्य, संस्कार, आदर्श और साहित्य पर गहरा प्रभाव डाला है। उसी का परिणाम है कि भारत के सन्दर्भ में कुछ असमानताओं को पिछले कुछ वर्षों से देखा जा रहा है। जयशंकर प्रसाद मिश्र लिखते हैं— "असमानताएं भारत में पूर्व में भी रही हैं लेकिन ये पूर्व में विकृत या भयावह नहीं थी बल्कि ये असमानताएं और भिन्नताएँ भारतीयता की पहचान थी। जैसे— लैंगिक असमानता, जातिगत असमानता, सामन्ती असमानता आदि मध्यकाल की विरासतें हैं। कई देशों, जैसे— अमरीका, फ्रांस, रूस या चीन में कुछ असमानताओं को राजकीय क्रान्ति के माध्यम से समाप्त करने की कोशिश की गई और वे काफी हद तक इसमें सफल भी रहे (लेकिन वहाँ भी लैंगिक व नस्लीय जैसी कुछ असमानताएँ अभी भी बरकरार हैं)। कुछ अन्य देशों, जैसे— इंग्लैंड, जर्मनी, जापान आदि में सामन्ती असमानताएँ अभी भी बरकरार हैं। बड़े भूस्वामी, अभिजात्य वर्ग, आदि की भूमिका अभी भी बनी हुई है। लेकिन यह काफी हद तक लोकतांत्रिक ढाँचों से बन्ध गए हैं। ये तो रही बात पुरानी असमानताओं की। लेकिन औद्योगिक समाज ने खुद भीषण असमानताओं को पैदा किया। पूँजीपति (उद्योगपति,

पूँजी निवेशक, व्यापारी आदि) और मजदूरों के बीच गैर-बराबरी के कई आयाम रहे।² असमानता को खत्म करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा दो तरह से असमानता पर प्रभाव डालती है। पहली व्यक्तिगत उन्नति – निचले तबके के कुछ लोगों को आगे बढ़ने के मौके प्रदान करती है। इससे कुछ गरीबों को तो फायदा होता है और उनकी मिसाल औरों के लिए उम्मीद और आदर्श स्थापित करती है। लेकिन पूरा समाज चूँकि असमानता पर आधारित है, इसका फायदा बहुत कम लोगों को मिल सकता है। शिक्षा की दूसरी भूमिका—समाज में परिवर्तन लाना है। समाज में एक सामूहिक समझ बनाना है, जिससे असमानता आधारित व्यवस्था को बदला जा सके, ताकि स्थाई और व्यापक समानता आधारित विकास हो सके। शिक्षा के माध्यम से समाज में व्याप्त समस्याओं को पहचानना तथा उसे बदलने के तरीकों के बारे में एक साझा समझ बनाना ताकि लोग इस परिवर्तन पर अमल करे। शिक्षा का एक और मकसद है – पूरे समाज में एक सामूहिक चेतना का निर्माण करना और लोगों को समझ और विश्वास के आधार पर साथ लाना। भारतीय शिक्षा में ये सभी गुण मौजूद रहे हैं।

पश्चिम के प्रभाव ने वर्तमान समाज में शिक्षा को ज्ञान से नहीं बल्कि रोजगार से जोड़ दिया गया है। रोजगार की संभावनाओं के अभाव में परम्परागत भारतीय शिक्षा व्यवस्था दम तोड़ रही है। नैतिक शिक्षा, वैदिक शिक्षा का शाश्वत उद्देश्य था। शिक्षण संस्थाओं का कार्य न केवल लोगों को ज्ञानवान बनाना है बल्कि उन्हें सुसंस्कृत बनाना भी था। लेकिन औद्योगीकरण के कारण नैतिक शिक्षा ने अपनी जड़ें खो दी हैं। हम वैज्ञानिक और तकनीकी परिवर्तन के युग में जी रहे हैं, हम इस बात से भी इनकार नहीं करते हैं कि ऐसे परिवर्तनों का एक ही समाज के भीतर और विभिन्न समाजों में विभिन्न सामाजिक समूहों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। हमने भौतिक जीवन की खोज में सत्य के आदर्शों को नजरअंदाज कर दिया है। परम्परागत भारतीय शिक्षा के सिद्धांत विश्व की सभी शिक्षा प्रणालियों के लिए प्रेरणा का स्रोत रहे हैं। आजकल आधुनिक संस्थानों के लिए यह एक बड़ी समस्या बन गई है कि वे छात्रों से कैसे निपटें और उन्हें नैतिक मूल्य कैसे प्रदान करें, क्योंकि अनुशासनहीनता के कारण शैक्षिक वातावरण इतना विषैला हो गया है कि आधुनिक छात्रों में अनुशासन की भावना ही नहीं है। जिस तकनीक से हम अपने ज्ञान और कौशल को बेहतर बनाने के लिए उपयोग कर सकते हैं लेकिन हमने इसे अक्सर मनोरंजन के उद्देश्य से उपयोग करके इसे हानिकारक बना दिया है। आधुनिक छात्र नैतिक रूप से परिपूर्ण नहीं हैं और वे गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार करते हैं।

हम कह सकते हैं कि यह जीवन के भौतिकवादी तरीके का प्रभाव है या हो सकता है यह माता-पिता द्वारा अनुचित देखभाल का प्रभाव हो सकता है या यह समाज में परिवर्तन और पारिवारिक वातावरण में बदलाव का प्रभाव हो या पश्चिम की शिक्षा और संस्कृति का प्रभाव हो सकता है। परम्परागत भारतीय शिक्षा के आदर्शों में लोगों के मन और उनके चरित्र को बदलने की प्रवृत्ति होती है। इसमें बुरे को अच्छे में बदलने की प्रवृत्ति होती है। क्योंकि भारतीय शिक्षा का अंतिम उद्देश्य व्यक्तित्व एवं चरित्र का विकास है। यदि आधुनिक छात्र इंद्रियों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना चाहता है तो उसे परम्परागत भारतीय शिक्षा के आदर्शों का पालन करना होगा। शिक्षा का अंतिम उद्देश्य इस संसार में जीवन की इच्छाओं को पूरा करना नहीं, बल्कि आत्मा की मुक्ति के लिए स्वयं की पूर्ण प्राप्ति होना चाहिए। नैतिक शिक्षा जीवन के महत्व को प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करती है, क्योंकि नैतिक शिक्षा मनुष्य को सभ्य, सुसंस्कृत बनाती है। नैतिक शिक्षा के बिना मनुष्य अच्छे और बुरे का भेद नहीं कर पाता। आधुनिक युग में मूल समस्या भौतिकवादी पद्धति को अपनाना है। आजकल जीवन पूरी तरह से दिखावे

और फैशन से भरा हो गया है। शिक्षा का महत्वपूर्ण पहलू युवाओं को सच्चा बनने के लिए प्रशिक्षित करना है क्योंकि सत्य के मार्ग पर चलने वाली आत्मा कभी पराजित नहीं होती है। हमारे अंदर सभी अनुशासनों की कमी है, हम अपनी जिम्मेदारियों को नहीं समझ पाए हैं। अब शिक्षक और छात्र के बीच कोई बंधन नहीं है, पाठ्यक्रम अलग है। किसी भी शिक्षा प्रणाली का प्राथमिक उद्देश्य संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए। भारतीय शिक्षा न केवल हमारी मातृभूमि बल्कि पूरे विश्व के लिए पूर्णतः प्रेरणादायक है। आज उसकी सबसे अधिक प्रासंगिकता है। भारतीय शिक्षा मनुष्यों से एक साझा मंच पर इकट्ठा होने, एक साथ सोचने और एक सामान्य लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मिलकर काम करने का आग्रह करती है। शिक्षा ही सभी सामाजिक बुराइयों का रामबाण इलाज है। पुरातन युग में शिक्षा हर किसी के लिए सुसंस्कृत बनने के लिए जरूरी थी, न कि पैसे कमाने के लिए। अगर हम बेहतर समाज चाहते हैं, सभ्य लोग चाहते हैं जो अपनी क्षमताओं के अनुसार समाज में योगदान देने के लिए तैयार हों, तो यह आवश्यक है भारतीय शिक्षा प्रणाली पर आधारित नैतिक शिक्षा सभी के लिए उपलब्ध और अनिवार्य हो।

वैश्विक परिपेक्ष में आज आधुनिक संस्थानों के लिए यह बड़ा सवाल बन गया है कि छात्रों के बीच विभिन्न प्रकार की व्यवहार संबंधी समस्याओं का सामना कैसे किया जाए। दरअसल संस्थानों को इस बात की पूरी जानकारी नहीं है कि छात्रों को नैतिक मूल्यों की शिक्षा कब और कैसे देनी चाहिए। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसे विभिन्न सामाजिक आदतें सीखनी होती हैं। जैसे बड़ों और शिक्षकों का सम्मान करना, गरीबों की मदद करना, महिलाओं का सम्मान करना। परम्परागत भारतीय शिक्षा में ये मूल्य निहित थे। बल्कि शिक्षा के अनिवार्य अंग थे। यदि हम वास्तव में बेहतर समाज, भेदभाव रहित विश्व, अच्छे मनुष्य, नैतिक और आदर्श मूल्य के विद्यार्थी चाहते हैं तो छात्रों के स्वभाव को बदलने के लिए नैतिक शिक्षा को प्रमुख हथियार बनाना होगा।

शिक्षा वह है जिसका अंतिम परिणाम मोक्ष है (उपनिषद्)। भारतीय परंपरा के अनुसार शिक्षा केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं है; न ही यह केवल विचार की नर्सरी या नागरिकता के लिए एक स्कूल है। यह सत्य की खोज और सदाचार के अभ्यास में मानव आत्माओं की दीक्षा है। प्राचीन विद्यालयों ने आत्मनिर्भरता के लिए शिक्षा के सिद्धांत का पालन किया। आधुनिक शिक्षा छात्रों को अपने भावी जीवन के लिए तैयार करने पर जोर देती है। व्यावसायिक शिक्षा के क्रम में व्यावसायिक विषयों को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है, लेकिन वांछित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इस दिशा में बहुत कुछ किये जाने की आवश्यकता है।

परम्परागत भारतीय शिक्षा से छात्र विभिन्न सामाजिक आदतें सीख सकेंगे। जैसे लोगों की मदद करना, नम्रता, बड़ों और शिक्षकों का सम्मान करना और बहुत कुछ। ये अच्छी आदतें उन्हें अच्छा सामाजिक प्राणी बनाती हैं और वे अच्छे इंसान के रूप में जाने जाएंगे। छात्र यह महसूस कर पाएंगे कि हमें दूसरों की आलोचना करने में संलग्न नहीं होना चाहिए क्योंकि परम्परागत भारतीय शिक्षा हमें चेतावनी देती है कि जो लोग दूसरों की निंदा करते हैं वे अंततः खुद को नुकसान पहुंचाते हैं। संस्थान आसानी से छात्रों के बीच नैतिक भावनाओं को प्रेरित करेंगे। शिक्षक और छात्र के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण होंगे, महिलाओं का सम्मान बढ़ेगा, सामाजिक बुराइयों से छुटकारा मिलेगा और सबसे महत्वपूर्ण बात चरित्र का निर्माण होगा। क्योंकि हम सभी जानते हैं की भारतीय शिक्षा का उद्देश्य सभी बुराइयों का समाधान है। भौतिकवाद हमारे जीवन का लक्ष्य नहीं होना चाहिए क्योंकि भारतीय शिक्षा हमें सफलता की बजाय मूल्यों पर चलने वाला व्यक्ति बनने की सलाह देती है। जीवन के हर पहलू में

हमें सच्चा रहना होगा क्योंकि वेद कहते हैं; "सत्य कभी नहीं मरता"।³

डॉ. राधाकृष्णन ने लिखा है— "एक सभ्यता ईंटों, स्टील और मशीनरी से नहीं बनती है, यह मनुष्यों, उनकी गुणवत्ता और चरित्र से बनती है।"⁴ इसलिए शिक्षा का असली उद्देश्य शरीर और आत्मा में सभी का विकास करना है। आधुनिक स्थिति अलग है, हमने लगभग वह सब कुछ खो दिया है जो हमें पीढ़ियों से विरासत में मिला था। अनुशासन, छात्र और शिक्षक के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध, सामाजिक, नैतिक मूल्य जो पुरातन काल में विकसित हुए थे, वे सब आधुनिक शिक्षा ने पूरी तरह से खो दीए हैं। यह सच है कि हम पुरातन शिक्षा के सभी पहलुओं का पालन नहीं कर सकते हैं, लेकिन कुछ आदर्श हैं जो वर्तमान शिक्षा प्रणाली में लागू होते हैं। हमें अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को समझने की जरूरत है और हम सभी को कुछ प्रकार का निर्माण करना होगा, समाज में योगदान देना होगा। ऐसी तभी संभव है जब हम परंपरागत भारतीय शिक्षा के सिद्धांतों का पालन करते हैं। पुरातन शिक्षा व्यवस्था में शिक्षित लोग वे लोग थे जिनके पास न केवल ज्ञान था बल्कि चरित्र भी था। ज्ञान की खोज धार्मिक मूल्यों की खोज थी। विद्यार्थी को कठोर नियमों का पालन करना पड़ता था। निर्देश महत्वपूर्ण था, लेकिन शिक्षण से भी अधिक महत्वपूर्ण अनुशासन था— छात्र जीवन के कानूनों और विनियमों के सख्त पालन के माध्यम से पैदा किया गया अनुशासन, अनुशासन जो नैतिकता और धर्म में निहित था, एक छात्र को वासना, क्रोध, लालच, घमंड छोड़ना आवश्यक था। दंभ और अत्यधिक खुशी, इनसे दूर रखा जाता था।

विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण और सर्वांगीण विकास में गुरुकुलों का महत्वपूर्ण योगदान था। प्रकृति के सुरम्य वातावरण में विद्यार्थी अपना शारीरिक एवं मानसिक विकास करने में सक्षम होते थे। विद्यार्थियों का सादा और नियमित संयमित तपस्या पूर्ण जीवन उन्हें ज्ञान की ऊंचाइयों तक लेजाता था। भौतिक सुख साधनों और आमोद-प्रमोद का उन पर कोई प्रभाव नहीं था। परिणाम स्वरूप वे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल रहे। इस प्रकार की शिक्षा संस्थाएँ न केवल छात्रों के शारीरिक और मानसिक विकास में योगदान देंगी वरन् उनकी नगरों के प्रतिदिन के झगड़ों, राजनैतिक कुचक्रों और अवांछनीय प्रवृत्तियों से रक्षा भी करेंगी। शिक्षा संस्थाओं की स्थापना बस्ती से दूर की जा सकती है। वैदिक कालीन भारत के छात्र सादा, सरल और संयमी जीवन व्यतीत करते थे। आधुनिक भारत में उनका जीवन भले ही अक्षरशः अनुकरणीय न हो पर ग्रहणीय अवश्य है।

आज के छात्रों के जीवन में आमूल परिवर्तन हो गया है। उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य शिक्षा प्राप्त करना नहीं वरन् मनोरंजन के विभिन्न साधन तलाशना है। ऐसे में उसका जीवन ऐश्वर्य पूर्ण हो गया है। ऐसी परिस्थिति में प्राचीन काल के छात्रों के उदाहरण को आज के छात्रों के समक्ष रखकर उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाना आवश्यक है।

"आधुनिक भारतीय शिक्षा का स्वरूप धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक है। आधुनिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में विविध पाठ्य विषय सम्मिलित किये गये, जो व्यवसायपरक और व्यावहारिक हैं। आधुनिक दृष्टि से आज का पाठ्यक्रम भले ही उपयोगी कहा जाये परंतु कई विषयों की उपेक्षा यहाँ साफ-साफ दिखाई देती है। जैसे वैदिक साहित्य शाश्वत साहित्य है। जिसमें मानवता, विश्व बन्धुत्व और मानव शांति के तत्व सम्मिलित हैं।"⁵ आधुनिक पाठ्यचर्या में इन्हें सम्मिलित किया जाना चाहिए। वैदिक पाठ्यक्रम में ऐसे बहुत सारे प्रकरण हैं जिन्हें आज की शिक्षा में समाविष्ट किया जा सकता है। ये आधुनिक भारत में सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास तथा विश्व शांति की स्थापना में सहायक हो सकते हैं। इसी प्रकार संस्कृत भाषा, संपूर्ण भारतीय भाषाओं की जननी

है। उसकी उपेक्षा करना न्याय संगत नहीं है। संस्कृत और हिंदी भाषा और साहित्य में शांति, सद्भाव, स्नेह, नैतिकता, आदर्श, मूल्य और शिष्टाचार है। अतः इन दोनों ही भाषाओं की अनदेखी नहीं होनी चाहिए। आज अंग्रेजी के वर्चस्व ने इन्हें हीन बना दिया है।

संदर्भ :-

1. ईश्वरी प्रसाद : प्राचीन भारतीय संस्कृति, मिनू, पृष्ठ-125, पब्लिकेशन इलाहाबाद, 1984
2. जयशंकर प्रसाद मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ-207, वाराणसी, 1968
3. ऋग्वेद : सायण भाष्य संहिता, सं. भाग-3, पृष्ठ- 166, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1933
4. कल्याण : हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ-207, वाराणसी प्रकाशन, वाराणसी- 1996
5. आर. के. मुखर्जी : एजुकेशन इन एन्शियण्ट इण्डिया, पृष्ठ-27, वाराणसी, 1975

ई मेल-hemacug26@gmail.com

M. 8607795928



आनन्दरामायण में द्वीपों का वर्णन

इतिश्री मिश्र, शोधछात्री

डॉ. विनीता पाण्डेय, शोध निर्देशिका

संस्कृत दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, मानविकी संकाय वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान।

आनन्दरामायण का परिचय :-

आनन्दरामायण महाकाव्य का रचयिता महर्षि वाल्मीकि है। इस महाकाव्य ने संस्कृत साहित्य में अपना एक स्वतन्त्र स्थान अलङ्कृत किया है। यह महाकाव्य राम कथा पर आधारित है। यह एक विशाल ग्रन्थ है जिसे नौ काण्डों 109 सर्ग में विभक्त किया गया है।

आनन्दरामायण में द्वीपों का वर्णन -

चारों ओर से जल से घिरे हुए स्थल भाग को द्वीप कहा जाता है, पुराणों के अनुसार, पृथ्वी पर प्रमुखतः सप्त द्वीप अवस्थित है। यथा :

जम्बु प्लक्षशाल्मलिश्च कुशः क्रौंचश्च शाककः

पुष्करसप्तमस्सर्वे समुद्रेसप्तभिवृताः।

अर्थात् (1) जम्बू द्वीप (2) प्लक्षद्वीप (3) शाल्मलि द्वीप (4) कुश द्वीप (5) क्रौंचद्वीप (6) शाकद्वीप (7) पुष्करद्वीप।

ये सभी सात द्वीप 7 प्रकार के जलयुक्त समुद्रों से आवृत्त है। जैसे जम्बू द्वीप क्षीरोदक, अर्थात्खारे जलयुक्त समुद्र द्वारा, प्लक्षद्वीप इक्षुरस अर्थात् गन्ने के रस जैसे रंगवाले समुद्र द्वारा, शाल्मल द्वीप मदिराख्यजल वाले समुद्र द्वारा क्रौंचद्वीप दध्योदक अर्थात्दधि जलयुक्त समुद्र द्वारा, शाकद्वीपदुग्धोदक अर्थात् दुग्ध जल वाले समुद्र द्वारा, पुष्कर द्वीप शुद्ध मीवठेजलवाले समुद्र द्वारा आवृत्त माने गए हैं। उपरोक्त सप्तद्वीपों का विस्तृत वर्णन आनन्द रामायण में वर्णित है।

जम्बूद्वीप -

जम्बूद्वीप को पृथ्वी के सप्त महाद्वीपों में से एक है। आनन्द रामायण में के वर्णनानुसार यह द्वीप पृथ्वी के मध्य में अवस्थित है। इस द्वीपों में विराट जम्बु वृक्ष रहने के कारण इसका नाम जम्बुद्वीप किया गया है। पुराणों में प्रतिपादित व्याख्यान के समर्थन करते हुए इस काव्य में भी इसे लवण समुद्र से आवृत्त एक लक्ष योजन विस्तृत बताया गया है। यथा – एतेषाँ जम्बुद्वीपाँगर्तर्षाणाँ तथासर्वद्वीपाँ तर्रगतवर्षाणाँ यानिया निनामानितानि प्रियव्रत नृप पौत्रनाम सुचितानि सन्ति। तेषु ये ये नृपा जायंते तेतद्वर्षनाम सूचीताएव भवत्यतः सर्वेषाँ पृथकनामा निमयौत्र नोच्यते एवं जम्बूद्वीप मायाम विस्ताराभ्यां लक्षयोजन परिमीतमतिकमनियं समवर्तुलं पुष्करपत्रोंपमं नववर्ष मंडितं

सरघुनायकः स्ववशंचकार ।

इस द्वीप में नौ देश हैं। वो सभी देशों का नाम प्रियव्रत नामक राजा के पोत्रों के नाम से प्रसिद्ध था। जिस देश को जो राजा थे उनके नामानुसार देश का नाम नामित किया गया है। नौ देश है। यथा (1) भारत (2) किम्पुरुष (3) हरि (4) इलावृत (5) भद्राश्च (6) केतुमाल (7) रमणक (8) हिरण्मय (9) उत्तरकुरु। ये सब देश अतीव समृद्ध देश थे इसलिए रामचन्द्र ने सभी राजाओं को पराजित करके तथा जम्बूद्वीप की राजा को मारकर लव को जम्बूद्वीप की अधिपति बनाने के लिए चिन्तन किये थे।

जम्बूद्वीप के आठ उपद्वीप है। जिस समय महाराज सगर के साठ हजार पुत्र समुद्र को खोद रहे थे तब उन्होंने ही द्वीपों की रचना की थी, उन आठो द्वीपों का नाम – (1) स्वर्णप्रस्त, (2) चंद्रशुक्ल, (3) आवर्त (4) रमणक (5) मन्दरहरिण (6) पांचजन्य (7) सिंहल (8) लंका। इस द्वीप अतिशय सुन्दर वर्तुलाकार तथा कमल पत्र की समान थे।

इस द्वीप में असंख्य पर्वत और नदियां है। प्रमुख नदियां है – सीता, अलकनन्दा, चक्षु, भद्रा, तथा जान्हवी। और प्रमुख पर्वतों हैं – नील पर्वत, श्वेत पर्वत, शृंगवान्पर्वत, हिमवान् पर्वत, हेमकूट पर्वत, निषध पर्वत आदि स्थित है।

इस प्रकार आनन्द रामायण में जम्बु द्वीप एवं उसकी स्थिति के विषय में विस्तार पूर्वक उल्लेख किया गया है।

प्लक्षद्वीप -

आनन्द रामायण में वर्णित द्विपों के वर्णना में प्लक्षद्वीप द्वितीय स्थान है। द्विपों की विजय यात्रा प्रसंग में प्लक्षद्वीप का उल्लेख प्राप्त होता है। प्लक्ष दीप अत्यन्त मनोरम दो लाख योजन विस्तृत है उस द्वीप में सुवर्ण का एक वड़ा साप्लक्ष (पाकड) का वृक्ष है उस प्लक्ष के कारण उसका नाम प्लक्षद्वीप रखा गया है।

अथरामोययौश्रीमान् प्लक्षद्वीपमनोरमम् ।

द्विलक्षयोजनमित सप्तवर्ष समन्वितम् ।

दीपाख्याकृच्च यत्रास्ति प्लक्षवृक्षो हिरण्मयः ॥

इस द्वीप का शासक सुचन्द्र है। जो रामचन्द्र से पराजित हुए हैं। यहां रहने वाले लोगों के आराध्य देवता सूर्य तथा देवा राघव ब्राम्हाण है। इस द्वीप में सप्तदेश स्थित है यथा— शिव, यवयस, सुभद्र, शान्ति, क्षेम, अभय आदि और इस द्वीप में प्रमुखतः यात नदीयां पांच पर्वतों का वर्णन किया गया है। सात नदीयां— यथा – अरुणा नदी, नृम्नानदी, अंगिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा, सत्यम्भरा। पांच पर्वतो – यथा— उपेन्द्रसेन' वजकुटाचल, ज्योतिष्मान, सुवर्ण पति तथा मेघमाल। इस प्रकार से प्लक्षद्वीप का विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्लक्षद्वीप -

आनन्द रामायण में वर्णित द्विपों के वर्णना में प्लक्षद्वीप द्वितीय स्थान है। द्विपों की विजय यात्रा प्रसंग में प्लक्षद्वीप का उल्लेख प्राप्त होता है। प्लक्ष दीप अत्यन्त मनोरम दो लाख योजन विस्तृत है उस द्वीप में सुवर्ण का एक वड़ा साप्लक्ष (पाकड) का वृक्ष है उस प्लक्ष के कारण उसका नाम प्लक्षद्वीप रखा गया है।

अथरामोययौश्रीमान् प्लक्षद्वीपमनोरमम् ।

द्विलक्षयोजनमित सप्तवर्ष समन्वितम् ॥

दीपाख्याकृच्च यत्रास्ति प्लक्षवृक्षो हिरण्मयः ।।

इस द्वीप का शासक सुचन्द्र है। जो रामचन्द्र से पराजित हुए हैं। यहां रहने वाले लोगों के आराध्य देवता सूर्य तथा देवा राघव ब्राम्हण है। इस द्वीप में सप्तदेश स्थित है यथा— शिव, यवयस, सुभद्र, शान्ति, क्षेम, अभय आदि और इस द्वीप में प्रमुखतः यात नदीयां पांच पर्वतों का वर्णन किया गया है। सात नदीयां— यथा — अरुणा नदी, नृम्नानदी, अंगिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा, सत्यम्भरा। पांच पर्वतो —यथा— उपेन्द्रसेन 'वजकुटाचल, ज्योतिष्मान, सुवर्ण पति तथा मेघमाल। इस प्रकार से प्लक्षद्वीप का विस्तृत वर्णन किया गया है।

शाल्मलि द्वीप :-

आनन्दरामायण के राज्याकाण्ड में शाल्मलिद्वीप का वर्णन भी विस्तार से है। इसका नामकरण वहाँ स्थित शाल्मलिवृक्ष के आधार पर है। यह द्वीप चार योजन विस्तृत माना गया है।

तथा च शालमलीद्वीपंचतुर्लक्षमितंययौ । दीपाख्याकृच्च यत्रास्तिशाल्मलीद्वीपपादपः ।

इस द्वीप के निवासी चंद्रमा की ही उपासना करते हैं।

अर्थात् इस द्वीप के आराध्य देव चन्द्रदेव है। इस द्वीप में सप्तदेश है। जैसे (1) सुरोचन (2) सौमनस्य, (3) रमणक (4) देववर्ष (5) पारिभद्र (6) आप्यायन (7) अविज्ञात।

सुरोचनंसौमनस्यंतथा रमणकंशुभम् ।

देववर्ष पारिभद्रनामाप्यायनमतुत्तमम् ।।

अविज्ञातंसप्तमं च सप्तवर्षाणिवैक्रमात् ।।

इस द्वीप में अनुमानो, अनुमती, सिनीवाली, सरस्वती, कुहु, रजनी, नन्दा, ओर रोका आदि नदियां प्रवाहित है। और सात पर्वत हैं जो सीमा का काम कर रहे हैं। सात पर्वत का नाम यथाक्रमे (1) शतश्रुङ्ग (2) वामदेव (3) कुन्द (4) कुमुद (5) पुष्पवर्ष (6) सहस्र श्रुति (7) स्वरस, श्रीराम ने इस द्वीप के अधीश्वर को हराकर अपना आधिपत्य स्थापित किए।

कुशद्वीप :-

आनन्दरामायण में राज्य काण्ड के नवें सर्ग में कुशद्वीप का विस्तार से वर्णन किया है। यह द्वीप आठ लाख योजन विस्तृत है। इस द्वीप में देवताओं ने एक कुश का जंगल लगाया थे। इस कारण से इसको कुशद्वीप कहा गया है। इस द्वीप के समस्त निवासी अग्नि के उपासक है।

तत्रोपास्यो जातवेदाः सर्वेषां द्वीपवासिनाम् ।।

दीपाख्याकृच्चयत्रास्तिकुशस्तवः सुरैः कृतः ।

इस द्वीप में सात देश है, यथा— (1) बसु (2) वसूदान (3) दृढरूचि (4) नाभिगुप्त (5) सत्यव्रत (6) विविक्त (7) वामदेव।

अन्य द्वीपों के समान यहां भी सात नदीयां है— (1) रसकुल्या (2) मधुकुल्या (3) मित्र विन्दा (4) श्रुतिविन्दा (5) देवगभी (6) घृतच्युता (7) मन्त्रमाला। और सप्तपर्वत भी है (1) चतुः श्रुङ्ग (2) कपील (3) चित्रकूट (4) देवानीक (5) ऊर्ध्वरोमा (6) द्रविण (7) चक्र।

इस महाकाव्य में श्री राम द्वारा कुशद्वीप के अधिपति महासेन को हराने तथा सम्पूर्ण कुशद्वीप पर अधिकार स्थापित करने का उल्लेख है।

क्रोंचद्वीप :-

आनन्दरामायण के राज्यकाण्ड में इस द्वीप का वर्णन हुआ है। यह द्वीप सोलह लाख योजन विस्तृत है। इस द्वीप में विशाल क्रोंच पर्वत रहने के कारण इस द्वीप का नाम क्रोंच द्वीप रखा गया है।

कुशद्वीपाच्चसज्ञेयोद्विगुणोद्वीपउत्तमः ॥

दीपारख्याकृच्चयत्रास्तिकौचनामागिरिर्महान् ॥

यहाँ कि आराध्य देवता वरुण और विष्णु भगवान है!

अन्य द्वीपों की तरह इस द्वीप में भी सात देश और सात पर्वत है। सात देश यथा (1) आम (2) मधुरुह (3) मेघपृष्ठ (4) सुधामा (5) भ्राजीष्ठ (6) लोहितार्ण (7) वनस्पति। चारों ओर से इस द्वीप को सात पर्वत घेरै हुए हैं। यथा— (1) वर्धमान (2) भोजन (3) उपवर्हण (4) नन्द (5) नन्दन (6) सवतोभद्र (7) शुक्ल। क्रोंचद्वीप में प्रवाहित नदियां अत्यन्त पवित्र है। इन नदियों से स्नान करने से ही समस्त पातक नष्ट हो जाता है। इन सात नदियों का नाम है यथा (1) अमृता (2) अमृतौघा (3) आर्यका (4) तीर्थवती (5) वृत्तिरूपवती (6) पवित्रवती (7) पुण्या। इस महाकाव्य में श्रीराम द्वारा क्रोंचद्वीप के अधिश्चर को हराकर वहाँ स्वयं का अधिकार स्थापित करने का उल्लेख प्राप्त है।

शाकद्वीप :-

आनन्दरामायण में शाक द्वीप का भी यथोचित वर्णन किया है। यह द्वीप बत्तीस लाख योजन विस्तृत है। इस द्वीप में शाक का विशाल वृक्ष होने से इसका नाम शाकद्वीप रखा गया है। यहां वायुरूप धारक भगवान विष्णु उपास्य देव है।

यथाशाकद्वीपययौ रामोद्वार्त्रीशल्लक्षसंमितम् ॥

द्वीपाख्याकृच्च यत्रारित शाकवृक्षौतिरँजनः ॥

यहां अन्य द्वीप समान यात देश है (1) पुरोजन (2) मनोजव (3) पवमान (4) धूम्रानीक (5) चित्ररूप (6) बहुरूप (7) विश्वाधार यहां भी सात नदियाँ है। (1) अनघा (2) आयुर्दा (3) उभयदृष्टि (4) अपराजिता (5) पंचपदी (6) सहस्रश्रुति (7) निजघृति। यहां सात पर्वत है यथा (1) उरुश्रृंग (2) वलभद्र (3) शतकेसर (4) सहस्रस्रोत (5) देवपाल (6) महानस (7) ईशान।

(6) बनगर (3) शतनगर (4) सहस्रस्रोत (5) व्होपान (6) महानस (9) ईशान। श्री राम ने इस द्वीप के अधिश्चर सुन्दर से सात दिनों तक युद्ध करके पराजित किये। इस प्रकार से रामचंद्र ने शाकद्वीप को अपने अधिकार में ले लिए।

पुष्कर द्वीप :-

आनन्दरामायण के राज्य काण्ड में श्री रामचंद्र के द्वीपों विजय यात्रा प्रसङ्ग को में पुष्कर द्वीप का वर्णन किया गया है। यह द्वीप चौसठ लाख योजन विस्तृत है। इस द्वीप में पुष्कर सरोवर रहने के कारण इस द्वीप का नाम पुष्कर द्वीप है। वह सरोवर ब्रम्हा का एक विशेष आसन है। जहां पर कर्ममय ब्रम्हा की मूर्ति को लोग पूजते हैं।

अपरंतद्रातकीत्याख्यातंतेकंकणोपमम् ।

तद्वर्षोणूपा जित्वाततोद्विपेश्वरंनृपम् ।

उत्तराँगाव्हयंरामःपरामुदमवापसः ।

ददर्शपुष्करंतत्रद्विपाख्याकारकंवरम् ॥

इस द्वीप का स्वामी उत्तराङ्ग राजा था। इस द्वीप में दो देशरमपक और प्रधानक माने गये हैं। ये दोनों देश इसकी कंकन की तरह शोभित बताये गये हैं।

इस द्वीप के मध्य में मनसाचल पर्वत विद्यमान है। जो लगभग 10 हजार योजन ऊंचा माना गया है। इस पर्वत पर पूर्व की ओर में इन्द्र को देवधानी पुरी, पश्चिम की ओर वरुण की निम्लोचनी नामकपुरी है, उत्तर ओर कुबेर की अलकापुरी है। मनसाचल पर्वत के आसपास दो-दो हजार योजन ऊँचे अनेक सीमा पर्वत हैं—

तस्मिन् गिरौपूर्वभागे पुरीमघवतः शुभा ।

देवधानिति नाम्ना सा मनोज्ञा ज्वालनप्रभा ॥

गिरौ तस्मिन् दक्षिणस्यां दिशि संयमनी पुरी ।

यमराजस्य सा ज्ञेया मनोज्ञा ज्वलन प्रभा ॥

अतः इस प्रकार से आनन्द रामायण में सप्तद्वीपों का वर्णन अति विस्तृत रूप से प्राप्त होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. चम्पूरामायणम्, आचार्य श्रीरामचन्द्र मिश्रः चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2014
2. रामायण (वाल्मीकि) – गीता प्रेस गोरखपुर, 2020
3. चम्पूरामायणम् प. रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2016
4. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, विद्याभवन चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1965
5. भोजप्रबन्ध निर्णय सागर, प्रेम मुम्बई, 1896
6. आनन्द रामायणम् पं रामतेज पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2021
7. रामायण, चक्रवर्ती राजगोपालचारी कटक स्टूडेंट्स स्टोर, 2021

प्रथम पूज्य श्रीगणेश की प्रतीकात्मकता तथा प्रासंगिकता के साथ ह्वेतार्क गणपति के औषधीय जीवनदायी प्रयोग



जयकुमार ठाकर

वैदिक ध्यान योग केन्द्र, योग शिक्षक, सूरत, गुजरात।

श्रीगणेश करना जिसका अर्थ है किसी कार्य का शुभारंभ करना। इस मुहावरे से जनजीवन में गणेश की सर्वव्यापकता का ही पता चलता है। हिंदुओं में ईश्वर के अतिरिक्त अनेक देवी-देवता हैं तो फिर किसी भी कार्य की शुरुआत पर श्रीगणेश करना ही क्यों कहा जाता है? वस्तुतः किसी भी कार्य के प्रारंभ में सबसे पहले गणेशपूजा या गणेश को स्मरण करने का ही विधान है और वो इसलिए कि गणेश को गणाधिपति या गणाध्यक्ष माना जाता है। गणेश का एक नाम है गणपति जिसका अर्थ होता है समूह का नेता और गणेश में देवताओं का नेतृत्व करने के सभी गुण उपस्थित हैं। इन्हीं गुणों के कारण गणेश सबसे पहले पूजे जाते हैं।

पुराणों में वर्णन मिलता है कि जब शिव ने गलती से अपने ही पुत्र गणेश का सिर काट दिया तो पार्वती बहुत दुखी हो गई और शोक में डूब गई। पार्वती का शोक दूर करने और अपनी भूल का सुधार करने के लिए शिव ने अपने गणों को दौड़ाया और कहा कि ऐसे प्राणी का सिर काटकर ले आओ जो उत्तर दिशा की ओर सिर करके सोया हो। गण इस अवस्था में सोए हुए एक हाथी का सिर काट कर ले आए। शिव ने उसी हस्तिमुख को गणेश के धड़ पर लगा कर उन्हें पुनर्जीवित कर दिया और साथ ही उनको सेना का नायक भी बना दिया। तभी से गणेश गणपति कहलाए। गणपति के इस रूप की पूजा या स्मरण का मंत्र है रू ओम् गणं गणपत्यै नमः। इसका एक दूसरा रूप “ओम् गं गणपत्यै नमः” भी मिलता है।

रिद्धि-सिद्धि प्रदायक गणेश केवल सुख-समृद्ध, वैभव एवं आनंद के ही अधिष्ठाता नहीं हैं अपितु हर प्रकार के विघ्न और कष्टों को हरने वाले तथा बुद्धि देने वाले भी हैं इसीलिए चाहे कोई सामान्य व्यक्ति हो अथवा विद्वान, विद्यार्थी हो अथवा कलाकार, व्यवसायी हो अथवा उद्योगपति, स्त्री हो या पुरुष, मांगलिक कार्य हो अथवा कार्य को निर्विघ्न सम्पन्न करने की इच्छा, हर प्रकार की सफलता के लिए सबसे पहले गणेश का ही स्मरण अथवा पूजा की जाती है। पुस्तक का पहला पृष्ठ हो अथवा किसी मांगलिक अवसर का निमंत्रण पत्रा सबसे पहले लिखा जाता है : “श्री गणेशाय नमः”। बच्चे को वर्णमाला के वर्णों का ज्ञान कराने से पहले उससे उच्चरित कराया जाता है “श्री गणेशाय नमः”। इस प्रकार “श्री गणेशाय नमः” मांगलिक कार्य के प्रारंभ होने का ही प्रतीक है और कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न कराने वाले हैं श्री गणेश। कार्य निर्विघ्न रूप से संपन्न हो जाए इसके लिए गणेश की निम्न स्तुति ही सबसे पहले की जाती है :

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि सम प्रभ ।

निर्विघ्नं कुरु मे देव! सर्वकार्येषु सर्वदा ।।

एक विद्यार्थी भी बुद्धि-प्रदाता गणेश की स्तुति ही सर्वप्रथम करता है ताकि उसे बुद्धि की प्राप्ति हो और साथ ही इस प्राप्ति में कोई विघ्न भी पैदा न हो :

विद्यादाता गणाधीश सूर्यकोटि सम प्रभ ।

निर्विघ्नं कुरु मे देव! सर्वकार्येषु सर्वदा ।।

विद्या की देवी हैं सरस्वती। पूजा या प्रार्थना या स्मरण पहले गणपति का तत्पश्चात् सरस्वती का। सरस्वती पूजा हो तो भी गणेश पहले और लक्ष्मी पूजा हो तो भी गणेश पहले। “रामचरितमानस” का प्रारंभ करते हुए बालकाण्ड के प्रथम सोपान में पहले श्लोक में तुलसीदास लिखते हैं :-

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।

मंगलानां च कत्तरारौ वन्दे वाणीविनायकौ ।।

अर्थात् अक्षरों, अर्थ समूहों, रसों छंदों और मंगलों की करने वाली सरस्वती जी और गणेश जी की मैं वंदना करता हूँ। “विनय पत्रिका” में तुलसीदास अपनी विनय सीता के माध्यम से राम तक पहुँचाने की प्रार्थना करते हैं लेकिन ‘विनय पत्रिका’ में जो सबसे पहला पद है वह है ‘श्रीगणेश-स्तुति’ जो निम्न प्रकार से है :-

गाइये गणपति जगबंदन । संकर-सुवन भवानी-नंदन ।

सिद्ध-सिदन, गज-बदन, विनायक । कृपा-सिंधु, सुंदर सब-लायक ।।

मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता । विद्या-वारिध, बुद्धि-विधाता ।

माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं रामसिय मानस मोरे ।।

तुलसीदास राम के अनन्य भक्त हैं इसलिए हृदय में राम और सीता को ही बसाए रखना चाहते हैं लेकिन इसकी प्राप्ति के लिए सबसे पहले गणपति से ही याचना करते हैं। गणेश की अनुकंपा के अभाव में किसी अन्य ईष्ट की कृपा भी संभव नहीं। कोई भी कार्य हो, अनुष्ठान हो अग्रपूज्य हैं गणेश।

तुलसीदास द्वारा रचित ‘श्रीगणेश-स्तुति’ में गणेश का न केवल परिचय मिलता है अपितु उनकी अनेक विशेषताओं की भी जानकारी प्राप्त होती है। ‘स्तुति’ में एक पंक्ति है ‘संकर-सुवन, भवानी-नंदन’। ‘संकर-सुवन’ अर्थात् शंकर के पुत्र। इस प्रकार गणेश के पिता हैं भगवान शंकर; शिव, तथा माता हैं पार्वती; उमा,। गणेश शंकर और पार्वती के ज्येष्ठ पुत्र हैं तथा उनसे छोटे पुत्र हैं कार्तिकेय। इस प्रकार कार्तिकेय गणेश के अनुज हैं। गणेश की एक बहन भी है जिसका नाम मनसा है।

असंख्य नाम हैं गणेश के लेकिन कहा जाता है कि गणेश के निम्नलिखित बारह नाम प्रातः दोपहर और सांयकाल लेने मात्र से व्यक्ति के सब कष्ट दूर होकर सफलता मिलती है :-

वक्रतुंड, एकदंत, कृष्णपिंगाक्ष, गजवक्त्रा, लंबोदर, विकट, विघ्नराज, धूम्रवर्ण, भालचंद्र, विनायक, गणपति और गजानन। इस सूची में कहीं-कहीं अंतर भी मिलता है लेकिन श्रद्धापूर्वक स्मरण करने से कार्य में सफलता अवश्य मिलती है। कहीं पर गणेश के एक सौ आठ नामों की सूची भी मिलती है लेकिन गणेश के नामों की कोई सीमा नहीं। नामावली ही नहीं उनके स्वरूपों को भी सीमा में बाँधना मुश्किल है। गणेश नेतृत्व, शौर्य और साहस के प्रतीक है। कहीं उनके विनायक रूप में विकरालता, कहीं हेरंब रूप में युद्धप्रियता तथा कहीं विघ्नेश्वर रूप

में लोकरंजक व परोपकारी स्वरूप के दर्शन होते हैं।

गणेश ऐसे देवता हैं जो सम्पूर्ण भारत में ही नहीं अपितु विश्व के अन्य अनेक देशों में भी किसी न किसी रूप में प्रतिष्ठित हैं। पड़ोसी देश नेपाल में गणेश को सूर्य विनायक, सूर्यगणपति अथवा हेरंब के नाम से जाना जाता है। यहाँ हेरंब गणेश के पाँच सिर और दस हाथ मिलते हैं। यूनान के प्राचीन ग्रंथों में बुद्धि के देवता के रूप में 'जानस' का जिक्र मिलता है वह गणेश का ही एक रूप है जिसके सात सिर और एक सूंड है। अन्य पड़ोसी देशों और दूसरे महाद्वीपों में भी गणेश से मिलती-जुलती अनेक प्रतिमाएँ मिलती हैं जिन्हें गणेश की तरह ही पूजा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वैदिक काल से लेकर आज तक संपूर्ण विश्व की संस्कृति में गणेश किसी न किसी रूप में अवश्य ही विद्यमान हैं।

गणेश की रूपाकृति की प्रतीकात्मकता :-

गणेश की बाह्य रूपाकृति कुछ विचित्र सी ही प्रतीत होती है। धड़ मनुष्य का तथा सिर हाथी का। पैर मनुष्य की तरह दो लेकिन हाथ चार या कभी-कभी छः, आठ या दस भी। शरीर के विभिन्न अंगों में भी संतुलन का अभाव तथा अत्यंत स्थूलकाय। स्वयं स्थूलकाय पर वाहन के रूप में मूषक महाशय। ऊपर से देखने पर तो यह विचित्र सा लगता है परन्तु यदि हम गणेश के शरीर के विभिन्न अंगों की प्रतीकात्मकता पर विचार करें तो प्रत्येक अंग एकाधिक आध्यात्मिक संदेश प्रदान करता है। संतुलन बाह्य नहीं आंतरिक होना भी अनिवार्य है। शरीर, मन और बुद्धि में उचित संतुलन और तालमेल होगा तभी व्यक्ति आध्यात्मिक क्षेत्र में पदार्पण कर आत्मज्ञान प्राप्त कर सकेगा। सुकरात अथवा लिंकन की बाह्य कुरूपता उनके विकास और उन्नति में बाधक नहीं बनी। उनके विचार आज भी प्रेरणास्पद हैं। गणेश अपने संपूर्ण शरीर और परिवेश में प्रेरणादायक हैं।

सबसे पहले गणेश के हस्तिमुख पर विचार करते हैं। शिव द्वारा पहले तो गणेश का सिर काटना और फिर उस पर मानवमुख की बजाय हाथी का सिर आरोपित करना वास्तव में प्रतीकात्मक ही है। मनुष्य सकारात्मक और नकारात्मक भावों अथवा वृत्तियों का समुच्चय ही तो है लेकिन यदि नकारात्मकता बढ़ जाती है तो उसका उन्मूलन अनिवार्य है। सिर या मस्तिष्क अहंकार का प्रतीक है। जब तक सिर रूपी अहंकार को उतार कर नहीं फेंका जाता तब तक आध्यात्मिक उन्नति संभव ही नहीं। आध्यात्मिक उन्नति के अभाव में भौतिक उन्नति भी असंभव है और यदि आध्यात्मिक उन्नति के बिना भौतिक उन्नति प्राप्त कर भी ली जाती है तो जीवन में संतुलन संभव नहीं। शरीर, मन और आत्मा का एक धरातल पर आना ही वास्तविक उन्नति है। जीवन में संतुलन के लिए अहंकार की समाप्ति अथवा शिरोच्छेदन अनिवार्य है। प्रेम भी जीवन का अनिवार्य तत्व है। अहंकार के साथ प्रेम भी असंभव है। तभी कबीर भी कहते हैं :-

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।

सीस उतारे भुईं धरे तब पैठे घर माहिं।।

अहंकार के रहते आपको महत्व नहीं मिल सकता। अहंकार का समापन ही किसी को नायक, गणपति अथवा अग्रपूज्य बना सकता है। हाथी बुद्धिमत्ता का प्रतीक है। हाथी का सिर पुनर्स्थापित होने का अर्थ है ज्ञान की प्राप्ति का प्रारंभ। अहंकार गया तो आत्मज्ञान होते देर नहीं लगती। आत्मज्ञान के प्राप्त होने पर अहंकार का विसर्जन स्वाभाविक है। अहंकार के साथ अन्य नकारात्मक वृत्तियाँ भी चली जाती हैं। पुनर्जन्म की स्थिति है ये। एक सिर को काट कर दूसरा सिर लगाना या दूषित रक्त को निकालकर स्वस्थ रक्त चढ़ाना पुनर्जन्म नहीं तो

और क्या है? पुनर्जन्म से तात्पर्य शारीरिक मृत्यु नहीं अपितु दूषित मनोभावों से मुक्ति है। जब व्यक्ति के दूषित मनोभाव तिरोहित हो जाते हैं तभी वह सही अर्थों में जीना प्रारंभ करता है। गणेश का हस्तिमुख आपको लगातार स्मरण कराता रहता है कि आपको हर हाल में अपनी जड़ता और दूषित मनोभावों अथवा विकारों से मुक्त होना है।

हाथी शक्ति, साहस और धैर्य का प्रतीक है। हाथी में अनुशासन भी है और स्वामीभक्ति। हाथी के पैर मजबूत तथा सूंड लचीली होती है। जीवन में स्थायित्व भी हो अर्थात् इरादों में फौलाद—सी मजबूती तथा समय के साथ परिवर्तित होने का गुण भी। जिसके विचारों में जड़ता न हो वही सबको साथ लेकर चल सकता है। लोकतंत्र में राष्ट्रपति का पद सर्वोच्च माना गया है क्योंकि राष्ट्रपति किसी भी प्रकार की दलगत राजनीति से ऊपर उठ कर, पूर्वाग्रह से मुक्त होकर निरपेक्ष भाव से कार्य करता है। वह सबकी भावनों को समझकर सही निर्णय लेने में सक्षम है। निर्णय के समय उसमें लचीलापन है लेकिन निर्णय के कार्यान्वयन में दृढ़ता भी। जब तक किसी व्यक्ति में पूर्वाग्रह तथा अहंकार है, दृढ़ता तथा लोच का अभाव है वह सर्वोच्च पद के लायक नहीं है।

हाथी के कान होते हैं सूप के समान बड़े—बड़े। सूप सार तत्व को रखकर बेकार की थोथी अथवा महत्वहीन वस्तु को उड़ा देता है। सिर्फ काम की बातें ग्रहण करो शेष छोड़ दो तभी मानव जीवन की सार्थकता है, तभी सफलता है। उपयोगी का चुनाव हमें आगे ले जाता है। सही जनप्रतिनिधियों का चुनाव राष्ट्र और समाज की उन्नति में सहायक है। गणेश के बड़े—बड़े हस्तिकर्ण सारग्राह्यता के ही प्रतीक हैं। हाथी का मुँह छोटा है पर कान बड़े—बड़े। यहाँ गणेश संदेश देते हैं कि कम बोलो और सुनो ज्यादा तथा ध्यानपूर्वक। जब जरूरत हो तभी बोलो। इसके लिए चिंतनशील होना अनिवार्य है। हाथी का शरीर विशाल होता है लेकिन आँखें छोटी—छोटी। गणेश की छोटी—छोटी आँखें सूक्ष्म दृष्टि तथा एकाग्रता का प्रतीक हैं जो उनकी चिंतनशीलता का ही प्रमाण है। हाथी की सूंड दूर तक सूंघने में सक्षम होती है। अतः यह दूरदर्शिता के महत्व को प्रतिपादित करती है। आज मनुष्य अपने थोड़े से लाभ के लिए प्रकृति का अंधाधुंध दोहन कर पर्यावरण में अंसतुलन पैदा कर रहा है। ओजोन परत का विनाश कर खुद अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहा है। उसे जीवन के हर क्षेत्र में दूरदर्शी होना चाहिये और हर कदम फूंक—फूंक कर रखना चाहिए। गणेश के दो दाँत हैं जिनमें से एक पूरा है तथा दूसरा अपूर्ण। पूरा दाँत श्रद्धा और विश्वास का प्रतीक है तो अपूर्ण या भग्न दाँत बुद्धि और ज्ञान का। बुद्धि अथवा ज्ञान कभी पूर्ण नहीं हो सकता लेकिन पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से हम निरंतर ज्ञानार्जन और आत्मज्ञान के क्षेत्र में प्रगति कर सकते हैं। महत्व ज्ञान का उतना नहीं है जितना ज्ञान का जीवन में सही और सार्थक उपयोग करने में है। विश्वास भी मात्र ज्ञान प्राप्ति के लिए ही अनिवार्य नहीं है अपितु सामाजिक जीवन में संबंधों के विकास के लिए भी इसका अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। श्रद्धा में पूर्ण समर्पण होता है और समर्पण में अहंकार और द्वैत का विसर्जन। इस प्रभार गणेश का हस्तिमुख एक वृहद आध्यात्मिक और सामाजिक प्रतीकात्मक अर्थ प्रस्तुत करता है।

गणेश के मानवेतर अंग अर्थात् हस्तिमुख या गजशिर के अतिरिक्त उनके शरीर के मानव अंग भी कम प्रतीकात्मक नहीं हैं। छोटी—छोटी मगर मजबूत दो टाँगें और भारी भरकम उदर। भारी—भरकम उदर के कारण ही लंबोदर कहलाए लेकिन लंबोदर का गुण है सब कुछ उदरस्थ कर लेना। सब कुछ स्वीकार कर लेना। सह

लेना। गणेश सब कुछ स्वीकार कर लेते हैं, सह लेते हैं और पचा जाते हैं। बुराइयों को फैलने से रोक देते हैं। शिव ने विष को कंठ में धारण किया था, गणेश नकारात्मकता को उदर में धारण कर लेते हैं। गोपनीयता बनाए रखते हैं। समाज को विकृति से बचाए रखते हैं। ये इस बात का प्रतीक है कि नकारात्मक भावों को मन-मस्तिष्क से निकाल कर उदरस्थ कर लो। मल का स्थान मन नहीं आतें हैं।

गणेश के पैर छोटे-छोटे हैं इसलिए वे तेज नहीं दौड़ सकते। मजबूत पैरों से धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हैं। उनमें उतावलापन नहीं है। आगे बढ़ो लेकिन सहजता से यही संदेश देते हैं गणेश के नन्हें-नन्हें पैर।

गणेश के चारों हाथों में से एक में अंकुश है, दूसरे में पाश, तीसरे में मोदक तथा चौथा आशीर्वाद की मुद्रा में। अंकुश प्रतीक है विषय-वासनाओं पर नियंत्रण का तथा पाश प्रतीक है मन तथा इंद्रियों पर नियंत्रण का। इंद्रियों को वश में रख कर मन को नियंत्रित करो उसमें विषय-वासनाओं और विकारों के उत्पन्न होने पर रोक लगाओ। इच्छाओं पर नियंत्रण कर संयमित जीवन जीओ। मनुष्य के जीवन में रूपांतरण तभी संभव है जब भावनाओं को परिष्कृत किया जा सके। तभी नये मनुष्य का जन्म संभव है। मोदक प्रतीक है आनंद का, सात्विक आहार का। मोदक तत्वज्ञान का भी प्रतीक है। निष्काम कर्म द्वारा व्यक्ति कर्म के बंधन से मुक्त होकर आनंद की प्राप्ति करने में सक्षम है। अभय मुद्रा जीवन में निडरता के साथ आगे बढ़ने का संदेश देती है। जब तक किसी भी प्रकार का भय है हम आगे नहीं बढ़ सकते। मृत्यु का भय ठीक से जीने नहीं देता, रोग का भय स्वस्थ नहीं रहने देता, निर्धनता का भय समृद्धि से दूर ले जाता है। निर्भय होकर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति संभव है।

गणेश का वाहन है नन्हा चूहा जो एक अत्यंत क्षुद्र जीव है। गणेश समता के प्रतीक हैं। उनका सिर पृथ्वी पर सबसे बड़े प्राणी हाथी का तथा वाहन अत्यंत छोटा प्राणी चूहा। समाज के विकास के लिए न केवल सभी वर्गों के लोगों का मिल-जुलकर रहना और कार्य करना अनिवार्य है अपितु धरती पर भी सभी जीवों का अस्तित्व महत्वपूर्ण है। इस शृंखला में यदि एक प्राणी की भी उपेक्षा हुई अथवा उसका लोप हो गया तो मानव जीवन संकट में पड़ जाएगा। सामाजिक विकास के साथ-साथ जीव-जंतुओं और प्रकृति के संरक्षण की भी अत्यंत आवश्यकता है।

गणेश की प्रतीकात्मकता की प्रासंगिकता मात्र धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं अपितु व्यक्ति के स्वयं के विकास, सामाजिक जीवन तथा राष्ट्र की उन्नति के संबंध में भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। गणेश की प्रतीकात्मकता अत्यंत व्यापक है और इसी व्यापकता के कारण गणेशोत्सव मनाने की परंपरा का शुभारंभ और विकास हुआ।

भारतीय वनस्पतियों में मदार एक विशिष्ट वर्ग का पौधा है। इसकी पत्तियों को कोई भी पशु नहीं खाता क्यूंकी यह विषैला होता है, फिर भी यह अद्भुत गुणों से सम्पन्न होता है। इसकी रुई कोमल व गरम होती है। आयुर्वेद में इसकी विषाक्तता को औषधीय प्रयोगों द्वारा जीवनदायी निरूपित किया जाता है।

आमतौर पर बैजूनी रंग के फूल वाले मदार के पौधे ही सब जगह उगते हैं। औषधीय प्रयोगों में वही काम आते हैं, किन्तु एक पौधा ऐसा है, जिसके फूल सफेद होते हैं। उसे सफेद मदार (श्वेतार्क) कहते हैं। श्वेतार्क की एक विशेषता है गणपति की प्राप्ति।

यह निश्चित है कि जिसे श्वेतार्क गणपति प्राप्त हो जाये, वह शिवजी और गणेशजी की कृपा का पात्र हो जाता है। श्वेतार्क के सम्बन्ध में शास्त्र कहता है कि जहाँ कहीं यह पौधा अपने आप उगा हो, उसके

आस-पास पुराने समय का धन गढ़ा होता है। जिस घर में श्वेतार्क की जड़ रहेगी वहाँ से दरिद्रता पलायन कर जायेगी। इस प्रकार यह पौधा मानव के लिये समृद्धिकारी, रक्षक और देव कृपा का प्रदाता होता है।

अतः सफेद मदार की जड़ कहि से प्राप्त करें इसकी जड़ में गणेश जी का वास होता है। कभी-कभी यह जह गणेशकृति में भी प्राप्त हो जाती है अतः उसकी पूजा गणेश प्रतिमा की भावना से करनी चाहिये। उस पर लाल सिन्दूर का लेप करके लाल वस्त्र पर स्थापित करें। यदि जड़ गणेशकार नहो तो उसे किसी कारीगर से बनवा लें। शास्त्रों में इसकी स्तुति प्रशंसा में बहुत कुछ कहा गया है।

सारांश है कि जिस घर में श्वेतार्क गणपति रहते हैं वहाँ दरिद्रता, विघ्न, उपद्रव, मूर्खता, अभिशाप, अभिचार-जनित दुष्प्रभाव समाप्त हो जाते हैं। श्वेतार्क गणपति की उपासना में गणेश मन्त्र का जाप आवश्यक है। जो इस प्रकार है-

मन्त्र- "ॐ वक्रतुण्डाय हुम्", "ॐ श्री गणेशाय नमः"। गणेशोपासना में साधक लाल वस्त्र, लाल आसन, लाल पुष्प, लाल चन्दन, मूंगा या रुद्राक्ष माला का प्रयोग करे। नैवेद्य में गुड़ बेसन अर्पित करे। इस प्रकार की गयी श्वेतार्क गणपति की पूजा का प्रभाव बहुत थोड़े समय में प्रत्यक्ष हो जाता है।

संदर्भ सूची :-

1. गणेश पुराण।
2. महाभारत।
3. "विनयपत्रिका", तुलसीदास।
4. तुलसीदास द्वारा रचित श्रीगणेश-स्तुति।
5. रामचरितमानस, तुलसीदास।
6. लिंग पुराण।



वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय धर्म की प्रांसगिकता

कौशल किशोर

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

यहां भारतीय धर्म का अभिप्राय हिंदू धर्म से है। भारतीय धर्म जिन मूल्यों को लेकर सनातन से आज तक धारण करता आया है उन मूल्यों का व्यवहार विश्व को सतत् विकास की तरफ ले जा सकता है। उदाहरण के लिए – आज पूरे विश्व में जिस विषय पर सबसे अधिक चर्चा हो रही है वह है प्रकृति का संरक्षण अर्थात् प्रकृति को बचाओ उसका दो हनन करो उसके साथ एकता दातम्य बनाकर चलो। वैदिक संस्कृति यज्ञ को केंद्र में रखकर विकसित हुई है। हिंदू धर्म में यज्ञ की संकल्पना ही इसलिए आई है कि प्रकृति से जो हम लेते हैं उसकी कृतज्ञता में यज्ञ को संपन्न किया जाता है। यज्ञ किया ही इसलिए जाता है कि पर्यावरण स्वच्छ और शांत रहे।

भारतीय धर्म में बहुत सी संकल्पनाएं अस्तित्व में आईं जिनमें – ईश्वर का अस्तित्व, भक्ति, गुरु की महत्ता, वर्णाश्रम, पुरुषार्थ, संस्कार, पुनर्जन्म, समानता, बंधुत्व आदि। हिंदू धर्म गौ सेवक, श्रुतियों को मानने वाला, सभी धर्मों का आदर करने वाला, देव मूर्तियों को पूजने वाला, पुनर्जन्म को मानकर उसे मुक्ति में विश्वास रखने वाला और सभी जीवों के साथ अनुकूल व्यवहार करने है।

विश्व संस्कृति और भारतीय संस्कृति के अंतःसंबंध को समझाते हुए रामविलास शर्मा जी ने लिखा— “मानव संस्कृति का अर्थ है विभिन्न देशों की संस्कृति। इन देशों में भारत का स्थान महत्त्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति का सही ज्ञान तभी सम्भव है जब विश्व संस्कृति का भी थोड़ा बहुत ज्ञान हो। भारत में अनेक प्रदेश हैं। इन प्रदेशों की अलग-अलग संस्कृतियाँ हैं फिर साम्य स्थापित है”।¹

ईश्वर की संकल्पना हिंदू धर्म में सच्चिदानन्द रूप में की गई है। ब्रह्म ही सत्य है इसलिए ईश्वर को प्राप्त करना सत्य को जानना। विद्वान व्यक्ति सत्य की अलग-अलग प्रकार से खोजते हैं और परिभाषित करते हैं। ब्रह्म को कोई ज्ञानमार्ग से तो कोई भक्ति मार्ग से प्राप्त करता है। ईश्वर के स्वरूप को लेकर रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने लिखा है :-

“सीय राम मय सब जग जानी”।²

अर्थात् ईश्वर कण-कण में है। यह संकल्पना वेदों से ली गई है। हिन्दू धर्म की यह संकल्पना विश्व दृष्टि को जन्म देती है क्योंकि इसमें सभी को साथ लेकर चलने और सभी के अस्तित्व को स्वीकार करने की दृष्टि है। एक तरफ ईसाई और मुस्लिम धर्म, जो सेमेटिक धर्म हैं जहां एक ही ईश्वर है और एक ही धर्म ग्रंथ वहां ऐसे लोगों की स्वीकृति नहीं हो सकती जो उनसे अलग हैं या उनके ईश्वर में विश्वास नहीं रखते। यह संकल्पना बहुत ही संकुचित दृष्टि को जन्म देती है। विश्व दृष्टि हिन्दू धर्म में है जहां प्रत्येक जीव में ईश्वर का वास है

अर्थात् सब में वही अंश है जो मेरे अंदर है इस दृष्टि में कोई संघर्ष नहीं है। क्योंकि यहाँ 'पर' की संकल्पना ही नहीं है सब 'स्व' के अंदर ही समाया है। श्रीमद्भागवत गीता में ईश्वर स्वरूप श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है—

“ममैवांशजीवलोकेजीवभूतः सनातनः।

मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति”।³

इसके साथ ही भक्ति को हिन्दू धर्म में ईश्वर को जानने का एक मार्ग बताया गया है। रामचारित मानस में तुलसीदास ने लिखा — भगतिहि ज्ञानही नहि कछु भेदा, उभय हरहिं भव संभव खेदा। भारतीय धर्म में भक्ति के नौ प्रकार बताए गए हैं जैसे — श्रवण करना, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन आदि हैं। भक्ति प्रत्येक मनुष्य का स्थायी भाव है। मनोविज्ञान के अनुसार प्रत्येक स्थायी भाव नैसर्गिक भाव है अर्थात् अगर कोई मनुष्य है तो उसमें ये गुण अवश्य होगा। आजकल नास्तिक होना एक चलन सा ही चल गया जिसमें आप एक नैसर्गिक भाव को दबाकर जीवन जीते हैं। जिसके अपने नुकसान हैं।

19वीं शताब्दी में अमेरिका भौतिक सुविधाओं के भोग की चरम सीमा पर था और बौद्धिकता की इस त्रासदी में डूबे युवा ड्रग का नशा करने लगे तथा गंभीर तनाव से गुजरने के कारण बहुत ऐसी घटनाएं हुई जिसमें किसी व्यक्ति ने सभा में घुसकर गोलियां बरसाईं। ये भक्ति विहीन समाज का परिणाम है। ऐसे समय में एक भारतीय संत स्वामी प्रभुपाद जी ने इस्कॉन संस्था के माध्यम अमेरिकी युवाओं को राधा—कृष्ण की भक्ति में रमाया जिससे उनका जीवन सार्थक बनें। भक्ति के कारण हिन्दू धर्म भारत देश से बाहर भी अपनाया गया। नेपाल, कम्बोडिया, तिब्बत, तुर्किस्तान, इंडोनेशिया, जावा, म्यांमार, थायलैण्ड में रामकथा को भक्ति भाव से वहीं की भाषा में पढ़ा और गाया जाता है।

हिन्दू धर्म में पुरुषार्थ की भी संकल्पना है। धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष चार पुरुषार्थ हैं। सनातन धर्म में प्रत्येक व्यक्ति, समाज और राजा के लिए धर्मवत आचरण अनिवार्य है। धर्म प्रत्येक व्यक्ति के लिए कर्तव्य बोध हैं। धर्म प्रत्येक समय और समाज के लिए अनिवार्य तत्व है। इसलिए गीता में कृष्ण ने कहा — अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। अर्थात् धर्म की स्थापना के लिए मैं धरती लोक पर जन्म लेता रहूँगा। दूसरा पुरुषार्थ है अर्थ, जिसको धर्म से प्रेरित होना चाहिए। जो अर्थ अधर्म से उत्पन्न हुआ है उसकी नियति बहुत भयानक है। काम भी मनुष्य के जीवन का हिस्सा है। इच्छाओं को कैसे रूप दिया जाए इस पर भी भारतीय ऋषियों ने चिंतन किया और बताया कि काम मनुष्य की प्रथम प्रवृत्ति है। जिसको लेकर 19वीं सदी में फ्रायड ने अपना मनोवैज्ञानिक सिद्धांत खड़ा किया। मोक्ष को अंतिम पुरुषार्थ के रूप में निर्धारित किया गया। मोक्ष ने मनुष्य को यह बोध कराया कि संसार का भोग इस प्रकार करना चाहिए कि यह अंतिम सत्य नहीं है इसका त्याग निश्चित है। इसलिए ईशोपनिषद में कहा गया है :—

“तेन त्येक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।”⁴

हिन्दू धर्म में राजतन्त्र की परम्परा बहुत प्राचीन है। मनुस्मृति में राज्य और उसका प्रशासन कैसा हो इस पर विस्तार पूर्वक चिंतन किया गया है। मनु ने राजा और प्रजा के बीच के संबंध को प्रदर्शित करते हुए लिखा—“सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यमंपरिरक्षणम्।”⁵ अर्थात् राजा का कर्तव्य है कि वो न्याय के द्वारा सभी की रक्षा करेगा।

मानव सभ्यता के विकास के साथ ही धर्म और राजनीति एक—दूसरे के समानांतर चल रही हैं। दोनों में

संघर्ष भी शाश्वत है। राजनीति राज्य की नीति है जो धर्म से प्रेरित होती है। आज जिसे हम "राजनीति" कहते हैं। उसी की प्राचीन समय में "राजधर्म" की संज्ञा दी गयी। महाभारत के शान्तिपर्व में राजधर्म का विशेष रूप से निरूपित किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रायः पूरे महाभारत में प्रसङ्गानुकूल राजधर्म की बातें कही गयी हैं। राजा का स्वरूप और राजा की आवश्यकता, राजाविहीन समाज की दशा, राजा द्वारा राज्य की व्यवस्था और प्रजापालन आदि राजधर्म के मुख्य के मुख्य तत्व हैं। महाभारत में राजा और राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में संकेत मिलता है। युधिष्ठिर के प्रश्न के उत्तर में भीष्म ने बताया कि सतयुग में राजा और राज्य नहीं हुआ करते थे। धर्म से प्रजा अपने कर्तव्यों का निर्वाह करती थी। इस प्रकार उस समय धर्मानुशासन था।

"राजते इति राजा" जो लोगों के बीच दीप्तिमान होता है सुशोभित होता है, वह राजा है। प्राचीन मान्यता के अनुसार राजा में ईश्वर का अंश होता है। विष्णु, इन्द्र, वरुण आदि देवताओं की उत्पत्ति जिन उपादानों से हुई उन्हीं उपादानों से राजा की भी उत्पत्ति होती है। इसीलिए राजा सबसे तेजस्वी और प्रखर बुद्धि वाला होता है। महाभारत में श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि—"नराणां च नराधिपः" अर्थात् मनुष्य जाति में राजा तो मैं ही हूँ। अभिप्राय यह हुआ कि राजा मनुष्य जाति में से ही होता है बस उस पर ईश्वर की छाप होती है। समाज को संचालित करने के लिए एक मजबूत व्यवस्था की आवश्यकता होती है जिससे अराजक जनता पर नियन्त्रण रखा जा सके। जैसा कि महाभारत के शांति पर्व में उल्लेख मिलता है—

"एवं ये भूतमिच्छेयुः पृथिव्यां मानवाः क्वचित्।

कुर्यु राजानमेवाग्र प्रजानुग्रहकारणात्।।"⁶

प्राचीन काल में राजा का चयन प्रजा मिलकर करती थी। समय व्यतीत होने पर राजपद वंशगत हो गया और राजा के उत्तराधिकारी को ही राज्य प्राप्त होने लगा। बुद्ध के समय में वैशाली और लिच्छवी जैसे गणराज्य थे जहां लोकतंत्रात्मक व्यवस्था थी। सभा के सदस्य जनता चुनती थी और सभासद राजा को चुनते थे। न्यायालय की व्यवस्था थी। न्याय व्यवस्था के स्तर थे, आप निचले न्यायालय से असहमत होकर उच्च न्यायालय में जा सकते थे।

शान्तिपर्व में राजधर्म का महत्त्व उसकी श्रेष्ठता और राजा के आदर्श चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। सभी वर्णाश्रम और धर्मों का पालन करने और पुरुषार्थ चतुष्टय का हेतु होने से राजधर्म सभी धर्मों का मूल कहा गया है। राजधर्म की उपेक्षा कर कोई भी धर्म उन्नति के शिखर को प्राप्त नहीं कर सकता। सभी धर्मों में सभी प्रकार के त्याग का समावेश है और ऋषिगण त्याग को सर्वश्रेष्ठ एवं प्राचीन धर्म बताते हैं। हिन्दू राजा जिन शास्त्रों का पालन करते थे उनके बारे में स्वामी करपात्री महाराज जी ने लिखा है — "साधारण तौर पर शास्त्रज्ञों एवं सदाचारी धर्मनिष्ठ विद्वानों की परिषद् विधान—निर्णेत्री है, विधान—निर्मात्री नहीं राजा शासन करने के लिए जिन पुस्तकों का सहारा लेता था उसके बारे में भारतीय राजनीति शास्त्र वेदों एवं मन्वादि धर्म शास्त्र ही राष्ट्रका संविधान एवं कानून थे।"⁷

भारत के पास इतिहास और दर्शन की बहुत ही समृद्ध परंपरा है। लेकिन उपनिवेश के दौरान अंग्रेजों ने भारतीय मनीषा में बहुत कुछ प्रछिप्त कर दिया। काशी प्रसाद जायसवाल जी ने सही कहा है — "भारतीयों के तिथिविहीन, अर्थात् ऐतिहासिक रूप से आधारहीन, धार्मिक साहित्य के विराट भंडार के बरखिलाफ़ मिशनरियों ने अपने ईश्वर के देहावतार की, और उसके द्वारा किए गए चमत्कारों की, ऐतिहासिक सत्यापनीयता पर बार—बार

बल दिया। हिंदुओं के प्राचीन दस्तावेज़ दंतकथाओं और फंतासियों से इस कदर नथे-गुंथे हैं : कि क्या तथ्य है और क्या कल्पना, इसकी खोज के प्रयास में यूरोप के बेहतरीन सूक्ष्मदर्शी मनीषी धैर्यपूर्ण और दीर्घदीर्घायित परीक्षण किया।⁸

वर्तमान विश्व व्यवस्था को देखते हुए कहा जा सकता है कि भारत जिस पहचान के साथ विश्व में अपनी ज्ञान परम्परा को लेकर मजबूत था आज फिर उसी अस्मिता की तरफ लौट रहा है। विश्व भर की प्राचीन सभ्यताएं अपने अलग-अलग गुणों के कारण जानी जाती हैं, हिन्दू सभ्यता की मुख्य पहचान ही ज्ञान है। इसलिए वसुधा डालमिया ने लिखा— “हिन्दुओं का सुधार-काल आ रहा है। पर साथ ही उससे अधिक प्रबल एक और शक्ति भी आ रही है। वह काफिरों का विचार या यूरोप वालों का ‘मनुष्यत्व’ है। यह एक अद्भुत संयोग है कि प्राचीन काल में जिस जाति ने राष्ट्र-संघटन सम्बन्धी उच्चतम विचारों का विकास किया था, उस जाति का सम्बन्ध आधुनिक काल के राष्ट्र-संघटन सम्बन्धी सबसे बड़े राज्य तंत्र के साथ हो रहा है”⁹ भारतीयता की जो अमूर्त अस्मिता है वह पूरे विश्व की अस्मिता बनती जा रही है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. रामविलास शर्मा — परम्परा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1981, पृष्ठ 5
2. तुलसीदास — रामचरितमानस, गीता प्रेस प्रकाशन, गोरखपुर, छत्तीसवाँ संस्करण, 2022
3. वेदव्यास — श्रीमद्भगवद् गीता, गीता प्रेस प्रकाशन, गोरखपुर, चौबीसवाँ संस्करण, 2006
4. शंकर — ईशादि नौ उपनिषद् भाष्यार्थ, गीता प्रेस प्रकाशन, गोरखपुर, इक्कीसहवाँ संस्करण, 2006, पृष्ठ-25
5. मनु — मनुस्मृति, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2005, पृष्ठ-118
6. वेदव्यास — महाभारत, गीताप्रेस प्रकाशन, गोरखपुर, संस्करण 2022
7. श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज — मार्क्सवाद और रामराज्य, गीता प्रेस प्रकाशन, गोरखपुर, तेरहवाँ संस्करण 2022, पृष्ठ-1115
8. काशी प्रसाद जायसवाल — हिन्दू राज्य तंत्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण 2016
9. वसुधा डालमिया—हिन्दू परंपराओं का राष्ट्रीयकरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2016

फोन— 9582812195

ई मेल –kaushalkishor.dadabad@gmail.com



गांधीवादी शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता

डॉ. (श्रीमती) मंजुलता कश्यप

सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र)

शासकीय टी.सी.एल. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जांजगीर, जिला – जांजगीर चाम्पा (छ.ग.)

सारांश :-

गाँधी जी का मूलमंत्र था – शोषण विहीन समाज की स्थापना करना। उसके लिए सभी शिक्षित चाहिए, क्योंकि शिक्षा के अभाव में एक स्वस्थ समाज का निर्माण असंभव है। गांधी जी ने शिक्षा के निम्नलिखित आधारभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन किया –

- 7 से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों की निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा।
- शिक्षा का माध्यम मातृभाषा।
- बच्चों के शरीर, हृदय, मन और आत्मा का सामंजस्यपूर्ण विकास हो।
- बच्चों के मानवीय गुणों का विकास।
- शिक्षा ऐसी हो जो नवयुवकों को बेरोजगारी से मुक्त कर सके।

गाँधी जी शिक्षा द्वारा मूल्य आधारित एक नये समाज की रचना करना चाहते थे। गाँधी जी शिक्षा में सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों के प्रबल समर्थक हैं। शिक्षा पर गाँधी जी के सब विचार मुख्य रूप से नैतिक सिद्धांतों पर आधारित थे।

गाँधी जी का शिक्षा दर्शन उनके जीवन के सामान्य दर्शन का प्रतिबिम्ब है। “शिक्षा मनुष्य में पहले से मौजूद पूर्णता का प्राकट्य है।” गाँधी जी के अनुसार वास्तविक शिक्षा वह है जो चरित्र का निर्माण, मस्तिष्क की शक्ति में वृद्धि, बुद्धि का विकास कर व्यक्ति को अपने पैरो पर खड़ा होने के योग्य बना सके। सर्वोच्च शिक्षा वह है जो हमारे जीवन और समस्त सृष्टि के बीच समरसता स्थापित करती है। सर्वोच्च शिक्षा वही है जो संपूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है।

गाँधी जी के अनुसार – “किसी भी देश और समाज की उन्नति और अवनति, उस देश के प्रयोजनवादी विचारधारा पर आधारित शिक्षा पर निर्भर करता है।” शिक्षा का उद्देश्य आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति का माध्यम होना चाहिए। मानवीय चरित्र निर्माण के लिए भी शिक्षा में आवश्यक पाठ्यक्रम का विकास होना चाहिए।

शिक्षा मानवीय एवं सामाजिक जीवन में जो कार्य करती है, राष्ट्र उससे प्रभावित होता है। नागरिक राष्ट्र की एक इकाई है, उसके चरित्र से राष्ट्र का चरित्र प्रभावित होता है। उसकी योग्यता एवं क्षमता पर राष्ट्र का विकास निर्भर करता है।

मुख्य शब्द	– शिक्षा के आधारभूत सिद्धांत, शिक्षा पद्धति बुनियादी शिक्षा, शिक्षा के उद्देश्य, प्रासंगिकता।
अध्ययन का उद्देश्य	– 1. गांधीवादी शिक्षा दर्शन का अध्ययन करना। 2. वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता को जानना।
अध्ययन विधि	– द्वितीयक समंको पर आधारित

प्रस्तावना :-

प्राचीन भारत का शिक्षा दर्शन धर्म से प्रभावित था। शिक्षा का उद्देश्य धर्माचरण की वृत्ति जागृत करना था। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का क्रमिक विकास ही शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य था। जीवन की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का प्रभाव शिक्षा दर्शन पर भी पड़ा था। शिक्षा का लक्ष्य यह था कि आध्यात्मिक मूल्यों का विकास हो।

महात्मा गांधी औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था को भारत के लिए हानिकारक मानते थे। गाँधी जी ने अंग्रेजों द्वारा विकसित शिक्षा पद्धति की 3 महत्वपूर्ण कमियाँ बताई –

1. यह विदेशी संस्कृति पर आधारित थी, जिसने स्थानीय संस्कृति लगभग समाप्त कर दी थी।
2. यह हृदय और हाथ की संस्कृति की उपेक्षा कर पूर्णतः दिमाग तक की सीमित रहता है।
3. विदेशी भाषा के माध्यम से सही शिक्षा संभव नहीं है।

गाँधी जी ने अंग्रेजी शिक्षा को मानसिक गुलामी का कारण बताया। औपनिवेशिक शिक्षा की जगह उन्होंने एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के विकास का प्रयास किया, जो मानव श्रम को उसका उचित स्थान देते हुए संवेदनशील हृदय तथा मस्तिष्क का समन्वित विकास कर सकें।

गाँधी जी ने शारीरिक श्रम की नैतिकता पर आधारित शिक्षा दर्शन का विकास किया। इसे उपनिवेशवाद के आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभुत्ववादी शोषण के विकल्प के रूप में विकसित किया गया।

शोध साहित्य का पुनरावलोकन :-

पवन कुमार शर्मा¹ के अनुसार – बाजारवाद की भूमिका आज शिक्षा के भारतीयकरण में सबसे बड़ी बाधा है। बाजार का तंत्र आज सरकारी तंत्र के साथ मिलकर शिक्षा की बाजार उन्मुख नीतियों का ही पोषण करता है। **अभिभव श्रीवास्तव**² के अनुसार – मातृभाषा के महत्व को ध्यान में रखकर वर्ष 1999 में यूनेस्को ने मातृ भाषाओं को संरक्षित और विकसित करने की जरूरत पर बल दिया। 21 फरवरी को अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के रूप में मनाने का प्रस्ताव पारित किया। सफल शिक्षा मातृभाषा में ही संभव है। **पंकज चौबे**³ के अनुसार – शिक्षा का मकसद सिर्फ अक्षर ज्ञान आधारित डिग्री हासिल करना नहीं है, बल्कि रोजगार परक होना चाहिए। गाँधी इस तरह की शिक्षा पद्धति के बड़े समर्थक थे।

शिक्षा के आधारभूत सिद्धांत -

शिक्षा बालक को मातृभाषा में दी जाए। शिक्षा बालकेन्द्रित होनी चाहिए। शिक्षा बालक की मनोवृत्तियों तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों के अनुसार होनी चाहिए। शिक्षा द्वारा बालक में छिपी हुई शक्तियों का विकास करना चाहिए। शिक्षा के विषय रोचक हो। शिक्षा से बालक की शारीरिक शुद्धि, चेतना का विकास ज्ञानेन्द्रियों का विकास होना चाहिए। शिक्षा का लक्ष्य मानव के अंतःकरण का विकास होना चाहिए। छात्रों को भारतीय विचारधारा और भारतीय समाज की पृष्ठभूमि का स्पष्ट ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए। प्रकृति के घनिष्ठ संपर्क में रहकर शिक्षा

देनी चाहिए। पुस्तकीय ज्ञान शिक्षा नहीं हो सकती। ज्ञान व्यक्ति के मन में विद्यमान है। अतः व्यक्ति स्वयं ही सीखता है।

शिक्षक को मित्र, सहायक, पथ-प्रदर्शक एवं दार्शनिक होना चाहिए। भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास करने वाले विषयों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाए। गाँधी जी शिक्षा के द्वारा मनुष्य को लौकिक एवं पारलौकिक दोनों जीवनो के लिए तैयार करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि जब तक हम भौतिक दृष्टि से संपन्न एवं सुखी नहीं होते तब तक ज्ञान, कर्म, भक्ति, योग ये सब कल्पना की वस्तु है।

गाँधी जी देश के छोटे बच्चों को भी आत्मनिर्भर बनाने की शिक्षा देना चाहते थे। इसीलिए वे श्रमदान करने व कराने के पक्षधर थे। इसलिए स्कूलों में बागवानी का एक विशेष पीरियड हुआ करता था। इसका उद्देश्य यह था कि बच्चे आत्मनिर्भर रहे, श्रमदान सीखें।

गाँधी जी ने शिक्षा के उद्देश्य के रूप में वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार के उद्देश्यों का प्रतिपादन किया। व्यक्ति व समाज एक दूसरे के पूरक है। अतः गाँधी जी बच्चों में नैतिक गुणों का विकास करना चाहते थे। बच्चों की शिक्षा शिल्प केन्द्रित होनी चाहिए।

शिक्षा के उद्देश्य :-

जीविकोपार्जन एवं व्यवसायिक उद्देश्य - शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में स्वावलंबन का गुण होना आवश्यक है। **सांस्कृतिक उद्देश्य** - संस्कृति प्रारंभिक वस्तु एवं आधार है, जिसे बालिकाओं को ग्रहण करना चाहिए। **चरित्र विकास** - शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। **सर्वांगीण विकास** - शरीर मन तथा आत्मा सभी का सर्वोत्तम विकास शिक्षा है। **आध्यात्मिक स्वतंत्रता** - "सा विद्या या विमुक्तये" उनका भी आदर्श है। अतः शिक्षा द्वारा आध्यात्मिक स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए। **ईश्वर का ज्ञान एवं अनुभूति** - यह आध्यात्मिक स्वतंत्रता से प्राप्त होती है। **वैयक्तिक एवं सामाजिक** - गाँधी जी वैयक्तिक स्वतंत्रता का सदा आदर करते थे। किन्तु व्यक्ति को वे सामाजिक प्राणी के रूप में देखते थे। **वैयक्तिक उद्देश्य** - चरित्र निर्माण, सर्वांगीण विकास। **सामाजिक उद्देश्य** - स्वावलम्बी नागरिक का निर्माण, सर्वोदय समाज का विकास ग्राम स्वराज की स्थापना।

शिक्षा को समाज का एक निश्चित दिशा में विकास करना चाहिए। समाज में समानता एवं स्वतंत्रता का अधिकार सभी मनुष्यों को प्राप्त होना चाहिए। जिससे सभी मनुष्य परस्पर वर्ण, धर्म, लिंग, जाति व आर्थिक स्थिति संबंधी भेदभाव को भुलाकर स्वयं का एवं समाज का विकास कर लोकतंत्र को मजबूत बनाए। बालक की प्रकृति, आदतों और भावनाओं को शुद्ध और सुन्दर बनाकर उसके हृदय का परिवर्तन करना और उसकी नैतिकता का विकास करना। गाँधी जी ने शिक्षा के उद्देश्यों को दो भागों में विभाजित किया है - तात्कालिक और अंतिम। तात्कालिक उद्देश्य है - जीविकोपार्जन के योग्य बनाना। व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास करना। **अंतिम उद्देश्य** - "मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति, आत्मानुभूति, आत्म ज्ञान अथवा आत्म बोध है।

शिक्षा पद्धति -

शिक्षण विधियाँ ऐसी हो जो बालक को स्वतंत्र वातावरण प्रदान कर सकें तथा बालक का स्वाभाविक विकास संभव हो सके। बालक को शिक्षा उसकी मातृभाषा में ही दी जाए, जिससे वह कठिन विषयों को आसानी से समझ सके। गाँधी जी ने मनुष्य के प्राकृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकार के विकास पर समान बल दिया है। उन्होंने अपनी भाषा तथा संस्कृति के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय महत्व की भाषा एवं सांस्कृतियों के

ज्ञान पर बल दिया है।

पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त वास्तविक परिस्थितियों में रखकर स्वयं करके, स्वयं के अनुभवों एवं स्वयं के निर्णयों द्वारा सिखाया जाए। इस संदर्भ में उन्होंने भ्रमण, अवलोकन, प्रश्नोत्तर के महत्व को स्वीकार किया है।

बुनियादी शिक्षा :-

महात्मा गाँधी ने अपने शिक्षा सिद्धांत का विकास दक्षिण अफ्रीका के प्रवास के दौरान किया। अक्षर ज्ञान के लिए अधिक से अधिक 3 घंटे रखे गए। उनका मातृभाषा के माध्यम से ही शिक्षा देने का आग्रह था।

गाँधी जी लाभ प्रदान करने वाले उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा देना चाहते थे।

गाँधी जी ने जन शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा और स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया। जन शिक्षा दो रूपों में होगी — एक तो बालकों को शिक्षित करने के लिए बेसिक शिक्षा योजना, द्वितीय हस्तकौशल पर केन्द्रित। अप्रशिक्षित प्रौढ़ों की शिक्षा का उत्तरदायित्व समाज का है। प्रौढ़ शिक्षा की पाठ्यचर्या में साक्षरता के साथ-साथ सफाई, स्वास्थ्य रक्षा, बौद्धिक विकास, नैतिक विकास, उद्योग, व्यवसाय, समाज कल्याण और संस्कृति से संबंधित कार्यों को रखा था। यह शिक्षा पुरुषों और स्त्रियों दोनों को देनी चाहिए। गाँधी जी ने बताया कि महिला को पत्नी, माता और समाज निर्माता के रूप में कार्य करना होता है। पहले दो कार्यों में वह पुरुष से अलग अवश्य होती है पर तीसरे उत्तरदायित्व को निर्वाह करने के लिए उसे अपनी सभ्यता और संस्कृति का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए।

अपने शैक्षिक विचारों को कार्यरूप देने के लिए गाँधी जी ने 1937 में देश के समक्ष अपनी वर्धा शिक्षा योजना को भी रखा। इसे प्राथमिक शिक्षा योजना भी कहा जाता है। इसके पाठ्यक्रम में प्राथमिक शिल्प, मातृभाषा, गणित, सामाजिक, अध्ययन और सामान्य विज्ञान सम्मिलित है।

शिक्षा से बालक में मानवीय गुणों का विकास होना चाहिए। शिक्षा किसी लनाभकारी हस्तकारी से प्रारंभ होनी चाहिए जिससे बालक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सके। शिक्षा में श्रम को विशेष महत्व दिया जाए।

प्रासंगिकता :-

गाँधी जी ने मानव निर्माणी शिक्षा पर बल दिया। चरित्र निर्माण, राष्ट्र की निःस्वार्थ सेवा, स्वतंत्रता और समानता पर अधिक बल दिया। वे भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धारक थे। उन्होंने मानवतावाद की शिक्षा दी। उनके लिए सच्ची शिक्षा व्यक्तिगत जीवन की नहीं बल्कि राष्ट्र को समृद्धिशाली बनाने वाली थी। उनके वेदान्त दर्शन ने जीवन तथा शिक्षा के लक्ष्य को नई परिभाषा दी।

शिक्षा मनुष्य को कृषि, औद्योगिक, तकनीकी एवं व्यापार की विधियों से परिचित कराती है। उनमें जीविकोपार्जन करने की क्षमता विकसित करती है। शिक्षा हमें आत्मज्ञान कराती है व परमात्मा तक पहुंचाने के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य संस्कृति अथवा सामाजिक धरोहर का संप्रेषण है। शिक्षा ही एक ऐसा अभिकरण है जिसमें संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संप्रेषण करना संभव है।

शिक्षा का संबंध उत्पादकता से स्थापित किया जाना चाहिए। छात्रों में राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहन दिया जाए। इसके लिए भाषा, साहित्य, दर्शन, धर्म तथा भारतीय इतिहास के सुनियोजित अध्यापन तथा भारतीय वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, नृत्य तथा नाट्य से परिचित कराया जाना चाहिए। गाँधी जी के अनुसार

– “भारत में शिक्षा के द्वारा लोकतांत्रिक चेतना, वैज्ञानिक खोज और दार्शनिक सहिष्णुता का निर्माण किया जाना चाहिए।”

शिक्षा जीवन भर चलती है और जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव डालती है। मनुष्य के व्यक्तित्व का 3/4 निर्माण जीवन के प्रथम पांच वर्षों में हो जाता है और हम जानते हैं कि पहले पाँच वर्षों में बालक केवल शिक्षा ही पाता है।

गाँधी जी का शैक्षिक चिन्तन शिक्षा जगत की विभिन्न प्रणालियों का मिश्रण है। यह शिक्षा के आदर्श एवं उद्देश्य की दृष्टि से आदर्शवादी आयोजन में प्रकृतिवादी प्रणाली में प्रयोजनवादी और प्रणाली की दृष्टि से प्रगतिवादी है। शिक्षक-छात्र संबंध व अनुशासन आदि शिक्षा के विभिन्न पक्षों के संबंध में व्यक्त किए गए गाँधी जी के विचार आदर्शवादी विचारधारा से ही प्रभावित हैं।

गाँधी जी के शिक्षा दर्शन में उनके शैक्षिक क्रियाकलापों एवं प्रयोगों का बड़ा महत्व है। शिक्षण विधि में गाँधी जी ने आचरण से शिक्षा देने पर बल दिया है। स्वयं सीखने के सिद्धांत को उन्होंने विशेष रूप से प्रतिपादित किया है। उन्होंने मौखिक शिक्षा पर जोर दिया।

गाँधी जी के अनुसार – शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य मानव को उत्तम मानव बनाना है। शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है जिससे बालक और व्यक्ति में नैसर्गिक रूप में सन्निहित तत्वों का सर्वश्रेष्ठ स्तर तक विकस होता है।

शारीरिक विकास, जीविकोपार्जन, पूर्णता शिक्षा का मूल उद्देश्य है।

निष्कर्ष :-

गाँधी जी एक आदर्शवादी व प्रयोजनवादी शिक्षा विचारक थे। वे आदर्श मानवीय मूल्यों और भावी स्वाधीन भारत के अनिवार्य सामाजिक मूल्यों और क्षमताओं को प्रदान करने वाली व्यवहारिक शिक्षा प्रदान करना चाहते थे। वे स्वावलम्बी, कर्मठ और समाजसेवी नागरिक बनाना चाहते थे। वे शिक्षा को व्यक्ति के संपूर्ण जीवन से जोड़कर देखते थे। व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ आत्मनिर्भर बनाना भी आवश्यक है। गाँधी जी की शिक्षा पद्धति में चरित्र निर्माण व व्यक्तित्व निर्माण दोनों का ही महत्वपूर्ण स्थान है। एक विद्यार्थी के लिए शिक्षक एक शब्दकोश की तरह होना चाहिए। जिसकी सहायता से वह अपनी समस्याओं का हल प्राप्त कर सके।

गाँधी जी के अनुसार – “शिक्षा से तात्पर्य बालक, मनुष्य के शरीर, मन और अंतरात्मा में पाए जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का विकास है।”

गाँधी जी उनका चिन्तन और कर्म केवल भारत के लिए ही नहीं अपितु समूची मानवता के लिए प्रकाश स्तंभ है, जिसकी किरणों और रोशनी की सहायता से हम अपने जीवन को शिक्षा दे सकते हैं।

नेल्सन मंडेला – “शिक्षा सबसे ताकतवर हथियार है, जिसका इस्तेमाल आप दुनिया बदलने के लिए कर सकते हैं।”

गाँधी जी – “शिक्षा उस सन्निहित पूर्णता का प्रकाश है, जो मनुष्य में पहले से ही विद्यमान है।” गाँधी जी – “समस्त अभ्यासों का अंतिम लक्ष्य मनुष्य का विकास करना है जिस अभ्यास के द्वारा मनुष्य की इच्छा शक्ति का प्रवाह संयमित होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम शिक्षा है।

संदर्भ :-

अंतसूची :-

1. पवन कुमार शर्मा – भारतीय शिक्षा – अतीत, वर्तमान और भविष्य, योजना, जनवरी 2016, पृ. क्र. 19
2. अभिनव श्रीवास्तव – शिक्षा में मातृभाषा की भूमिका और महत्व, योजना, जनवरी 2016, पृ. क्र. 69
3. पंकज चौबे – नवभारत और गाँधी के सपने, योजना, अक्टूबर 2017, पृ. क्र. 47

From Internet -

1. भारतीय शिक्षा दर्शन के प्रमुख तत्व – डॉ. चन्द्रावती जोशी ।
2. शिक्षा में मानवीय गुणों का विकास था गाँधी जी का शिक्षा दर्शन – रजत श्रीवास्तव ।
3. वर्तमान दौर में गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता – तनवीर जाफरी ।
4. शिक्षा दर्शन ।
5. गाँधी जी का जीवन दर्शन शिक्षा व्यवस्था का बनाए अभिन्न अंग ।
6. आज की शिक्षा प्रणाली और गाँधी के विचार ।
7. गाँधी दर्शन और शिक्षा – डॉ. राजानन्द ।
8. महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता, हिन्दस्वराज के संदर्भ में – डॉ. लक्ष्मण शिंदे
9. मानवीय मूल्यों की शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में महात्मा गांधी के शैक्षिक चिन्तन की उपादेयता – दिनेश कुमार सिंह ।
10. महात्मा गाँधी का शिक्षा दर्शन – बुनियादी शिक्षा प्रणाली ।
11. गाँधी और उनकी शिक्षा ।
12. महात्मा गाँधी का जीवन परिचय एवं शिक्षा दर्शन ।
13. गाँधी जी का शिक्षा दर्शन – नीलम दलाल, अजीत वुफमार ।
14. गाँधी जी का शिक्षा दर्शन – डॉ. श्रीभगवान सिंह ।
15. महात्मा गाँधी का शिक्षा दर्शन ।
16. महात्मा गांधी का भौक्षिक चिन्तन

पुस्तकें :-

1. गाँधी और शिक्षा – डॉ. एस.के. मिश्रा, डॉ. कमल दाधीच ।
2. महिला साक्षरता एवं सामाजिक परिवर्तन – उर्मिला बत्रा ।
3. गाँधी दर्शन के विविध आयाम – प्रो. बी. एम. शर्मा, डॉ. रामकृष्ण शर्मा, डॉ. सविता शर्मा ।
4. गाँधी चिन्तन के विभिन्न पक्ष – डॉ. धर्मवीर चंदेल ।
5. गाँधी दर्शन और शिक्षा – ई पुस्तकालय ।
6. महात्मा गाँधी का शिक्षा दर्शन – एम. त्रिपाठी ।
7. गाँधी दर्शन शिक्षा के विविध आयाम – विनीता चतुर्वेदी, अरुण कुमार चतुर्वेदी ।

मो. नं. 9584895167

Email :- kashyapmanju6@gmail.com



वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता

डॉ. परमानंद पाटीदार

सहायक प्राध्यापक (हिंदी), शासकीय महाविद्यालय, कन्नौद, जिला देवास (म.प्र.)

सारांश :-

संस्कृति का उद्गम संस्कार से है। मानवीय दोषों को दूर कर उसे निर्मल बनाने वाली प्रक्रियाओं का संग्रहित उपक्रम ही संस्कृति है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में यह देखना तथा समझना है कि भारतीय संस्कृति संसार भर के व्यक्तियों को कैसे प्रभावित करती है अथवा उनसे कैसे संबंधित होती है। विश्व व्यापी रूप से भारतीय संस्कृति किस प्रकार अन्य देशों को प्रभावित करती है।

वर्तमान समय में जब पूरा संसार वैश्वीकरण की ओर बढ़ रहा है और सारे विश्व को एक रीति-रिवाज तथा नीति के साथ जोड़ने का प्रयास हो रहा है। तब यह भी आवश्यक है कि हम अपनी हजारों साल पुरानी भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता को बनाए रखने के लिए विचार करें। वास्तव में भारत के संस्कृति अपनी प्राचीनता और कालजयता के कारण संपूर्ण विश्व में सुप्रसिद्ध है। भारत की संस्कृति "वसुधैव कुटुंबकम, सत्यम शिवम सुंदरम्" के आदर्शों के लिए जानी जाती है। भारतीय संस्कृति में एकता का भाव कूट-कूट कर भरा है। भारतीय संस्कृति में ग्रहण और त्याग का विशेष महत्व है, जो हमारी संस्कृति में चार चांद लगा देती है। हम सदैव से विराट के उपासक रहे हैं जिसके कारण हमें वैश्विक चेतना तथा विश्व दृष्टि से भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता को ओर आगे बढ़ाते हैं। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति कि जहां बात आती है वहां हिंदी साहित्य के समकालीन कवि और उनकी कविता में भी भारतीय संस्कृति कि झलक परिलक्षित होती है।

विभिन्न समकालीन कवियों ने विश्व व्यापी रूप से भारतीय संस्कृति के दर्शन को कविता में अभिव्यक्त किया है। भारतीय संस्कृति विश्व स्तर पर अपनी संस्कृति को बहुत ही आगे बढ़ाते हुए भारतीय संस्कृति को विश्व स्तर पर पहुंचाने का कार्य समकालीन कवियों द्वारा किया गया है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता बहुत है।

मुख्य बिंदु :- वैश्विक परिदृश्य, भारतीय संस्कृति, सांस्कृतिक मूल्य, सांस्कृतिक प्रासंगिकता।

प्रस्तावना :-

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान युग सांस्कृतिक विघटन का दौर है। सांस्कृतिक संदर्भ में दो पक्ष उभरकर सामने आते हैं, एक पक्ष प्राचीन सांस्कृतिक मर्यादाओं के प्रति श्रद्धा का विचार है जिसे छोड़ना इतना सरल नहीं है दूसरे पक्ष में नवीन आधुनिक जीवन मूल्य है जिसको मानने के लिए उसे परिस्थितियाँ मजबूर कर रही है। ऐसी स्थिति में समकालीन कवि नवीन मूल्यों से ज्यादा जुड़ा हुआ दिखाई देता है उसकी वैज्ञानिक चेतना बौद्धिकता

और समाज सापेक्ष मूल्यों का अभाव उसे इस दिशा की ओर ले जाता है। संस्कृति का साहित्य से विशिष्ट नाता है। सामाजिक विकास के साथ-साथ साहित्य की वृद्धि हो रही है। तथा साहित्य का विकास समाज तथा संस्कृति को तीव्रगति देती है तथा उसे संस्कारिक करता है। साहित्य समाज तथा संस्कृति की विवेचना केवल अभिव्यंजना पक्ष, शब्दार्थ के समभाव रसपक्ष को लेकर नहीं की जा सकती, उसकी सामाजिक प्रेरणा तथा सामाजिक उपयोगिता पर भी विचार करना अति आवश्यक हो जाता है। साहित्य समाज के व्यक्तियों का नैतिक तथा मानसिक विकास करके उसे संस्कारवान बनाता है। साहित्य में बहुत ही बड़ी शक्ति होती है, वह युग परिवर्तन की क्षमता रखता है। राष्ट्र पर विपत्ति आने पर साहित्य उसमें उत्साह भरता है। इस प्रकार समाज तथा संस्कृति के बदलाव में साहित्य की महती भूमिका रही है। हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक संदर्भ को अभिव्यक्त किया गया है। सांस्कृतिकता किसी समाज में सम्मिलित गुणों के सम्पूर्ण स्वरूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने के स्वरूप में सम्मिलित होता है।

सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की वह चेतना है जो कि सभ्यता के रूप में प्रकट होती है। वास्तव में सभ्यता यदि बाहरी शरीर है तो संस्कृति उसकी आत्मा है। संस्कृति मनुष्य जिंदगी के बाहरी-आंतरिक, बौद्धिक, नैतिक और धार्मिक जीवन को अभिव्यक्त करती है। आंतरिक तथा बाह्य जीवन तथा मन ही संस्कृति के आधार में स्थित है।

वास्तव में समानता के साथ देखा जाए तो भारतीय समाज सांस्कृतिक पक्ष में बहुत गिरा हुआ दिखाई देता है। परंपरागत भारतीय कुछ अच्छे तत्वों को छोड़कर भौतिकवादी बन गये हैं। वर्तमान का मनुष्य सभी समय भागता दिखाई देता है। उसको अपने-पराये की बिलकुल चिंता नहीं है। मनुष्य स्वार्थी बनता जा रहा है। अपने स्वार्थ के कारण व स्वार्थ की पूर्ति करने के लिए संस्कृति से हटकर कार्य करने को तत्पर है। ऐसी सोच व दृष्टिकोण का कवि ने परखा व अपनी कविताओं में प्रकट किया। इसी कारण समकालीन कवियों की कविताओं में तथा कवि अरुण कमल की कविताओं में सांस्कृतिक पतन, भौतिकवादी, कुंठा, दूषित वृत्तियों, साम्प्रदायिक शक्ति पर आदि कई विषयों को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

धार्मिकता एक सत्यता की भावना है, जो ईश्वर-विश्वास व श्रद्धा के माध्यम से मानव को सदाचारी तथा नैतिक मूल्यों से युक्त बनाती है। मनुष्य में क्षमा, दयालुता तथा वीरता के भाव उत्पन्न करता है, यह विवेक ज्ञान को उत्पन्न करता है। सभी मानव को एक ही ईश्वर का पुत्र बताकर, एक मानव के हृदय में दूसरे मानव के प्रति आस्था व विश्वास उत्पन्न करता है।

संस्कृति जटिल शब्द है। संस्कृति के स्वरूप को प्रकट करते हुए शंभूनाथ कहते हैं – “यह संस्कृति है जो मनुष्य को दूसरे प्राणियों से अलग करती है, दूसरी जातियों से अलग पहचान देती है और दुःसमय में आजादी की सच्ची प्रेरणा बनती है”।

संस्कृति और सभ्यता के अंतराल को रेखांकित करते हुए भगवतरावत कहते हैं –

“पिछड़े हुए लोग पुस्त-पुस्त
संस्कृति के वृक्षों की रखवाली करते हैं
सभ्य लोग संस्कृति के पक्के फल खते हैं”।

भारतीय संस्कृति की जान वैराग्य, त्याग, मोक्ष, ज्ञान, वसुधैव कुटुम्बकम् का विचार खत्म होता जा रहा

है। इन नैतिक मूल्यों में काफी गिरावट आई है। वर्तमान युग जो कि वैज्ञानिक दौड़ में पूर्व के सारे सांस्कृतिक प्रतिमान समकालीन कवियों को बहुत पुराने लगने लगे हैं और वह नये प्रतिमानों की तलाश में है। जीवन में कैसे सकारात्मक व गुणात्मक सुधार हो इसका पतन हो गया है।

सांस्कृतिक पतन प्रमुखतः सामाजिक चेतना से जुड़ा हुआ है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संस्कृति जिस प्रकार से ऊहापोह और आस्था तथा अनास्था का द्वन्द्व प्रारम्भ हुआ है, उसके दोनों पक्षों की अभिव्यक्ति समकालीन रचनाकारों ने की है। हिंदी के प्रमुख समकालीन कवियों ने तथा कवि अरुण कमल ने अपनी कविताओं के माध्यम से अपने सांस्कृतिक सरोकारों को भी हिंदी की समकालीन कविता में सम्मिलित किया है। वर्तमान युग के सांस्कृतिक मूल्य हास की स्थिति और नये मूल्यों की खोज पर उनकी कविताएँ तथा विचार अधिक केन्द्रित रही हैं। पुराने सांस्कृतिक नैतिक मूल्यों में वर्तमान की परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन की अपेक्षा सभी समकालीन कवियों ने की है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता को हिंदी साहित्य के विभिन्न समकालीन कवियों ने निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त की है –

कवि अरुण कमल ने सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति सकारात्मक रूप में करते दिखाई देते हैं। सांस्कृतिक मूल्य सदैव विजयी होते हैं। सूर्य-ग्रहण का होना भी हमारे मूल्यों तथा संस्कृति में सम्मिलित है तथा ग्रहण के सांस्कृतिक तौर पर कई नियम हैं। सांस्कृतिक मूल्य प्रत्येक युग में आवश्यक हैं तथा हमारे सम्पूर्ण वातावरण में उनकी आवश्यकता बनी रहती है क्योंकि –

“धीरे-धीरे हो गया सर्वग्रास
पर एक काला गोल पिण्ड
रहा दीप्त
विराजता पूरे आकाश में
ग्रहण के बावजूद सूर्य ही रहा सूर्य
ग्रहण के बावजूद सूर्य ही होता है सूर्य!”¹

सांस्कृतिक संदर्भ में हमारी उन्नति तभी संभव है जब हम सांस्कृतिक विरासत और नैतिक मूल्यों से जुड़े रहेंगे पुरानी मान्यताओं तथा संस्कृति से ही मार्ग मिलता है उसे भूलना, उसे तोड़ना और छोड़ना अरुण कमल की कविता स्वीकार नहीं करती है। सुबह ब्रह्म मुहूर्त में जागना हमारी सांस्कृतिक धरोहर का श्री गणेश है। जल्दी उठना संस्कृति का हिस्सा है। कवि ने ‘श्रद्धांजलि’ कविता में घड़ी के माध्यम से कवि ने सांस्कृतिक विरासत की महत्ता को व्यक्त किया है –

“जब मैं ब्रह्ममुहूर्त में उठता अलार्म की आवाज पर
और लालटेन चौकी पर जमा किताब खोलता
चारों तरफ अन्धकार और बीच में रोशनी की कील।”²

कवि अरुण कमल ने “प्रभु का घर” नामक कविता में सांस्कृतिक विचार व विरासत का परिचय कराया है। दान करने की प्रवृत्ति हमारी संस्कृति है। जहाँ वृद्धों के लिए रहने के लिए जगह ईश्वर के घर में ही मिल जाता है। कवि ने ऐसी ही सांस्कृतिक एकता को बनाये रखने के लिए तथा मानव की सेवा के लिए सदा ही तत्पर रहने के लिए आग्रह किया है –

“जो अब वृद्धों को दे दिया गया है
जो कल घर था ईश्वर का
वह आज आदम का घर है
प्रभु का उतारन मनुष्य का सिंगार
क्या ऐसा देवभूमि भारत में नहीं हो सकता ?
तुम्हारी जन्मभूमि प्रभु मेरा विश्राम ?”³

भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता है कि हम गंगा नदी के सांस्कृतिक महत्व के कारण गंगा नदी को “माँ” गंगा के नाम से भी पुकारते हैं। यही हमारी संस्कृति की पहचान है।

उत्तम संस्कृति हमारी धरोहर है। कवि भगवत रावत ने “कलियुग में जब” कविता में वर्तमान काल की संस्कृति व सभ्यता पर प्रश्न किया है कि वर्तमान में जब आपको तिलकधारी व धर्म की ध्वजाएँ ज्यादा दिखाई दे तो समझना चाहिए कि धर्म रसातल में जा रहा है। चेहरे पर हिंसक मुद्रा का भाव आए तो समझना हिटलर अभी मरा नहीं है। कवि कहते हैं कि केवल उपदेश देना ही नहीं चाहता वास्तविकता को प्रकट करता हूँ कि मैं ही नहीं सभी लोग गहरे संकट में हैं और वह समस्या गहराती जा रही है –

“ दोस्तों ! चेहरे पर मूँछे ही सब कुछ नहीं कहतीं
चेहरों पर पुती कुटिल शराफत
और हिंसक विनम्र मुद्रा से ही
पता लगा लेना चाहिए
कि हिटलर अभी मरा नहीं जिन्दा है
और बाकायदा वापस आ रहा है
उपदेश देना मेरा उद्देश्य नहीं
मैं तो अपने कुछ सच्चे धर्मप्राण मित्रों से करना चाहता हूँ
कि मैं ही नहीं आप भी गहरे संकट में हैं
और वह दिन-ब-दिन गहराता जा रहा है।”⁴

कवि भगवत रावत ने ‘सभ्यता और संस्कृति’ कविता के माध्यम से पिछड़े युग तथा कमजोर लोगों द्वारा ही सांस्कृतिक एकता को बनाने में अहम भूमिका निभाते हैं। वास्तव में सभ्यता को जीवित रखने में सभ्य लोगों का ही सहयोग होता है। निम्न व कमजोर वर्ग में सभ्यता व संस्कृति को बनाये रखने के लिए प्रयत्न किया जाता है। देश की उन्नति व एकता के लिए संस्कृति व सभ्यता का क्षरण रोकना आवश्यक है –

“पिछड़े हुए लोग पुशत-पुशत
संस्कृति के वृक्षों की रखवाली करते हैं
सभ्य लोग संस्कृति के पके हुए फल खाते हैं
सभी जानते हैं
सभ्यता सभ्य लोगों से जानी जाती है
और सभ्य लोग पिछड़े हुए लोगों से जाने जाते हैं

इस तरह सभ्यता और संस्कृति के हित में
दोनों को अलग-अलग बनाए रखना
देश की विवशता है।⁵

वर्तमान में भी संस्कृति का महत्व बढ़ा है। कई सभ्य लोग हैं जो संस्कृति व संस्कार को महत्वपूर्ण मानते हैं। कई जगहों पर बाढ़ के पानी की तरह संस्कृति दिखायी दे रही है –

“बाढ़ के पानी की तरह संस्कृति ही
संस्कृति दिखायी दे रही है।⁶”

सांस्कृतिक वैभव की नगरी काशी में परिवर्तन का स्वर सुनाई देता है। मकरंद का स्थान छलछंद ने ले लिया है। काशी की प्राचीन परम्पराओं का स्थान अब वीडियो गेम के अड्डों ने ले लिया है। कवि की सांस्कृतिक चेतना इस सत्य को भी व्यक्त करती है। काशी नगरी जो कि सांस्कृतिक धरोहर को लिए हुए तथा संस्कार व संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। काशी का गौरव व वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में वर्णन किया गया है –

“काशी – करवट के सामने काशी की नई करवट
कहना मुश्किल दोनों में कौन ज्यादा हिंसक ज्यादा भीषण
वृद्ध वधी, अतीत कि बाल-वधी वर्तमान।⁷”

कवि वीरेन डंगवाल ने सांस्कृतिक धरोहर को याद करते हुए “माँ की याद” कविता में माँ की महत्ता की ओर इशारा किया है। माँ का सम्मान व आदर करना हमारी सांस्कृतिक विशेषता है। माँ का स्थान संसार में सर्वोत्तम है, माँ की भावना के अनुसार व्यवहार हमारी सामाजिक – सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप है। कवि ने मनुष्य को मनुष्यता के गुणों को ग्रहण करते हुए परम्पराओं व संस्कृति को अपनाने पर जोर दिया है –

“हम मनुष्य हैं और एक
सामाजिक-सांस्कृतिक परम्परा है हमारी।⁸”

कवि नरेश सक्सेना ने “मिट्टी” कविता में सांस्कृतिक धरोहर को प्रेम से ही अग्रसर की जा सकती है। घृणा से घृणा ही पैदा होती है तथा प्रेम से प्रेम ही जन्म लेता है। संस्कृति व सभ्यता के कारण ही मनुष्य का महत्व बढ़ जाता है। मनुष्य के लिए ज्ञान आवश्यक है। सांस्कृतिक एकता के लिए धर्मग्रन्थों के सार व ज्ञान को आधार बनाकर ही संस्कृति को अपना सकते हैं। कवि के अनुसार –

“नफ़रत पैदा करती है नफ़रत
और प्रेम से जनमता है प्रेम
इंसान तो इंसान, धर्मग्रन्थों का यह ज्ञान
तो मिट्टी तक के सामने ठिठककर रह जाता है।⁹”

कवि ऋतुराज ने संस्कृति को अक्षुण्ण रखने के लिए सदा ही प्रयत्न करने व उन्नति करते रहने की ओर इशारा किया है। हमारी संस्कृति आदर्श संस्कृति है जिसके कई उदाहरण हैं जो ही अस्मिता के लिए महत्वपूर्ण हैं। सांस्कृतिक एकता को बनाये रखना व सदा ही आदर्श को अपनाना आवश्यक है –

“जिसे हम अपनी संस्कृति के भव्य सूनेपन की
सबसे जीवंत उपलब्धि का उदाहरण

बनाकर रखना चाहते थे।”¹⁰

कवि ऋतुराज के अनुसार संस्कृति से ही व्यक्ति की पहचान होती है तथा संस्कृति के बिना व्यक्ति का कोई महत्व नहीं होता है। सांस्कृतिकता से ही मनुष्य का विकास संभव है—

“आदमी व्यक्ति भी और समूची संस्कृति भी
दुःख के घटाटोप में से

रचता हुआ भाषा के मुक्तिदायी रहस्यों का प्रकाश।”¹¹

उपरोक्त सभी समकालीन कवियों ने वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता के उपर कविता की है।

निष्कर्ष :-

भारतीय संस्कृति स्थिर एवं अद्वितीय है, इसके संरक्षण की जिम्मेदारी वर्तमान पीढ़ी पर है। भारतवर्ष संस्कृति का समृद्ध तथा संपन्न भंडार है। जो यहां की कला, साहित्य कृतियों, प्रथाओं, परंपराओं, भाषाई अभिव्यक्तियों, कलाकृतियों, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक स्थलों तथा त्योहारों इत्यादि में यह दिखाई देता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में वर्णित है कि भारत की इस सांस्कृतिक संपदा का संरक्षण, संवर्धन तथा प्रसार देश की उच्चतम और सर्वोत्तम प्राथमिकता होनी चाहिए क्योंकि यह राष्ट्र की पहचान के साथ-साथ अर्थव्यवस्था के लिए भी महत्वपूर्ण है। अतः संपूर्ण मनुष्यों और भारत के लोगों का कर्तव्य है कि वह भारतीय संस्कृति को परिमार्जित करने का प्रयास करें तथा प्राचीन काल से चले आ रहे सांस्कृतिक मूल्यों को बनाए रखने में अपना योगदान दे। सर्वांगीणता, विशालता, उदारता और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य संस्कृति की अपेक्षा भारतीय संस्कृति अग्रणी है। समकालीन कवियों ने भी कविता के माध्यम से वैश्विक स्तर पर भारतीय संस्कृति को बढ़ाने के लिए विभिन्न संदर्भों के द्वारा व्यक्त किया है।

वास्तव में वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता बहुत ज्यादा बढ़ी है। विश्व में भारतीय संस्कृति कि चमक दिनों दिन बढ़ती ही जा रही है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति का मान दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा है।

संदर्भ सूची :-

1. अरुण कमल – अपनी केवल धार, सूर्य-ग्रहण : 2 पृष्ठ 23
2. अरुण कमल – नये इलाके में, श्रद्धांजली, पृष्ठ 82
3. अरुण कमल – पुतली में संसार, प्रभु का घर, पृष्ठ 80
4. भगवतरावत – प्रतिनिधि कविताएँ, कलियुग में जब, पृष्ठ 106
5. भगवतरावत – प्रतिनिधि कविताएँ, सभ्यता और संस्कृति, पृष्ठ 80
6. ज्ञानेन्द्रपति – संशयात्मा, उनये है सांस्कृतिक मेघ विद्युत्गर्भ, पृष्ठ 260
7. ज्ञानेन्द्रपति – गंगा तट, एक और गंध मादक, पृष्ठ 132
8. वीरेन डंगवाल – दुश्चक्र में सृष्टा, माँ की याद, पृष्ठ 51
9. वीरेन डंगवाल – दुश्चक्र में सृष्टा, नयी संस्कृति, पृष्ठ 95
10. ऋतुराज – चुनी हुई कविताएँ, मुक्तिबोध, पृष्ठ 37
11. ऋतुराज – चुनी हुई कविताएँ, मुक्तिबोध, पृष्ठ 38



आचार्य शंकरदेव (एक शरण) की भक्ति-भावना का स्वरूप

पिंकी देवी

शोधार्थी, हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

समाज में जब-जब प्रतिगामी शक्तियाँ पैदा होती हैं तो उस समय समाज में स्वच्छ भावना का संचार करने के लिए कुछ विशिष्ट प्रतिभाएं जन्म लेती हैं। ये प्रतिभाएँ समाज की दशा व दिशा बदलने के लिए लोकमंगलकारी कार्य करती हैं। ऐसी प्रतिभाओं में असम के आचार्य शंकरदेव का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है। “उनका समय सन् 1449 से 1568 ई. माना जाता है। उनका जन्म मध्य असम के नगाँव जिले के आलिपुखुरी (बरदोआ) नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता कुसुमवर भुइयों शिरोमाणि भुइयों और माता सत्यसंध्या थी। बाल्यावस्था में ही उनके सिर से माता-पिता की छाया उठ गई अतः दादी खेरसुती ने उनका पालन-पोषण किया।”¹

बाल्यावस्था में शंकरदेव जी स्वभाव से चंचल और स्वच्छंद थे। बारह वर्ष की आयु में उन्होंने महेन्द्र कंदली की पाठशाला में अध्ययन आरंभ किया और केवल आठ वर्ष में ही सभी प्रकार के शास्त्रों का अध्ययन पूर्ण कर लिया। अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद उनका विवाह सूर्यवती नामक युवती से हुआ। जिससे उनको एक पुत्री (मनु) पैदा हुई। कुछ ही दिनों बाद उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। इससे उनके मन को बड़ा धक्का लगा तथा वे संसार की निःसारता व क्षणभंगुरता तीव्र अनुभूति करने लगे। लेकिन उन्होंने अपनी पुत्री मनु के लिए अपनी वैराग्य-भावना पर नियंत्रण रखा तथा अपनी नवजात शिशु बालिका का लालन-पालन किया। अन्ततः मनु के विवाहोपरांत वे संन्यासी बनकर निकल गए और बारह वर्षों तक सम्पूर्ण भारत के विभिन्न तीर्थों का भ्रमण करते रहे। इस तीर्थ यात्रा के दौरान उनका अनेक संतों, विद्वानों और महापुरुषों से मिलन हुआ, जिनके सानिध्य से उनके ज्ञान और अनुभव को बढ़ावा मिला। इसकी पुष्टि स्वयं शंकरदेव ने निम्न पंक्तियों के माध्यम से की है—

“उरेषा वाराणसी ठावे ठावे।

कबीर गीत शिष्ट सब गावे।।”²

उस यात्रा के दौरान शंकरदेव जी ने अनेक गीतों की भी रचना की थी। सूर्यकांत त्रिपाठी के अनुसार—“तत्त्व चिंतन का अवसर सम्भवतः उन्हें पुरी में प्राप्त हुआ। तरह-तरह के भक्ति सम्प्रदायों से मेलजोल, लगातार तत्त्व चिंतन भगवत कथा के श्रवण-कीर्तन-स्मरण, भारत की विशालता और उसकी अनेकता में एकता के दर्शन, अनुभव-विस्तार प्रभृति कारणों से शंकरदेव क्रमशः ज्ञानमिश्रा भक्ति की ओर अग्रसर हुए। जिनका परिणाम उनकी एकशरण्या भक्ति है।”³ शंकरदेव ने तीर्थयात्रा के दौरान भारत की अनेकता में एकता के दर्शन कर लिए थे। तीर्थ यात्रा के दौरान अपने तत्त्व चिंतन के दौरान अनेक बातों को वे अपने अंदर आत्मसात करते गए तथा अपने निवास स्थान कामरूप (बरदोवा) आकर अपना मत स्थापित किया। अपनी यात्रा के दौरान मिले

अनुभवों से तथा विचार-विमर्श से शंकरदेव जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि श्रीमद्भागवत का संदेश ही सर्वोच्च एवं कल्याणकारी है। इसका कारण कदाचित्त यह भी हो सकता है कि भागवत की कथाएँ समाज की मानसिक तुष्टि के अनुकूल हैं जिससे लोगों को अपने मत के दार्शनिक विचारों को भी अच्छी तरह से समझाया जा सकता है। इसी श्रीमद्भागवत के संदेश के आधार पर ही शंकरदेव जी ने 'नव्य वैष्णव मत एकशरण' का सिद्धांत नियत कर धर्म प्रचार की शुरुआत की। यथा –

“विचार करिया पाछे भागवत ग्रंथ।

करिलंत शंकरे प्रकाश भक्ति-पंथ।”⁴

इस प्रकार शंकरदेव जी ने अपनी लोकभाषा में भागवत की कथाओं का लेखन अपने भक्ति-पंथ के अनुरूप किया तथा इसके साथ लोकभाषा में उपदेश, प्रवचन तथा अभिनय प्रदर्शन द्वारा भी अपने पंथ का प्रचार-प्रसार किया। जिससे लोग तेजी से उनकी तरफ आकर्षित होने लगे। भक्ति संबंधी अनेक ग्रंथों की रचना शंकरदेव जी ने की। जैसे भक्ति-प्रदीप, गुणमाला, कीर्तन-घोषा, रुक्मिणी हरण, बरगीत, पत्नी प्रसाद, केलि गोपाल, पारिजात हरण, राम विजय और कालिय दमन इत्यादि। इसके साथ-साथ शंकरदेव जी की भक्ति के स्वरूप जानना भी आवश्यक है।

आचार्य शंकरदेव जी की भक्ति के स्वरूप को जानने से पहले 'भक्ति' का अर्थ व इसकी परिभाषा जानना जरूरी हो जाता है।

'भक्ति' शब्द 'भज्' धातु में 'क्ति' प्रत्यय से बना है जिसका अर्थ है—“अनुराग, श्रद्धा, सम्मान, सेवा, पूजन आदि।”⁵

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—“भक्ति की निष्पत्ति श्रद्धा और प्रेम के योग से होती है।”⁶

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार—“भक्ति भगवद् विषयक प्रेम को ही कहते हैं एवं अनुकूल भाव से भगवान के विषय का अनुशीलन करना ही भक्ति है।”⁷

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम, श्रद्धा ही भक्ति है। इससे मानव अपने स्वार्थ बंधनों के संकुचित घेरे से बाहर निकल 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की व्यापक दृष्टि वाला बन जाता है।

मध्यकाल का भक्ति आन्दोलन, धर्म-अध्यात्म की नई व्याख्या और सामाजिक समरसता का वैचारिक विन्यास प्रस्तुत करता है। इस आन्दोलन की मुख्य चिन्ता युगीन सामाजिक व्यवस्था, आचार-संयोजन, संरक्षण और भावात्मक ऐक्य का प्रचार-प्रसार है। इसे लक्ष्य तक ले जाने के लिए शंकराचार्य, निंबार्काचार्य शंकरदेव, बल्लभ, चौतन्य, हरिदास, कबीर जायसी, तुलसीदास इत्यादि प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों ने प्रयास किया। संत कबीर (1398) ने संत-मत के विचारों का प्रचार-प्रसार किया। सुफी मत का प्रचार-प्रसार जायसी (1492) नामक सूफी कवि ने मुख्यतः किया। रामकाव्यधारा को स्थापित करने का कार्य भक्त कवि तुलसीदास (1532) ने किया। कृष्ण काव्यधारा या कृष्ण भक्ति को स्थापित व प्रचारित करने वाले अनेक विद्वान हैं जिनमें चौतन्य महाप्रभु, निंबार्काचार्य, वल्लभाचार्य, सूरदास, हरिदास, हितहरिवंश इत्यादि हैं। “राधा-कृष्ण अथवा केवल कृष्ण को अपनाकर प्रारम्भ होने वाली भक्ति का केन्द्र 'ब्रज प्रदेश' ही बना। लेकिन शंकरदेव द्वारा प्रचारित भक्ति 'एक शरण' इसका अपवाद है और इसका केन्द्र ब्रज न होकर कामरूप हुआ।”⁸

आचार्य शंकरदेव ने भक्ति की परिभाषा न देकर इसके महत्त्व का प्रतिपादन किया है। इसलिए उनकी

रचनाओं में भक्ति के महत्त्व को दर्शाने वाले अनेक कथन प्राप्त होते हैं। यथा—

“सामर्थ भक्ति आति एकोवे नचावे ।
भक्तक पालय पुत्रक येन भावे ।।”⁹

अर्थात् भक्ति की महिमा अनन्त है। यह भक्तों का माता की तरह पालन करती है।

शंकरदेव ने अपने इष्ट श्रीकृष्ण को ब्रह्म स्वीकार किया है। उनके ब्रह्म नारायण और निरंजन भी हैं। वे सनातन और सर्वावतार का कारण हैं। शंकरदेव सिद्धांततः निर्गुणोपासक हैं, किंतु आराध्यदेव कृष्ण की लीलाओं का गायन करते समय वे सगुणोपासक से प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार ‘एक देउ, एक सेउ, एके बिना नाहि केउ ।’¹⁰ से वे निर्गुणवादी प्रतीत होते हैं।

यहाँ देव से अर्थ मात्र श्रीकृष्ण से है। श्रीकृष्ण की सेवा ही देव सेवा है। अतः शंकरदेव जी ने श्रीकृष्ण को ही ब्रह्म का स्वरूप मानकर उनकी भक्ति की है।

“नित्य निरंजन शुद्ध आनंद स्वरूप
भक्ततर जेन इच्छा तेने धरा रूप ।

जाहेरी चरण सुरासुर सेवत, सो हरि गोपिक पिउ ।।”¹¹

इसके लिए उन्होंने नाम—जप को अधिक महत्त्व दिया है। नाम—जप साधना भगवद्विषयक भक्ति का प्रधान अंग है चाहे इसमें सगुणवादी भक्ति हो या निर्गुणवादी। सभी में नाम—जप साधना का विधान अवश्य पाया जाता है। इस प्रकार नाम जप एक साधन के रूप में लिया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप—

“नामे तप जप यज्ञ नामे योग ध्यान ।
नामे दान पुण्य नामे कोटि तीर्थ—स्नान ।
नामे धन—जन बन्धु नामे पिता—माता ।
नामे निज सुहृदय नामेसे गीत दाता ।।”¹²

भक्ति संबंधी चाहे कोई भी धारा हो सभी में ‘गुरु’ के महत्त्व को विशेष तौर पर स्वीकार किया है। कबीर ने तो कहा भी है—

“गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागौ पाये ।
बलिहारी गुरु आपुनौ, जिन्ह गोविन्द दियौ मिलाय ।।”¹³

आचार्य शंकरदेव के भी गुरु संबंधी कुछ ऐसे ही विचार हैं। उनका मानना है कि कल्याण—पथ के पथिक को गुरु और ब्रह्म को एक समझकर गुरु से उपदेश ग्रहण करना चाहिए। यथा —

“उपदेश दाता यिटो आछे । यात बुद्धि आछे एकोवे न बांछे
ताके हरिबुलि माने ।। एक कृष्ण मात्र जाने ।।”¹⁴

एकशरण पंथ में गुरु को इस संसार सागर को पार करवाने वाला खेवइया, कर्णधार इत्यादि रूपों में स्वीकार किया गया है।

अपने भक्ति उपदेशों में आचार्य शंकरदेव ने माया के स्वरूप का भी जिक्र किया है। माया ब्रह्म की दासी है। शंकरदेव जी को माया के विद्या तथा अविद्या दोनों रूप मान्य हैं। विद्या—माया संसार या जगत् का सृजन करती है तथा यह भक्तों की भी सहायता करती है। अर्थात् विद्या माया मनुष्य को इश्वरोन्मुखी कर देती है। इसके

विपरीत अविद्या माया मनुष्य को ईश्वर से विमुख कर देती है। छल, कपट, मोह इत्यादि इसी माया के अनेक रूप हैं। यह माया महामुनियों को भी अपने वश में कर लेती है। यथा—

“महा सिद्ध मुनिरो कटाक्षे मोहे चित।”¹⁵

अविद्या माया का विस्तृत स्वरूप को निरूपित करते हुए आचार्य शंकरदेव ने निष्काम भाव की भक्ति को अधिक महत्त्व दिया है “उन्होंने ‘भक्ति रत्नाकर’ के ‘भक्ति—योग’ नामक दशम माहात्म्य में लिखा है—“अमलया अव्याभिचारिण्या भक्तया एव हरि प्रीयते।।”¹⁶

इसी प्रकार भक्ति की सहजता का प्रतिपादन करते हुए आचार्य शंकरदेव ने कहा है—

“हरिनर सेवात किछु नाहिकै प्रयास
आपुनि लैवन्त हरि हृदयत बास।।”¹⁷

भक्ति पथ पर प्रत्येक व्यक्ति सहज—सरल रूप से चल सकता है। वर्ण, जाति रूप—रंग आदि इसमें कुछ भी बाधा उपस्थित नहीं कर सकते।

आचार्य शंकरदेव के अनुसार भागवद् कथा का श्रवण कीर्तन, संतों की सत्संगति, समस्त प्राणियों के प्रति प्रेम दृष्टि सभी कर्मों को भगवान को अर्पित करना ही भक्ति के साधन है। भक्ति के लिए दुर्जनों की संगति से दूर रहना श्रेयस्कर है। नवधा भक्ति क्रम में आचार्य शंकरदेव ने श्रवण और कीर्तन को मुख्यतः स्वीकार किया है। आचार्य शंकरदेव ने मुख्यतः दास्य भाव की भक्ति को प्रमुखता दी है। यथा :—

1. “तोमार अकाम भृत्य आमि।
तुमियो निष्काम मोर स्वामि
2. कृष्ण किंकर शंकर भाण
राम बिने नाहि गति आन।”¹⁸

इस प्रकार ऊपर्युक्त उदाहरणों से यह कहा जा सकता है कि शंकरदेव ने शरणागति पर अधिक महत्त्व दिया है। इसके साथ—साथ आचार्य शंकरदेव मनुष्य को प्रतिकूल का त्याग तथा अनुकूल का सेवन करने पर भी बल देते हैं। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आचार्य शंकरदेव ने चाहे श्रीकृष्ण की भक्ति की है। लेकिन उनकी भक्ति का स्वरूप संत कवियों से तात्त्विक रूप से मिलता—जुलता है। संत कवियों की तरह उन्होंने नाम—जप को भक्ति में मुख्य स्थान दिया। इसके साथ—साथ गुरु के महत्त्व का भी प्रतिपादन किया। सूर्यकांत त्रिपाठी के अनुसार—“शंकरदेव के आराध्य हैं श्रीकृष्ण। लेकिन रसिक बिहारी कृष्ण से उन्हें परहेज है। वे देवकीनंदन होकर भी द्वैत, निर्गुण हैं, अमूर्त हैं।”¹⁹

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जिस भक्ति आन्दोलन की गूँज संपूर्ण भारत में उठी थी। उस आन्दोलन में अनेक महान विभूतियों ने अपना अपूर्व योगदान दिया और प्रान्तीय भाषाओं में सांस्कृतिक उपजीव्य स्रोतों से प्रेरणा ग्रहण कर अपने उपदेश जनता को दिए। उन्हीं महान विभूतियों में आचार्य शंकरदेव के ‘एक शरण’ पथ का नाम भी हमेशा लिया जाता रहेगा। जिन्होंने असम के राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व सामाजिक स्तर पर जनता के मानस को आन्दोलित किया और एक नई दिशा की ओर समाज को अग्रसर किया।

संदर्भ :-

1. त्रिपाठी, सूर्यकांत, भारतीय भक्ति आन्दोलन और श्रीमंत शंकरदेव, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज—211001,

प्रथम संस्करण : 2021, पृष्ठ संख्या 32

2. वही, पृष्ठ संख्या-40
3. वही
4. वही, पृष्ठ संख्या-41
5. शर्मा, द्वारका प्रसाद, संस्कृत शब्दार्थ-कौस्तुभ, पृष्ठ संख्या-816
6. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण : 2016, पृष्ठ संख्या-71
7. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, कबीर, पृष्ठ संख्या 143
8. त्रिपाठी, सूर्यकान्त, भारतीय भक्ति आन्दोलन और श्रीमंत शंकरदेव, पृष्ठ संख्या-51
9. वही, पृष्ठ संख्या-53
10. वही, पृष्ठ संख्या-56
11. वही, पृष्ठ संख्या-41
12. राय चौधरी, डॉ. भूपेन्द्र, शंकरदेव और तुलसीदास की वैचारिक भावभूमि, भारतीय संस्कृति परिषद, गुवाहाटी (असम), प्रथम संस्करण : 1997, पृष्ठ संख्या 72
13. वही, पृष्ठ संख्या 74
14. त्रिपाठी, सूर्यकांत, भारतीय भक्ति आंदोलन और श्रीमंत शंकरदेव, पृष्ठ संख्या 57
15. राय चौधरी, डॉ. भूपेन्द्र, शंकरदेव और तुलसीदास की वैचारिक भावभूमि, पृष्ठ संख्या-51
16. वही, पृष्ठ संख्या-61
17. वही, पृष्ठ संख्या-65
18. वही पृष्ठ संख्या -75
19. त्रिपाठी, सूर्यकांत, भारतीय भक्ति आन्दोलन और श्रीमंत शंकरदेव, पृष्ठ संख्या-58

पिंकी देवी, शोधार्थी

मकान नम्बर 815/30, गली न. 31, आजाद नगर

कुरुक्षेत्र -136118 (हरियाणा)

मोबाइल नं. 6239495562

E-mail : pinkysharmakoutsh@gmail.com



लोक कला

डॉ पूजा चौहान

प्रवक्ता – श्री साई बाबा इंटर कॉलेज अमरोहा।

लोक चित्रकला उद्भव और विकास :-

कला अनुभूति और अभिव्यक्ति का क्रमशः किया हुआ सृजन है। अनुभूति मानव मन की सहज प्रवृत्ति तथा अनुभव मानव जीवन की सूक्ष्म इकाई है। अनुभूति मनुष्य का स्वभाव है और अभिव्यक्ति उसकी रचना और इस रचना का सुन्दर रूप है 'कला'।

अभिव्यक्ति के लिये सबसे बड़ी आवश्यकता संचार माध्यम की है। आदि काल में मानव के समक्ष सबसे बड़ी समस्या संचार माध्यम की थी। उसके लिये जीवन का हर क्षण हर घटना नवीन थी। प्रकृति का प्रत्येक अवयव और क्रियाकलाप उसके लिये आश्चर्य का विषय थे। भाषा ज्ञान के अभाव में उसने चित्रांकन को संचार का माध्यम बनाया और अपने दैनिक अनुभवों को रेखांकित किया। अतः चित्रकला संचार का प्रथम माध्यम प्रतीत होती है।

चित्रकला का यह आरम्भिक स्वरूप आज भी लोक चित्रकला के रूप में अनेक क्षेत्रों में देखने को मिलता है। प्रागैतिहासिक चित्रों की खोज से जो आकृतियाँ सामने आयी हैं उसी प्रकार की आकृतियों का चित्रण आज भी लोक चित्रकला में प्रचलित है।

'सटीबेंस का कथन लोक कला के सम्बन्ध में बड़ा ही स्पष्ट है इनके विचार में आदि युग के मानव के साथ लोक कला का गहरा संबंध है। आदि युग का सीधा सादा मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अपनी सामाजिक धार्मिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति अपने ही हाथों करता था, और उससे कला का जो रूप मिलता था उसकी विकसित श्रृंखला के रूप में हमारी वर्तमान लोकला है' प्रकृति के क्रियाकलापों की रहस्यमयता और उसके प्रति जागने वाली उत्सुकता ने प्रागैतिहासिक कालीन मानव को जादू-टोने व अन्य धार्मिक कृत्वों के लिये प्रेरित किया होगा। वह प्राकृतिक शक्तियों जो मनुष्य पर हावी रहीं उनसे बचने हेतु उसने संभवतः उनकी प्रतीकात्मक आकृतियों की कल्पना करके, चित्रित करके आराधना की होगी जिसके फलस्वरूप ये प्रतीकात्मक आकृतियों आज भी लोक चित्रकला में प्रचलित हैं।

'भारत में अनेक क्षेत्रों में शैलाश्रय प्राप्त हुये हैं इनसे यहाँ निवास करने वाले लोगों की जीवन चर्या तथा रुचि का पता चलता है। मुख्यतः इनमें जो चित्र मिलते हैं वे हैं— विविध आयुधों से पशुपक्षियों का शिकार, जानवरों की लड़ाई, मानवों में पारस्परिक युद्ध, पशुओं की सवारी, गीत नृत्य मधु संचय, घरेलू जीवन संबंधी अनेक दृश्य'।

सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ-साथ मानव जीवन में गुण तथा अशुभ की मान्यता बढ़ी। कुछ

प्रतीकात्मक क्रियायें शुभ व आवश्यक मानी जाने लगी। इन प्रतीकात्मक क्रियाओं में चित्रण भी एक अंग रहा तथा लोक चित्रकला का प्रमुख आधार भी जैसाकि पहले विवेचित किया है कि आरम्भ में चित्रकला अभिव्यक्ति एवं संचार का माध्यम थी। परंतु कालान्तर में ईश्वर और धार्मिक क्रिया कलाओं के प्रतीकात्मक अंकन में चित्रकला का उपयोग लोक समाज प्रचलित हुआ और लोक चित्रकला का उद्भव और विकास हुआ।

भाषा के प्रादुर्भाव के बाद चित्रण कार्य को उपयोगिता के स्थान पर मनोविनोद एवं संस्कृति का एक अंग माना गया भाषा के सम्मुख चित्रकला की अभिव्यक्ति क्षमता कमजोर पड़ गई परन्तु उसके सौन्दर्य और लालित्य के कारण उसकी उपेक्षा न की जा सकी।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ चित्रकला में परिपक्वता आती गई या कह सकते हैं कि अभ्यास से कुशलता बढ़ी, माध्यमों में वृद्धि हुई तथा अभिव्यक्ति में अधिक सहजता आई। चित्रकला के निजिकरण एवं व्यवसायिक होने के पश्चात उसके दो स्वरूप या कहें दो धारायें दिखाई देने लगी— चित्रकला एवं लोक चित्रकला। यद्यपि देखा जाये तो आधारभूत भिन्नता है ही नहीं। चित्रकला का विकसित नवीन रूप परिष्कृत एवं शास्त्रीय चित्रकला के रूप में मान्य हुआ। वही लोक चित्रकला अपने पारम्परिक एवं प्राचीन स्वरूप के साथ ही समाज में स्थापित रही।

वर्तमान में लोक चित्रकला को प्रायः ग्रामीण संस्कृति से संबंधित मान लिया जाता है।

‘लोक कला जन समुदाय के सामाजिक जीवन में व्यवहृत सहकारी कला है इसकी जड़े धरती में काफी गहराई तक गई है यह लोक में प्रचलित रीति-रिवाजों और विश्वासों से सम्बन्धित है।

लोक चित्रकला को ग्रामीण समझने का मुख्य कारण यह है कि लोक चित्रकला का स्वरूप आदि चित्रकला का है और इसका संरक्षण ग्रामीण क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक है पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि लोक चित्रकला मात्र ग्रामीण क्षेत्रों की कला है। आदि काल से चली आ रही कला-धारा में समाज और संस्कृति के आधार पर विकसित नहीं स्वरूपों को सम्मिलित करते हुये लोक चित्रण की परम्परा बनी।

लोक कला को आदिम अविकसित समझना ठीक नहीं यद्यपि वह आदिम के समीप और आधुनिक से यत्किंचित दूर हो सकती है। नृ-विज्ञान की मान्यता है कि हमारे व्यक्तित्व का ऊपरी धरातल ही आधुनिक है, किन्तु इसका भतरी गर्भाश आदिम है। आज भी जिस कारण आदिम के प्रति हमारा आकर्षण अक्षुब्ध बना हुआ है। हम अपने ही एक अंश को अस्वीकार भी तो नहीं कर सकते। लोक कला समग्र हमारे इसी गर्भाश को छूती और सहलाती है और इसी सीमा तक वह आदिम के समीप होती है और आदमी के समीप भी।

मनुष्य का जीवन क्रियाशील जीवन है। मनुष्य की अनुभूति, रुचियाँ उसके बनाये हुये संस्कार उसे जीवन का सौन्दर्यात्मक ढंग से जीने के लिये प्रेरित करते हैं और यही प्रेरणा उसके कार्यों को कलात्मक बनाती है। यही कलात्मक कार्य जिन्हें मनुष्य अपने समुदाय के साथ मिलकर करता है लोक कला के अन्तर्गत आते हैं। सामुदायिक होने के कारण ही लोक कला प्रायः अपरिवर्तनीय होती है। परम्परागत रूप से चली आती हुई एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है।

आदि कालीन चित्रकला का स्वरूप हम आज भी लोक चित्रकला में देख सकते हैं। विभिन्न कालों में सभ्यता के विकास कार्यों से प्रभावित यह कला शैली एवं तकनीकी रूप से तो पारम्परिक है। परन्तु इससे सम्बन्धित मान्यते, विषय एवं संयोजन समयानुसार एवं उपयोगितानुसार संशोधित होते रहे हैं। निष्कर्षतः कह

सकते हैं कि शैलीगत व चित्रण विधि एवं कलातत्त्वों की दृष्टि से प्राचनीता से जुड़ी हुई लोकचित्रकला भावात्मक रूप से विभिन्न कालों के अनुसार परिवर्तनीय रही है।

लोक कला दर्शन - एक विवेचना :-

अतीत के छोर को छूती हुई जितनी दूर तक हमारी दृष्टि जाती है, युग-2 की सांस्कृतिक परम्परा हमें भारतीय कला के साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। अति प्राचीन भारत में मानव ने अपनी भावनाओं को मूर्त बनाने से पहले तथा साकार रूप देने से पहले भी प्रकृति की शाश्वत क्रीड़ा में अपना भरपूर योगदान दिया था। हजारों-2 वर्षों तक वह अपने तरह-तरह के उदवेगों और अन्तर अनुभूतियों को प्रकृति के महा महोत्सव में सम्मिलित करता रहा है।

किसी भी देश की कला जन सामान्य की हृदय तंत्री को झंकृत किये बगैर नहीं रह सकती। जहाँ एक ओर बौद्धिक कला बन कला की जटिल और सर्वसाधारण की समझ के दायरे से दूर की चीज बनाने में लोग लगे रहते हैं, वहीं दूसरी ओर कलाकारों ने लोक-परम्परा का रचनात्मक पक्ष व सरतलम अभिव्यक्ति का खोज निकाला है। यह अभिव्यक्ति जीवन-विस्मृति अथवा आत्मिक सुख के लिए होती है। कला की उच्च असामान्य परम्पराओं से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। हर्ष और उल्लास ने रंग भरकर जन-जीवन में ऐसी अनेक चित्र कथाएं अंकित की हैं, जो उनके भीतर लोक विश्वासों और सुनने तथा होने वाली घटनाओं का क्रमानुसार इतिहास समेटे हैं। लोक कला अकृत्रिम होती है, इसीलिए उसका रूप इतना सरल और हृदय में समाने वाला है कि भले ही जीवन की गूढतम विश्लेषण को वह व्यंजित न कर सके पर निष्ठा की अतल गहराई अव्यवस्थित रेखाओं में भी सजीव चित्र उपस्थित कर देती है। इसके सौन्दर्य के झांकने के लिए तर्क-वितर्क नहीं, हृदय की संवेदनशीलता चाहिए। कितने ही उत्सव पर्व दीपावली, होली, दशहरा, श्रावणी, नाग पंचमी, शीतला अष्टमी, अहोई अष्टमी, करवाचौथ, गणेशोत्सव, गोर्वधन-पूजन, जन्माष्टमी का त्यौहार और शादी-ब्याह, पुत्र जन्म, उपनयन संस्कार, पवित्र व्रत उपवासों पर पौराणिक कथाओं की किंवदन्तियों, आख्यानों, वार्ताओं, नीति कथाओं, जातकों से सम्बन्धित चमत्कार पूर्ण नाटकीय दृश्यों की भावपूर्ण सार्थक चित्रों के रूप में दीवारों पर बनाने की प्रथा है। पृथ्वी और पट्टों पर घर के आंगन और द्वार के इर्द-गिर्द मंगलमय चित्र, फूल पत्तियों और रंग-बिरंगी आकृतियों चित्रित की जाती है। प्रायः गृहणियाँ गेरू और खड़िया से ही काम चला लेती हैं। हरे-पीले, लाल, सफेद, रंगों के योग से चौक पूरे जाते हैं, किनारे-2 बेल-बूटों या संस्कार सूचक चित्रों का प्रदर्शन होता है। इन चित्रों में जीवन की स्वामित्व प्रणाली और आत्मिक चेतनता सजग रूप में होती है। मानव हृदय में कला का जो स्वाभाविक स्वरूप बसा हुआ है। उसी को वह कला में प्रतिबिम्बित कर देता है। अपने सहज कला के ज्ञान के द्वारा वह छोटी से छोटी वस्तुओं में भी सौन्दर्य की कल्पना करता है।

लोक कला युग-युग का इतिहास संजोए मानव के साथ चल रही है। परम्परागत ज्ञान और अनुभव, अगणित मानवीय कल्पनाओं और स्मृतियों के ताने-बाने से उसकी सृष्टि हुई है। प्रतिदिन और प्रतिपल के भीतरी और बाहरी संघर्षों ने इतने तथ्य, बदलती दुनिया के सामान्य तत्व, मानव-मानव का भेद तथा उससे उत्पन्न घृणा, द्वेष, हर्ष-विषाद, प्रेम-विरक्ति, हिंसा प्रतिहिंसा उत्पन्न करने वाली घटनाओं और कारणों को एकतिन किया है कि जीवन के मूल सत्य भी उसमें गुथ गये हैं। कथाओं और उपकथाओं, आख्यानों-उपाख्यानों, लोक-कथाओं, दन्त-कथाओं के आधार पर ऐसे कल्पित चित्र बनाये हैं जो बिना किसी ऐतिहासिक तथ्य के

जनता की श्रद्धा और विश्वास से प्रेरित हुए, पर समय-2 पर उनमें अनेक ऐतिहासिक तथ्य भी जुड़ते गये।

लोक कला में मनुष्य की प्रतिमा, कला-भावना कल्पना, सर्जक दृष्टि और रंगों की खुलकर आतमाभिव्यक्ति व्यक्त करने का मौका मिला है। उसके उत्थान-पतन, जीवन-मरण, सफलता-असफलता, जय-पराजय और प्रेम-विरह की अनेक स्मृतियों उसमें सिमटी पड़ी है। यही कारण है कि है कि लोक कथा लोक चित्रों की व्याख्या के कितने ही काल्पनिक आख्यान गढ़ गये है। आनुष्ठानिक कला के साथ-2 अजीब-2 किंवदन्तिया, लोक वार्ताएं प्रचलित हो गयी है, जो धार्मिक महत्ता और जनभावना का प्रतिनिधित्व करने वाली है। अन्य देश की भाँति यहाँ की लोक कथा का प्रादुर्भाव धर्म से हुआ है और क्रमश भारतीय जीवन के हर पहलू में वह समा गयी है। अपने भीतर विभिन्न युगों की महान अर्थपूर्ण प्रवृत्तियों को आत्मसात कर वह अपने महान भूतकाल, वर्तमान और भविष्य की अपरिहार्य अंग बन गयी है। वह सामाजिक जीवन-दर्शन की सन्धि स्थल है जहाँ वह केवल बाह्य आचारों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि समस्त जीवन को नापती हुई प्राचीनता और आधुनिकता के बीच की महान सृजन शील कड़ी के रूप में विद्यमान है।

लोक कलाकार अधिकांश वस्तुएं उपयोग के आधार पर बनाता है। इसीलिये इस कला के उदाहरण प्रायः लोक कला का अध्ययन गत शताब्दी से प्रारम्भ हुआ है। इससे पूर्व इस कला की ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया था। जब से इसका अध्ययन आरम्भ हुआ इसकी सीमाओं और परिभाषा के सम्बन्ध में विद्वानों में आपस में बहुत मतभेद रहे है। लेकिन फिरभी इतना तो स्पष्ट है कि लोक-कला मानव-सभ्यता के विकास के इतिहास में एक और आदिम कला और और दूसरी ओर सुसंस्कृत कला के मध्य स्थित रही है। हालांकि लोक कला की उत्पत्ति एवं इतिहास के सम्बन्ध में भी विद्वानों के एकमत नहीं हुए है लेकिन फिरभी यह कहा जा सकता है कि यह एक अलग वातावरण में प्राचीन परम्पराओं को अक्षुण्ण रखने वाली कला है। इस वातावरण का प्रभाव आकृतियों, शैली, उपकरणों, धार्मिक क्रियाओं, मनोरंजन के साधनों, जन्म-मृत्यु विवाह आदि के संस्कारों तथा फसल के उत्सवों आदि में विकसित होता दिखायी देता है। लोक कला की उत्पत्ति जादू-टोना, अन्धविश्वास, भय निवारण, धार्मिकता, अलंकरण प्रवृत्ति तथा जातिगत भावनाओं से हुई है। समस्त कलाएं मनुष्य की सौन्दर्य वृत्ति का परिणाम हैं। अपने चारों ओर के वातावरण से प्रेरित होकर मनुष्य में जो सौन्दर्य धारणा उत्पन्न होती है, वहीं कलाओं में प्रतिफलित होती है। वातावरण और परिस्थितियों सामाजिक विकास की गति निश्चित करते है और सामाजिक विकास अपने प्रत्येक चरण में मानसिक संगठन को एक निश्चित दिशा प्रदान करते है।

भवनों, वस्त्रों, पात्रों एवं उनके उपकरणों में ही अधिक प्राप्त होते हैं या दिखाई देते हैं। मिट्टी के बर्तन, वस्त्र, नाव, मधुमक्खी पालने का सन्दूक, कंधी, पालना, पंखा, वाद्य यंत्र, चमचे, टाइल्स, घड़ी, बेंत, जूतियों आदि सब पर लोक-कलाकार अपना कौशल प्रदर्शित करता है। गुडिया, खिलौने, पतंग, कठपुतली, चरखा आदि मनोरंजन के साधनों में भी लोक कलाओं के दर्शन होते हैं। धार्मिक कलाकृतियों में सबसे अधिक गंभीरता होती है। ये प्रायः ऋतुओं, त्यौहारों पर्वों अथवा जीवन सम्बन्धी संस्कारों से बंधी रहती है। नियमित रूप से भी कुछ आकृतियों का सदैव प्रयोग होता रहता है जैसे घरों अथवा खलिहानों के द्वार पर गणेश, लक्ष्मी, आदि की आकृतियों बनी रहती है। ऋतु उत्सव में भी लोक कलाकार को बहुत अच्छा अवसर प्राप्त हो जाता है। उत्सवों के अवसर पर लोगों को परस्पर मिलने मनोरंजन करने तथा अपनी-2 कला कुशलता प्रदर्शित करने का अवसर प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार की वेशभूषा मुखौटे, पुतले, आतिशबाजी का निर्माण बड़े उत्साह से किया जाता है।

ईसाइयों में ईस्टर के अवसर पर अण्डे चित्रित करने की प्रथा है। भारत में टेसू और झांझी इसी के उदाहरण हैं।

निष्कर्ष :-

कोई भी परम्परा यदि आज के सन्दर्भ में उपयोगी नहीं है तो वह अर्थहीन है और उनका चलन रहने वाला नहीं है। इन सारी लोक कलाओं के पीछे भी यही दर्शन है। यदि हमें इन कलाओं, उनके इन विविध रूपों को जीवित उपयोगी और अर्थवान रखना है तो उन्हें वैसे के वैसे ही रूप में स्वीकार करने का मोह छोड़ना होगा और जो कुछ बदलाव आ रहा है उससे चिन्तित हुए बिना खुशी-2 स्वीकार करना होगा। लोक-कलाओं की निरन्तरता के लिये यह आवश्यक भी है कि ये कुछ न कुछ नया ग्रहण करती रहें, उसे आत्मसात करती रहें। वे पारम्परिक भी लगे रहे और नया जो कुछ भी है उससे वो विलग न रहे।

पता – W/o Atul Kumar, Kedarpur Urf Moudi,
Dhampur, Bijnor, Dhampur, Uttar Pradesh 246761
मोबाइल नंबर –7055590999
ई-मेल – pooja0889chauhan@gmail.com



रामचरितमानस धार्मिक ग्रंथ की उपादेयता

कु. पूजा रमेशचन्द्र शुक्ला

पी-एच० डी०, शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट, गुजरात (भारत)

रामचरितमानस भक्तिकाल में लिखी गई एक धार्मिक ग्रंथ है। 'मानस' भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। यह हिन्दू धर्म का महान् एवं पवित्र तथा पूजनीय ग्रंथ है। जिसकी रचना महाकवि तुलसीदास जी ने की है। रामचरितमानस की रचना संवत् १६३१ में हुई है जिसका प्रमाण तुलसी जी ने मानस में दिया है—

“संबत सोरह सै एकतीसा। करउं कथा हरि पद धरि सीसा।

नौमी भौम बार मधुमासा। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा।।

जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहि। तीरथ सकल तहां चलि आवहिं।।^१

और बेनी माधवदास जी के अनुसार इसकी रचना संवत् १६३३ वि० में मानी गई है।

तुलसीदास ने इस ग्रंथ की रचना इस प्रकार से की है कि इसमें नाना, पुराण, निगमागम के विचारों का समावेश तो हुआ ही है, बल्कि सभी कल्याणकारी विचारों का भी वर्णन अति सूक्ष्मता के साथ किया गया है। जो इस प्रकार से है—

“नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्। रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।।

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा, भाषा निबन्ध मति मंजुल मातनोति।।^२

रामचरितमानस का काव्यरूप प्रबंध है और इसकी रचना अवधी भाषा में की गई है। मानस में गोस्वामी जी की प्रबन्ध पटुता एवं उद्भाववना शक्ति के साथ-साथ उन्नत रचना-कौशल, मनोहर वस्तु, व्यापार वर्णन, मार्मिक स्थलों का सरलता से निरूपण, प्रभावोत्पादक भाव-व्यंजना, हृदय ग्राही एवं मर्म स्पर्शी संवाद, प्रसंगानुकूल सरस एवं सुबोध भाषा का प्रयोग, सुललित अलंकारयोजना, काव्यानुकूलता छन्द विधान आदि के सूक्ष्मता के साथ दर्शन होते हैं। रामचरितमानस में श्रीराम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप की व्याख्या की गई है। श्रीराम के चरित्र ने इस काव्य को निखार दिया है। इतना ही नहीं तुलसीदास जी ने अपने काव्य में श्रीराम के विभिन्न रूपों की जैसे- आदर्श मानव, आदर्श पुत्र, आदर्श शिष्य, आदर्श भाई, आदर्श पति एवं आदर्श राजा को चित्रित किया गया है। रामचरितमानस में निरूपित रामकथा का स्रोत कोई एक ग्रंथ नहीं है बल्कि मानस की सामग्री वेद, शास्त्र, पुराण, बाल्मीकि रामायण, अध्यात्मरामायण, हनुमान्नाटक आदि कई ग्रंथों से ली गई है। 'मानस' के कथानक का विभाजन सात काण्डों में हुआ है— बालकाण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुंदर काण्ड, लंका काण्ड और उत्तर काण्ड। इसके कथानक का मूल प्रतिपाद्य रावण का वध और श्रीराम का राज्याभिषेक है। रामचरितमानस का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति है मानस के अन्त में इस प्रसंग का

उल्लेख किया गया है—

“कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभहिं प्रिय जिमि दाम ।

तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ।।^३

श्रीराम कथा एवं रामचरित्र को आधार बनाकर आदिकाल से ही काव्य का सृजन किया जा रहा है। जिसमें आदिकवि बाल्मीकि द्वारा रचित रामायण जिसे आदि ग्रंथ की संज्ञा दी जा सकती है। इस रचना के बाद कालिदास की कृति रघुवंशम् और भवभूति की कृति उत्तररामचरितम् सामने आया परन्तु यह ग्रंथ जनसामान्य लोगों को प्रभावित नहीं कर सका। सबसे ज्यादा अगर रामचरित ग्रंथ से समाज प्रभावित हुआ है तो वह है तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस्। और देखा जाये तो तुलसीदास की लोकप्रियता का आधार श्रीरामचरितमानस् ही है। रामचरितमानस् धार्मिक और साहित्यिक परम्पराओं का उद्गोचर है। रामचरितमानस् अपनी धार्मिकता, गुरुता और विशेषता के कारण भारत देश में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में विख्यात है। यह हमारे धार्मिक ग्रंथों का सिरमौर है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का कहना है कि, “गोस्वामी जी के पीछे भी कई लोगों ने रामायण लिखी पर गोस्वामी जी की प्रतिभा का प्रखर प्रकाश १५० वर्ष तक ऐसा छाया रहा कि रामभक्ति की और रचनाएं उसके सामने ठहर न सकी।^४

रामचरितमानस एक ऐसा ग्रंथ है जो जन-जन के दिलों पर छाया हुआ है। राम के चरित को संसार तक पहुंचाने के लिए टी.वी. प्रसारण के माध्यम से राम के सम्पूर्ण चरित का सजीव दृश्य दिखाया गया है। तुलसी कृति रामचरितमानस बाल्मीकि रामायण से अत्यधिक लोकप्रिय हो गई है। बाल्मीकि रामायण संस्कृत में लिखे होने के कारण ज्यादा लोकप्रिय नहीं हो सकी, जबकि रामचरितमानस अवधी भाषा में रचित होने के कारण जन-जन के हृदय तक पहुंच गई। रामचरितमानस सरल भाषा में लिखी गई रचना है, जिसे कोई भी आसानी से पढ़ और समझ सकता है। “रामायण सरल भाषा (ग्राम्यगिरा) भी रामचरितमानस के प्रचार में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई। अपनी सरलता के कारण यह घर-घर में पढ़ी जाने लगी यहां तक कि स्त्रियों के लिए तो इतनी ही शिक्षा पर्याप्त समझी जाने लगी कि वे रामायण बांच लें। इस भाषा सरलता के कारण गांव-गांव, घर-घर में केवल नागरी के अक्षरों से परिचित लोग भी रामायण पाठ करने लगे और निरक्षर लोग भी सुन-सुनकर सैकड़ों दोहे-चौपाई कंठस्थ करने लगे।^५ इस प्रकार रामचरितमानस निरक्षर लोगों के लिए भी उनकी वाणी बन गया।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने तो स्वयं स्वराज्य के रूप में रामराज की कल्पना की है। नवजीवन पत्र में महात्मा गांधी जी बार-बार तुलसी मानस के बारे में लिखते रहे हैं, और रामराज स्थापित करने की बात कही है। उत्तरकाण्ड में रामराज की विशिष्टताओं के साथ वर्णन किया गया है और महान् कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी साकेत द्वारा मानसकार का ऋणी होना स्वीकार किया है।

रामचरितमानस् समन्वयवाद को प्रतिपादित करता हुआ एकता की भावना को समाज में स्थापित करने का उच्च प्रयास है। तुलसी ने मानस द्वारा समन्वय को इस प्रकार से स्थापित किया जैसे—लोक एवं शास्त्र का समन्वय, ग्राहस्थ एवं वैराग्य का समन्वय, भक्ति एवं ज्ञान का समन्वय, निर्गुण एवं सगुण का समन्वय, शैव एवं वैष्णव का समन्वय, भाग्य एवं पुरुषार्थ का समन्वय, शूद्र एवं ब्राह्मण का समन्वय आदि का समन्वय स्थापित किया है। मानस समन्वय की विराट व्याख्या करते हुए कहता है कि—

“अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।

मोरें मत बड नाम दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें।।^६

आज मानस पर एक प्रश्न उठाया गया है कि मानस में तुलसीदास जी द्वारा नारी निंदा की गई है जो अब समाज में विद्वानों द्वारा महत्त्वपूर्ण विवाद के विषय के रूप में दिखाया गया है। जिसके उदाहरण स्वरूप मानस की यह चौपाई है— “ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी” परन्तु ऐसा कुछ नहीं बल्कि तुलसी जी ने मानस में उन नारियों की निंदा की है जो भ्रष्ट हैं, परपुरुषगामी हैं, चरित्रहीन हैं आदि। लेकिन जहां मानस नारी विवाद के रूप में सामने आया है तो वहीं नारी प्रशंसा के रूप में भी दिखाई देता है। जिनमें वे नारियां हैं जो सर्वथा वन्दनीय हैं, जिनमें कौशल्या, सुनयना, सुमित्रा, सीता, अनुसूया, शबरी आदि के चरित्र द्वारा नारी की वंदना की गई है। तो फिर तुलसी का मानस नारी निंदक कैसे हुआ। तुलसी ने तो नारी के दो रूपों का मानस में चित्रण किया है— एक कामिनी तो दूसरा भामिनी। क्या रावण द्वारा सीता मां का हरण करना ठीक था? क्या मंदोदरी को अपने पति रावण को समझाना ठीक था? क्या रानी तारा द्वारा अपने पति बालि को समझाना ठीक था? तो देखा जाय तो यह बिल्कुल ठीक था। इस प्रकार देखा जाये तो मानस द्वारा यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है कभी—कभी पत्नी द्वारा पति को समझाना और उसका न समझना विनाश का कारण बन सकता है। अतः तो फिर यह प्रश्न उठता है कि मानस नारी निंदक कैसे हुआ?

मानस में तुलसीदास जी ने मानव दुर्गुणों को समाप्त करने के अनेक प्रयास बताए हैं। उन्होंने अपने साहित्य द्वारा संत प्रवृत्ति कल्याणकारी समाज की उद्भावना करने का प्रयास किया है। और वे अपने इस कल्याणकारी साहित्य की रचना करने में सफल भी हुए हैं। तुलसी द्वारा रचित रामचरितमानस जैसी रचना आज ही नहीं, भविष्य में भी इसी तरह सदुपयोगी और प्रासंगिक रहेगा। रामचरितमानस सभी जातियों की एकता और उनके समन्वय को दिखाता है। सत्य, निष्ठा और प्रेम की अमिट परिभाषा मानस समाज में प्रस्तुत करता है। रामचरितमानस में व्यक्ति विशेष का सर्वश्रेष्ठ प्रबंधन देखने को मिलता है।

गुरु की महत्ता को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। गुरु की आज्ञा एवं उनके सलाह के बिना कोई कार्य नहीं दिखाया गया है। बड़ों की सेवा और उनका मान—सम्मान करना मानस की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। जीवन के हर पहलू का दृश्य मानस प्रकट करता है। फिर वह चाहे दैनिक जीवन हो या राजनीति का विशाल क्षेत्र, कोई भी क्षेत्र अधूरा नहीं है। राजनीति के क्षेत्र में रामचरितमानस अद्वितीय भूमिका निभाता है फिर वह चाहे राजधर्म हो या फिर क्षत्रिय धर्म या फिर कुल की मर्यादा सभी का ही बड़ी सूक्ष्मता के साथ वर्णन किया गया है। तुलसीदास जी परशुराम संवाद में राम के मुंह से क्षत्रिय धर्म की बात कहलवाते हैं :-

“छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहिं पावर आना।।

सुनि मृदु गूढ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के।।^७

क्षत्रिय धर्म की मर्यादा का तुलसी ने राम के मुंह से बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ वर्णन कराया है। प्राचीन काल से ही क्षत्रिय धर्म की मर्यादा के बारे में बताया गया है कि युद्ध से भागना नहीं और युद्ध से कभी भयभीत नहीं होना है। और दूसरों के प्राण संकट में देखकर अपने प्राणों की परवाह किए बिना उसकी रक्षा करना क्षत्रिय धर्म है और रामचरितमानस में यह भी बताया गया है कि देश का मुखिया अर्थात् राजा कैसा होना चाहिए—

“मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहं एक।

पालिअ पोषिअ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।^८

वहीं मानस हमें कुल की रीति का वर्णन करते हुए हमें यह समझाने का प्रयास करता है कि हमें कभी भी अपने वचनों से पीछे नहीं हटना चाहिए और अपने कुल की मान-मर्यादा को बनाए रखना चाहिए—

“रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाई पर वचन न जाई।।

समकालीन इतिहास या फिर राजनीति के क्षेत्र में देखे तो भाई-भाई राज्य की लालसा में एक दूसरे की जान लेने में तनिक भी संकोच नहीं करते थे। परन्तु रामचरितमानस हमें यह शिक्षा देता है कि भाई के लिए अपना सम्पूर्ण राज्य भी त्याग देना अद्वितीय बन्धु प्रेम का उदाहरण है। जिसका उदाहरण भरत और राम का अतुलनीय प्रेम है। राजनीति हमें यह सिखाती है कि परोपकार के समान कोई दूसरा धर्म नहीं “परहित सरिस धर्म नहिं भाई”। और समाज को यह संदेश देती है कि हमारे कारण किसी को भी कष्ट न हो। हर मनुष्य स्वतन्त्रता से अपना जीवन-यापन करें।

रामचरितमानस भक्ति के क्षेत्र में अतुलनीय ग्रंथ है। आज घर-घर में रामायण का पाठ होता है। समाज भक्ति की दिशा में आगे बढ़ रहा है। अयोध्या में राममन्दिर का निर्माण राम की भक्ति में चार चांद लगा देता है। फिर भी समाज जिस ग्रंथ को भक्ति प्रेम सहित पढता है उसके मूल्य को आज तक नहीं समझ पाया। नारी का सम्मान नहीं हो पा रहा, बलात्कार जैसे मामले हमारे देश में अंधाधुंध बढ़ रहे हैं। कोई यह नहीं देखता कि वह लड़की हमारी बेटी जैसी है बस! उसका फायदा उठाने में लगे रहते हैं। मानस में वर्णित नैतिक मूल्य का समाज पर कोई प्रभाव नहीं हो रहा है, वह कहीं खो सा गया है। भक्ति की बड़ी-बड़ी बातें हमें यह ग्रंथ सिखाता है, जिसे हमें केवल पढना ही नहीं है बल्कि दैनिक जीवन में उन्हें उतारना भी है। मानस हमें निम्नलिखित आदर्श को सिखाता है जो जीवन में अपनाने योग्य है—

१. अपने बड़ों का आदर करना।
२. जीवन के हर क्षेत्र में कुछ भी सीखने के लिए हमेशा तत्पर रहना।
३. अपने कुल और मर्यादा की रक्षा करना।
४. अपने भाई-बन्धुओं के साथ प्रेम का व्यवहार रखना।
५. और अपने जीवन साथी एवं जीवन संगिनी पर अटूट प्रेम और भरोसा रखना।
६. और कभी ऐसा समय आ जाए कि आपको अपना पराक्रम दिखाना पड़े तो और समाज की रक्षा करना पड़े तो इससे कभी पीछे नहीं हटना।
७. अपने दास-दासी एवं सेवकों से हमेशा सौहार्द्र पूर्ण व्यवहार रखना।
८. जीवन में कितना भी कठिन समय आ जाए उससे कभी घबडाकर भागना नहीं चाहिए।

रामचरितमानस भारतीय संस्कृति का प्रवाह है। मानस में आदि से अन्त तक समन्वय की विराट चेष्टा के दर्शन होते हैं। तुलसीदास जी ने इस काव्य की रचना स्वान्तः सुखाय की थी। पर यह काव्य रचना भारतीय जनजीवन में सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप जगाने का महत्त्वपूर्ण माध्यम बनी। रामचरितमानस की रचना इतिहास के जिस काल में हुई, उस समय पारम्परिक भारतीय धर्म की चेतना बिखराव के पथ पर थी। समाज के उत्थान और धार्मिकता की ज्योत को पुनर्जीवित करने में रामचरितमानस का बहुत बड़ा हाथ है। क्योंकि मध्यकाल में मुस्लिम धर्म का बोलबाला था। जहां मानस की रचना ने जनता के हृदय में आग में घी डालने का कार्य किया। अलग-अलग धाराओं में बहते हिन्दू धर्म को मानस ने समेटने एवं उनमें एकता स्थापित करने का प्रयास किया

है। मानस में हर मर्यादा का पालन अति सूक्ष्मता के साथ किया गया है। मानस के बारे में मुक्तिबोध का कहना है कि, "जहां तक रामचरितमानस की काव्यगत सफलता का प्रश्न है, हम उनके सम्मुख केवल हम केवल नतमस्तक नहीं हैं कि उसमें श्रेष्ठ कला के दर्शन होते हैं, बल्कि इसलिए कि उसमें उक्त मानव-चरित्र के, भव्य और मनोहर व्यक्तित्व-सत्ता के भी दर्शन होते हैं। तुलसीदास की रामायण पढते हुए, हम एक अत्यंत महान व्यक्तित्व की छाया में रहकर अपने मन और हृदय का आप ही आप विस्तार करने लगते हैं।^६

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मानस आज विश्व काव्य ग्रंथ बन चुका है। उसमें भक्ति, नीति, रीति, मर्यादावाद, मानवतावाद, सहिष्णुता, लोकसंस्कृति, नृत्य-संगीत आदि का समायोजन है। जिसके कारण मानस सर्वसाधारण के श्रद्धा का पात्र बन गया है, और साथ ही काव्यवेत्ताओं के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु। साथ ही यह काव्य ग्रंथ भक्ति की अमिट साधना को अपने में समेटे हुए जनसाधारण के भक्ति का माध्यम बन चुका है।

सन्दर्भ ग्रंथ :-

१. गोस्वामी तुलसीदास विरचित : श्रीरामचरितमानस— (बालकाण्ड) (टीकाकार— हनुमानप्रसाद पोद्दार) सं. २०६४ चौरासीवां पुनर्मुद्रण, प्रकाशक— गीताप्रेस गोरखपुर।
२. गोस्वामी तुलसीदास विरचित : श्रीरामचरितमानस— (बालकाण्ड) (टीकाकार— हनुमानप्रसाद पोद्दार) सं. २०६४ चौरासीवां पुनर्मुद्रण, प्रकाशक— गीताप्रेस गोरखपुर।
३. गोस्वामी तुलसीदास विरचित : श्रीरामचरितमानस— (उत्तरकाण्ड) (टीकाकार— हनुमानप्रसाद पोद्दार) सं. २०६४ चौरासीवां पुनर्मुद्रण, प्रकाशक— गीताप्रेस गोरखपुर।
४. हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रवृत्त्यात्मक अध्ययन (डॉ. जगदीश कुमार प्रजापति) प्रकाशन—भवदीय प्रकाशन, अयोध्या-फैजाबाद, संस्करण— २०१६
५. गोस्वामी तुलसीदास (समीक्षात्मक विवेचन) (आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी) प्रकाशन— चौखम्भा विद्या भवन, चौक बनारस, संवत्-२०१३
६. गोस्वामी तुलसीदास विरचित : श्रीरामचरितमानस— (बालकाण्ड) (टीकाकार— हनुमानप्रसाद पोद्दार) सं. २०६४ चौरासीवां पुनर्मुद्रण, प्रकाशक— गीताप्रेस गोरखपुर।
७. गोस्वामी तुलसीदास विरचित : श्रीरामचरितमानस— (बालकाण्ड) (टीकाकार— हनुमानप्रसाद पोद्दार) सं. २०६४ चौरासीवां पुनर्मुद्रण, प्रकाशक— गीताप्रेस गोरखपुर।
८. गोस्वामी तुलसीदास विरचित : श्रीरामचरितमानस— (अयोध्याकाण्ड) (टीकाकार— हनुमानप्रसाद पोद्दार) सं. २०६४ चौरासीवां पुनर्मुद्रण, प्रकाशक— गीताप्रेस गोरखपुर।
९. निबन्धों की दुनिया : मुक्तिबोध (सम्पादक— कृष्णदत्त शर्मा) प्रकाशन— वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण— २०१७

मो.नं. 7990845759

ई.मेल.आईडी— kmpoojashukla66@gmail.com



पितृपक्ष में गया महात्म्य : एक अध्ययन

पूनम कुमारी

संस्कृत शोधार्थी, जनार्दन राय नागर राजस्थान, विद्यापीठ (डीम्ड-टू-बी) विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

प्रस्तावना :-

भाद्रपद महीने की पूर्णिमा से अश्विन कृष्ण पक्ष अमावस्या के सोलह दिनों को पितृ पक्ष कहा जाता है। पितर का अर्थ पालन या रक्षण करने वाला होता है। इस समय पर पितृ चाहे वह किसी भी रूप में अथवा किसी भी लोक में हों, पितृ पक्ष के समय अपनी तिथि पर पृथ्वी पर आते हैं। श्रद्धा के साथ जो भी उनकी तृप्ति के लिए शुभ संकल्प और तर्पण किया जाता है, उसे पितृ सूक्ष्म रूप में आकर अवश्य ही ग्रहण करते हैं। अपनी तिथि के दिन पितृ सुबह सूर्य की किरणों पर सवार होकर आते हैं तथा अपने पुत्र पौत्र एवं वंशजों से अपेक्षा करते हैं कि उनको अन्न-जल प्रदान करें। ब्राह्मण को भोजन कराने तथा पितृ पक्ष में उन्हें जल देने से वह एक वर्ष के लिए तृप्त हो जाते हैं। इन सोलह दिनों में न तो कोई शुभ कार्य किया जाना चाहिए और न ही कोई भी नई वस्तु खरीदनी चाहिए।

योग गुरु सुरक्षित गोस्वामी कहते हैं कि इस समय पर पितृ यमलोक से आकर हमारे घर में वास करते हैं, और सोलह दिनों तक अपना-अपना भाग लेकर ब्राह्मणीय ऊर्जा के साथ वापस चले जाते हैं इस प्रकार से व्यक्ति अपने पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है।

ब्रह्माण्ड के दक्षिण दिशा में स्थित पितृलोक में निवास करने वाले पितृ केवल और केवल श्रद्धा और भाव के भूखे होते हैं। पितृ पक्ष में हमारे पास श्राद्ध करने के लिए कुछ भी न हो तो दोपहर के समय दक्षिण दिशा की ओर मुख करके जल दे दें या फिर उनकी याद में आंसू ही बहा दें श्राद्ध हो जायेगा। पितृ पक्ष को महालय एवं श्राद्ध पक्ष के नाम से जाना जाता है।

पुराणों के अनुसार कहा गया है कि मृत्यु के देवता यमराज पितृ पक्ष में जीव को मुक्त कर देते हैं, जिससे वह जीव अपने स्वजनों के पास जाकर श्राद्ध एवं तर्पण ग्रहण कर सकें। मांसाहार एवं शराब को पितृ पक्ष में पूरी तरह वर्जित माना गया है। पितृ पक्ष का माहात्म्य उत्तर एवं उत्तर पूर्व भारत में अधिक है। महाराष्ट्र में इसे पितृ पंधरवडा, तमिलनाडु में आदि अमावसाई तथा केरल में करिकडा वावुबली के नाम से जाना जाता है। श्राद्ध को स्त्री या पुरुष कोई भी कर सकता है श्रद्धा से कराया गया ब्राह्मण को भोजन तथा पवित्रता से किया गया जल का तर्पण ही श्राद्ध का आधार माना जाता है अधिकतर लोग श्राद्ध एवं तर्पण घर पर ही करते हैं।

भारतीय धर्मग्रंथों के अनुसार मनुष्य पर प्रमुख तीन ऋण माने गये हैं – पितृ ऋण, देव ऋण, ऋषि ऋण। इनमें से पितृ ऋण सर्वोपरि ऋण माना गया है। पितृ ऋण में पिता के अतिरिक्त माता एवं वे सब बुजुर्ग सम्मिलित

हैं, जिन्होंने हमको अपना जीवन धारण करने एवं उसका पूर्णरूप से विकास करने में सहयोग दिया।

पितृपक्ष में हिन्दू लोग मन, कर्म तथा वाणी से संयम का पालन करते हैं, और मृत माता-पिता का श्राद्ध करते हैं। श्राद्धों में भी गया श्राद्ध का अपना विशेष महत्त्व है। वैसे तो इसका शास्त्रीय समय निश्चित है किन्तु 'गया सर्वकालेषु पिण्डं दधाद्विपक्षणं' बोलकर पिंडदान करने की अनुमति प्रदान की गयी है।

एकैकस्य तिलैर्मिश्रांस्त्रींस्त्रीन् दद्याज्जलाज्जलीन् ।

यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।

अर्थात् अपने पितरों को जो तिल-मिश्रित जल की तीन-तीन अंजलियाँ प्रदान करते हैं, इससे इनके जन्म से लेकर तर्पण तक के सारे पापों का नाश हो जाता है। हिन्दू धर्म दर्शन के अनुसार कहा गया है कि जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी निश्चित है। कुछ विरलो को ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। पितृपक्ष में पिता पक्ष की तीन पीढ़ी एवं माता पक्ष के पूर्वजों के लिए तर्पण किया जाता है। इन्हें ही पितर कहा जाता है। दिव्य पितृ दर्पण, देव तर्पण ऋषि तथा दिव्य मनुष्य तर्पण के पश्चात् ही स्व पितृ तर्पण किया जाता है।

गया माहात्म्य :-

पौराणिक कथाओं के अनुसार भस्मासुर के वंश में ही गयासुर नाम का एक दैवीय दानव था। जिसने कठिन तपस्या करके ब्रह्माजी से आशीर्वाद मांगा था कि उसका शरीर देवताओं की भाँति पवित्र हो जाये और उसके दर्शन करने मात्र से जीवन को पापों से मुक्ति मिल जाये। इस वरदान के बाद सब कुछ विपरीत मिल जाये। इस वरदान के बाद सब कुछ विपरीत होने लगा और स्वर्गलोक में लोगों की संख्या बढ़ने लगी। इससे बचने के लिए देवताओं ने एक पवित्र स्थल की मांग गयासुर से की जिस जगह पर यज्ञ किया जा सकें। तब गयासुर ने अपना स्वयं का शरीर ही देवताओं को यज्ञ के लिए दान दे दिया। गयासुर जब धरती पर लेटा तो उसका विशालकाय शरीर पाँच कोस में फैल गया। इसके बाद से ही इस जगह को गया के नाम से जाना जाता है।

श्राद्ध कर्म व पिंडदान करने के लिए देशभर में 55 स्थानों को महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है। लेकिन उसमें भी बिहार गया का स्थान सर्वोपरि माना है। इसको विष्णु का नगर एवं मोक्ष स्थली के नाम से भी जाना जाता है। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार जो श्रद्धालु गया तीर्थ में जाकर फल्गु नदी (निरंजना) के तट पर बालु का भी पिंडदान करते हैं उसे भी चावल के पिंडदान के बराबर माना जाता है। उनके 108 कुल तथा 7 पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है। गया तीर्थ में स्वयं भगवान श्री हरि विष्णु पितृ देवता के रूप में विराजमान रहते हैं। इसलिए इसे पितृ तीर्थ भी कहा जाता है। गया की इसी महत्ता के कारण यहाँ लाखों लोग हर वर्ष अपने-अपने पूर्वजों का पिंडदान करने आते हैं। यहाँ पिंडदान करने के बाद कुछ शेष नहीं रहता है और व्यक्ति पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है। यहीं पर भगवान श्रीराम और माता सीता ने राजा दशरथ की आत्मा की शांति के लिए पिंडदान किया था। कौरवों ने भी इसी स्थान पर श्राद्ध कर्म किया। यहाँ पर पितृ पक्ष के दौरान एक मेला भी लगता है, जिसे पितृ पक्ष मेला कहा जाता है। गया तीर्थ हिन्दुओं के साथ-साथ बौद्ध धर्म के लोगों का भी पवित्र स्थल है।

निष्कर्ष :-

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पितृपक्ष में अपने-अपने पूर्वजों की मृत्यु तिथि के अनुसार उनका श्राद्धकर्म अवश्य किया जाना चाहिए। जो लोग पितृ पक्ष में पितरों की तीन पीढ़ियों का श्राद्ध कर्म एवं

तर्पण नहीं करते हैं उन्हें पितृदोष लगता है। श्राद्ध कर्म एवं तर्पण करने से उनकी आत्मा को शांति एवं तृप्ति मिलती है। जो लोग हर साल गया में जाकर अपने पितरों की आत्मा की शांति के लिए पिंडदान करते हैं। उससे खुश होकर पितृ उसके पूरे परिवार को आशीर्वाद देते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. पितृ तर्पण विधि – 'कुल भूषण' पं. रमादत्त शुक्ल, प्रकाशक – कल्याण मंदिर प्रकाशन, श्री चण्डीधाम, प्रयाग।
2. अथ तीर्थ श्राद्ध विधि: – नारायण प्रसाद उपाध्याय कौशिक, प्रकाशक – बाबू माधवप्रसाद शर्मा, वाराणसी (2006)
3. श्राद्धपद्धति: – केदारनाथ उपाध्याय कोठारी, प्रकाशक – बाबू माधवप्रसाद शर्मा, वाराणसी (2006)
4. श्राद्ध स्वरूप – हेरम्ब स्वरूप शर्मा, प्रकाशक – आयुर्वेद संस्कृत हिन्दी पुस्तक भण्डार, जयपुर (2023) ISBN - 9789392133329
5. महालय श्राद्ध पद्धति: – डॉ. बलराम पाण्डेय, प्रकाशक – चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी (2015)
6. श्राद्ध पिंडदान एवं गया – डॉ. राकेश कुमार सिंहा 'रवि', प्रकाशक एक्सप्रेस पब्लिशिंग एन इम्प्रिन्ट ऑफ नेशन प्रेस (2020) ISBN - 9781636699059
7. गया श्राद्ध पद्धति – पं. रामकृष्ण शास्त्री, प्रकाशक – गीता प्रेस, गोरखपुर (2022)
8. गरुड़ पुराणम् – कृष्णद्वैपनमहर्षिव्यास विराचितम्, सम्पादक डॉ. महेश चन्द्र जोशी, प्रकाशक चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, ISBN - 978-81-218-0368-7

नाम – पूनम कुमारी

पदनाम – संस्कृत शोधार्थी

पता – 26, आनंद विहार रोड़ नं. 2, टेकरी, उदयपुर (राजस्थान)

ईमेल – poonamdhakar305@gmail.com

मोबाइल – 8741870123



भारतीय संस्कृति हमारी पहचान

प्रीति चौहान

शोधार्थी, गृह विज्ञान विभाग, मालवांचल विश्वविद्यालय इंदौर (मध्य प्रदेश)

प्रत्येक राष्ट्र की पहचान उसकी सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक मूल्यों से होती है। भारतीय संस्कृति का सार निस्संदेह एकीकरण और लोक कल्याण है। जो मानव मन, ज्ञान और आत्मा के सूक्ष्म पहलुओं को प्रभावित करती है। एक सांस्कृतिक रूप समय और स्थान से बंधा होता है, जबकि दूसरा समय और स्थान से स्वतंत्र होता है। भारत में विश्व की सभी संस्कृतियाँ आकर घुल मिल गयी है। वह वास्तव में भारतीय संस्कृति है। इसकी उत्पत्ति सिंधु घाटी सभ्यता से हुई है। जो अनेक धर्मों, सभ्यताओं और संस्कृतियों का मिश्रण है। भारतीय संस्कृति की यही विशेषता है। गुरु टैगोर के एक गीत में यही भाव है – आर्य यहाँ आये, अनार्य भी आये, द्रविड़, चीनी, शक, हूण, पठान, मुगल सब आये, पर कोई बिछुड़ा नहीं, सब इस सागर में विलीन हो गये और एक हो गये।

भारतीय संस्कृति को विश्व संस्कृतियों की जननी कहा जाता है। चाहे वह जीवन की कलाएँ हों या विज्ञान और राजनीति का क्षेत्र, भारतीय संस्कृति का सदैव एक विशेष स्थान रहा है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ समय के साथ नष्ट हो गईं। परंतु भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही अपनी परंपराओं की उपस्थिति से चिरस्थायी बनी हुई है। बड़ों का सम्मान भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। अगर बुजुर्ग खड़े हैं तो उनके सामने न बैठें और अपनी सीट बुजुर्गों के लिए छोड़ दें। उन्हें पहले परोसने जैसी गतिविधियाँ हमारे दैनिक जीवन का नियमित हिस्सा हैं और हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग हैं। हम देखते हैं कि युवा लोग कभी भी अपने बड़ों को उनके पहले नाम से नहीं बुलाते। हम सभी बड़ों, पुरुषों और महिलाओं दोनों के पैर छूते हैं, उनका आशीर्वाद लेते हैं और उन्हें श्रद्धांजलि देते हैं। छात्र शिक्षक के पैर छूते हैं। मन, शरीर, वाणी, विचार, वाणी और कर्म की पवित्रता हमारे लिए महत्वपूर्ण है। इसलिए हमें अभद्र और अभद्र भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए, बाएं हाथ से किसी को कुछ भी देना अपमान माना जाता है। देवी-देवताओं को चढ़ाने के लिए तोड़े गए फूलों की गंध नहीं लेनी चाहिए।

हम वैदिक युग के दौरान भारतीय संस्कृति के सबसे संगठित रूप को देखकर शुरुआत करते हैं। वेद विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ माने जाते हैं। भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही अत्यंत महान, एकीकृत, शक्तिशाली और गतिशील रही है। जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों में अद्भुत सामंजस्य है। इसका कारण यह है कि भारतीय विचारकों ने सदैव संपूर्ण विश्व को एक बड़ा परिवार माना है। प्राचीनकाल से ही उनके उदार विचार रहे हैं संस्कृति का मूल वेदों में निहित है। भाषा में समृद्ध और विचार में

परिपक्व, यह वैदिक साहित्य मानवीय मूल्यों का संरक्षक है, सामाजिक संरचना और जीवन शैली के लिए सही मार्गदर्शन प्रदान करता है, और गुरु शिष्य परंपरा की असाधारण प्रणाली के माध्यम से आज भी अपने मूल रूप में जारी है। ऐतिहासिक रूप से विश्व के सभी विद्वान इस बात से सहमत हैं कि वेद पृथ्वी पर सबसे प्राचीन ग्रंथ हैं और इन वेदों से जो संस्कृति उत्पन्न हुई, वह इस पृथ्वी पर सबसे पहले उभरी। इसकी सही तारीख का पता नहीं चल सका है लाख कोशिशों के बावजूद विद्वान इसकी तिथि 6000 ईसा पूर्व बताने में असमर्थ रहे हैं। लोक कल्याण के लिए कार्य करने की इच्छा से प्रेरित होकर भारतीय ऋषियों ने हुए इसे सार्वभौमिक मूल्यों की एक अत्यंत वैज्ञानिक और शाश्वत प्रणाली प्रदान की। इसमें विविधता दिखाई देती है और उच्चतम गुणवत्ता वाले हीरे खदानों से आते हैं। उस समय भी यह मिट्टी जैसी कई अशुद्धियों से दूषित था। सबसे पहले तो इसमें कई खामी आती है फिर साफ सफाई व नक्काशी के बाद कटिंग पूरी होती है। यह क्रिया गुणाधन संस्कार है। तो फिर ये हार पहनने लायक है जैसे-जैसे इसकी गुणवत्ता और संस्कृति में सुधार होता है, वैसे-वैसे इसका मूल्य भी बढ़ता है इसका मूल्य अनुष्ठान से ही बढ़ाया जा सकता है। मूल्यों के बिना कोई मूल्य नहीं है। उसी प्रकार जब कोई व्यक्ति मूल्यों से सुसज्जित होगा तभी उसका मूल्य और सम्मान बढ़ेगा। इसलिए संस्कार हमारे लिए महत्वपूर्ण है।

मूल्यों और संस्कृति में जरा भी अंतर नहीं है। अन्तर केवल प्रत्यय में है। इसीलिए संस्कार और संस्कृति दोनों शब्दों का अर्थ धर्म है। मनुष्य तभी मनुष्य हैं जब वे धर्म में विश्वास करते हैं, अन्यथा खाना-पीना, सोना, रोना-धोना, डरना, मरना और बच्चे पैदा करना ये सब तो जानवर ही करते हैं। पशुओं और मनुष्यों में अंतर यह है कि मनुष्य उपरोक्त सभी कार्य अनुष्ठानों के रूप में करता है। गाय, भैंस, घोड़े, बछड़े आदि खेतों में जो भी अनाज बचता है उसे खा लेते हैं। लेकिन खेतों का अनाज कोई नहीं खाना चाहता। यदि वह इसे खा लेता तो लोग कहते कि यह जानवर जैसा है। यही कारण है कि मनुष्य में मानवता मूल्यों, संस्कृति और धर्म के माध्यम से आती है। संस्कृति और मूल्यों के बिना मानवता का विकास नहीं हो सकता। यहां की प्रत्येक गतिविधि सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक है। जन्म से लेकर मृत्यु तक, सुबह बिस्तर छोड़ने से लेकर दोबारा बिस्तर पर जाने तक हम जो भी कार्य करते हैं, वे न केवल हमारे जीवन का विकास करते हैं, बल्कि हमें संशोधित, सजाते और संवारते भी हैं। ये कार्य क्या हैं, जिन्हें मनुष्य अपनी बुद्धि से नहीं जान सकता, आमतौर पर बुद्धिमान व्यक्ति यही सोचता है कि वह केवल वही कार्य करेगा जो उसके लिए लाभदायक हों। लेकिन लोग अपने लाभ और हानि को जानने के लिए अपनी बुद्धि का उपयोग नहीं कर सकते। अन्यथा कोई भी गरीब व दुखी नहीं रहेगा। उन्हें अपने प्रयासों का नुकसान भी उठाना पड़ा। इसलिए, हम अपने ही हाथों से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारते हैं। अतः धर्मग्रंथों के माध्यम से लोग अपने उत्तरदायित्व एवं गैर-उत्तरदायित्व को जान सकते हैं। अपने दायित्वों एवं निषिद्ध आचरणों को जानना तथा शास्त्रों द्वारा निर्धारित अधिकारों के अनुसार अपने दायित्वों को पूरा करना भी संस्कृति है।

भारतीय संस्कृति का एक अर्थ है सर्वांगीण विकास, सबका विकास। पारिवारिक संस्कार और आदर्श भारतीय परंपरा हैं। संयुक्त परिवारों की परंपरा आज भी हमारे बीच जीवित है। संपूर्ण विश्व एक बड़ा परिवार है और इसी विचारधारा ने निश्चित रूप से भारत को उसकी असली पहचान दी है। जब परिवार में अनुशासन होता है तो बड़ों के प्रति सम्मान और बच्चों के प्रति प्रेम होता है। यहां भी सभी की जरूरतों का ख्याल रखा जाता

है। भारती संस्कृति और सभ्यता में अनेक परिवर्तन हुए हैं परंतु परिवार व्यवस्था के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। हमें इस सभ्यता को दुनिया के हर कोने में पहुंचाना चाहिए और इसे विश्व कल्याण और विश्व शांति की नींव बनाना चाहिए। कड़ी मेहनत और प्रार्थना मिलकर असंभव को भी संभव बनाने की शक्ति रखते हैं।

ईश्वर ने मानवता को अपनी रचना की सुंदरता, समृद्धि, खुशी और न्याय को बढ़ाने में उसके साथ शामिल होने की इच्छा प्रदान की है। अपनी बुद्धिमत्ता, क्षमताओं और अद्वितीय प्रतिभाओं का उपयोग करते हुए, हमें अन्य कम विशेषाधिकार प्राप्त प्राणियों के लिए अवसर पैदा करने चाहिए और खुद को इस तरह से संचालित करना चाहिए जो दुनिया भर में प्राकृतिक पर्यावरण को बढ़ावा दे। हमारी संस्कृति अधिकारों से अधिक कर्तव्यों को प्राथमिकता देती है, और विभिन्न धर्मों और उनकी शिक्षाओं का सम्मान करती है और उनका जश्न मनाती है, बिना किसी पदानुक्रम के। हमारी संस्कृति वास्तविकता के बहुमुखी पहलुओं को अपनाती है, परिप्रेक्ष्य, व्यवहार, प्रथाओं और संस्थानों में विविधता को प्रोत्साहित करती है। एकरूपता के पक्ष में विविधता को खत्म करने के बजाय, हमारी संस्कृति विविधता में एकता और एकता में एकता को बढ़ावा देती है। भारत और वास्तव में विश्व को हमारा परिवार माना जाता है, जैसा कि 'वसुधैव कुटुंबकम्' के स्थायी मंत्र से प्रमाणित है। इसके विपरीत, पश्चिम ने दुनिया को केवल एक बाजार के रूप में देखा है। हमारी सनातन संस्कृति अपनी उदारता के लिए प्रसिद्ध है, इसने सदैव विदेशी संस्कृतियों का खुले दिल से स्वागत किया है। भारतीय संस्कृति के भक्तों की यात्रा अत्यंत प्राचीन काल से चली आ रही है। यह संस्कृति महर्षि वेदव्यास, महर्षि वाल्मिकी, बुद्ध, महावीर, आदिगुरु शंकराचार्य, रामानुज, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, गुरुनानक साहेब, संत कबीर और महर्षि अरबिंदो जैसे महान व्यक्तित्वों द्वारा रखी गई नींव पर बनी है। इन व्यक्तियों ने हमारी संस्कृति के स्तंभों को स्थापित किया है। जैसे हम अपनी संस्कृति और सभ्यता की रक्षा की दिशा में आगे बढ़ेंगे, हमें आध्यात्मिकता का महत्व समझ में आने लगेगा। संस्कृति और आध्यात्मिकता दोनों ही विविध हैं और इनके संरक्षण से ही हम आगे बढ़ सकते हैं।

'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम्' के सिद्धांत को हमारे बुद्धिजीवियों द्वारा बहुत सम्मान दिया गया है। वास्तव में, संस्कृति का माप शारीरिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक क्षमताओं के विकास में निहित है। भारतीय संस्कृति इस मानक से पूर्णतया सुसंगत है। भारत में प्राचीन काल में व्यायाम, यम, नियम, प्राणायाम, आसन और ब्रह्मचर्य जैसे विभिन्न माध्यमों से शारीरिक वृद्धि हासिल की जाती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग लंबा जीवन जीने लगे। भारतीय संस्कृति अपनी कलात्मक एवं बौद्धिक उपलब्धियों के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है। हमारी संस्कृति हमारे देश की भौतिक विशेषताओं की तरह ही विविध है। त्यौहार भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग हैं और इन्हें बड़े उत्साह और उमंग के साथ मनाया जाता है। विभिन्न क्षेत्रों के अपने-अपने अनूठे त्यौहार हैं, जैसे पंजाब में बैसाखी, हिमाचल में फुलाच, हरियाणा में सांझी, उत्तर प्रदेश में लठमार होली, केरल में ओणम, तमिलनाडु में पोंगल और असम में बिहू। यह भारत की एकता का प्रमाण है कि हिंदू, मुस्लिम, सिख और ईसाई समेत विभिन्न धर्मों के लोग सौहार्दपूर्ण ढंग से एक साथ रहते हैं। भारत के विभिन्न हिस्सों में खाना पकाने की शैली भी उनकी सांस्कृतिक प्रथाओं से प्रभावित होती है।

भारत में सभी धर्मों के लोग रहते हैं हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन या पारसी। भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है और प्रत्येक नागरिक को किसी भी धर्म को चुनने और उसका पालन करने का समान अधिकार है। भारत की तीन-चौथाई से अधिक आबादी हिंदू धर्म में विश्वास करती है, और पूरे भारत में हिंदू तीर्थ स्थल

हैं। उत्तर भारत में आप वैष्णो देवी, अमरनाथ, बद्रीनाथ, केदारनाथ, हरिद्वार और वाराणसी जैसे कई धार्मिक स्थानों की यात्रा कर सकते हैं। देश के दक्षिण में, वे स्थान जहां देवताओं का आशीर्वाद पाया जा सकता है, वे हैं सबरीमाला, श्रृंगेरी, दक्षिणेश्वर बेलूर मठ और रामेश्वरम। यदि आप पूर्वोत्तर में हैं, तो आप गुवाहाटी के बाहरी इलाके में नीलांचल पहाड़ियों पर स्थित कामरूप मंदिर के दर्शन कर सकते हैं। अगर आप गुजरात में घूम रहे हैं और भगवान कृष्ण के बारे में जानना चाहते हैं तो आपको द्वारकारनाथ मंदिर जरूर जाना चाहिए जो उस स्थान पर बना है जहां मीराबाई ने अपने प्राण त्यागे थे। आप भगवान शिव के बारह ज्योति लिंगों में से एक सोमनाथ मंदिर के भी दर्शन कर सकते हैं।

राजस्थान में अजमेर की दरगाह शरीफ और असम में अजन पीर की दरगाह मुसलमानों के लिए तीर्थ स्थल हैं। पूर्वोत्तर में पोय मक्का है। ऐसा माना जाता है कि एक वफादार मुसलमान मक्का में प्राप्त आध्यात्मिक ज्ञान का एक चौथाई यहां पा सकता है।

पंजाब में सिखों के लिए कई तीर्थ स्थल हैं, जैसे अमृतसर में हरमंदिर साहिब, अमृतसर के पश्चिम में तरनतारन, आनंदपुर में तख्त श्री केशगढ़ साहिब, बठिंडा में तलवंडी साबो और पश्चिम में गुरदासपुर डेरा बाबा नानक। 4329 मीटर की ऊंचाई पर स्थित हेमकुंड गुरुद्वारा दुनिया का सबसे ऊंचा गुरुद्वारा है। दसवें गुरु, गुरु गोबिंद सिंह ने कई वर्षों तक यहां के पहाड़ों में ध्यान किया और अंत में अपना शरीर छोड़ दिया और यहीं भगवान से मिले। सिखों के लिए एक और प्रसिद्ध तीर्थ स्थल हिमाचल प्रदेश में मणिकरण गुरुद्वारा है, जो अपने गर्म झरनों के लिए प्रसिद्ध है। माना जाता है कि इन झरनों में यूरेनियम और कई रेडियोधर्मी सामग्रियां हैं। सिखों के लिए एक और पवित्र स्थल महाराष्ट्र में तख्त सचखंड श्री हजूर अचलनगर साहिब है। भारत में हर राज्य में बड़ी संख्या में चर्च हैं। यदि आप दक्षिण में हैं, तो आप आंध्र प्रदेश में मेडक चर्च और गोंडाला चर्च और कोचीन, केरल में सांताक्रूज़ चर्च जा सकते हैं। उत्तर भारत में भी कई प्रसिद्ध चर्च हैं, जैसे उत्तर प्रदेश में सेंट जोसेफ चर्च, नई दिल्ली में सेक्रेड हार्ट चर्च आदि। अगर आपको हिमाचल की घाटी पसंद है तो शिमला में क्राइस्ट चर्च और सेंट माइकल कैथेड्रल आपको आशीर्वाद देंगे। धार्मिक मान्यताओं में विविधता के बावजूद यहां के लोग एकजुट रहते हैं। ये भारतीय मूल्य हैं जो लोगों को एक साथ जोड़ते हैं। आमतौर पर भारत में दिन की शुरुआत सूर्य नमस्कार से होती है। यहां लोग सूर्य को जल चढ़ाते हैं और मंत्र पढ़कर प्रार्थना करते हैं। भारतीय प्रकृति की पूजा करते हैं, जो इस संस्कृति के लिए अद्वितीय है। हिंदू धर्म में पेड़ों और जानवरों को भगवान की तरह पूजा जाता है। लोग भगवान् में आस्था रखते हैं और कई त्योहार मनाते हैं। उन्होंने गायों को ताजा नाश्ता और शाम का आखिरी भोजन कुत्तों को खिलाया। ऐसी उदारता विश्व में कहीं भी दुर्लभ है। सभी धर्मों में दिन की शुरुआत भजन से होती है और ये अनमोल मूल्य बच्चों में कम उम्र से ही विकसित किए जाते हैं। सुबह की प्रार्थना और नैतिक शिक्षा भारतीय शिक्षा प्रणाली के महत्वपूर्ण अंग हैं। यहां, लोगों को जाति, रंग या पंथ के आधार पर नहीं आंका जाता है, जो भारत को रहने के लिए एक अद्वितीय स्थान बनाता है।

एक हो भारत, जहाँ है एकता की झलक,

यहां हर किसी का सम्मान किया जाता है, चाहे वह किसी भी धर्म या जाति का हो।

यहां की गंगा नदी सशक्त और शांति का पर्याय है।

यहां सबके हृदय में विचारों का सामंजस्य विद्यमान है।

साधु-संतों की संगति से लोगों को सुकून और खुशी मिलती है।
यह ज्ञान का स्वर्ग और शिक्षा के लिए आदर्श स्थान है।
यहाँ समृद्ध भारतीय संस्कृति है,
भाषाई एकता और राष्ट्रवादी गौरव है।
यहाँ सत्यनिष्ठा की भावना प्रत्येक प्राणी में विद्यमान है।
यहां सबका प्यार, सबका सहयोग और देशभक्ति की रोशनी है।
अविभाज्य भारत, जहाँ सदैव धूप रहती है,
यहां सबको शांति, सुख और समृद्धि दिखाने का आदेश है।
यहीं है सबका साथ, सबका विकास, सपनों की पहली उड़ान।

Address :- Preeti Chauhan w/o Mr.Tarun kumar

Vill. & post :- Askripur (Noorpur)

Disst :- Bijnor (U.P) Pin. 246727

Email :- preettk1@gmail.com

Mob :- 8755940395



वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय हिंदी कथा साहित्य में विद्यमान मानवीय व कौटुंबिक मूल्यों की प्रासंगिकता

राज कुमार

सहायक आचार्य (हिंदी), मां जालपा देवी राजकीय महाविद्यालय, तारानगर, चूरु (राजस्थान)

शोध सारांश :-

भारतीय साहित्य में विश्वबन्धुत्व का मूल भाव जो विद्यमान है, वही वर्तमान में संपूर्ण मानवीय मूल्यों का आधार है। वर्तमान में ह्रास होते मानवीय मूल्यों के इस दौर में संपूर्ण विश्व के समक्ष भारतीय साहित्य एक पथ-प्रदर्शक के रूप में खड़ा है। वेदों में तो मनुष्य मात्र के महत्व को स्वीकार किया गया है। अद्यतन हिंदी कथा साहित्य में भी रिक्त होते मानवीय संबंधों व बिखरते हुए पारिवारिक मूल्यों पर प्रचुर साहित्य लिखा गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में वर्तमान के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय हिंदी कथा साहित्य में निहित मानवीय व कौटुंबिक मूल्यों की प्रासंगिकता व उपादेयता को ही आधार बनाकर उपर्युक्त मूल्यों को क्षरित होने से बचाने का प्रयास किया गया है।

वर्तमान दौर में साहित्यकार के महत्व को स्वीकार करते हुए प्रेमचंद का निम्न कथन पूर्णतः प्रासंगिक लगता है, "साहित्यकार सत्य की मशाल दिखाने वाला वह सिपाही है जो समाज का मार्ग प्रशस्त करता है।"

इस प्रकार साहित्य प्रत्येक व्यक्ति, समाज को अपने परंपरागत मूल्यों से पृथक नहीं होने देता।

वेदव्यास महाभारत में भारतीय साहित्य की वसुधैव कुटुम्बकम् की विचारधारा को पल्लवित करते हुए लिखते हैं -

“सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मां कश्चिद् दुःख भागभवेत्”।

बीज शब्द :- वैश्विक परिप्रेक्ष्य, मानवीय मूल्य, कौटुंबिक मूल्य, प्रासंगिकता, विश्वबन्धुत्व परंपरागत।

तथ्य विश्लेषण :- श्रेष्ठ साहित्य से अभिप्रायः उस साहित्य से है जिसमें तात्कालिक ज्वलंत मुद्दों व समस्याओं का निराकरण किसी न किसी रूप में प्रस्तुत हो। औद्योगीकरण व स्वतंत्रता के पश्चात् संयुक्त परिवारों का विघटन, नैतिक प्रतिमान, जीवन मूल्यों में आमूलचूल परिवर्तन हुए। व्यक्तिवादिता के प्रसार तथा पश्चिमी प्रभाव के कारण भी मानवीय व कौटुंबिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। युवा पीढ़ी स्वतंत्रता की अधिक आकांक्षा रखने लगी फलस्वरूप उनके सामने तेजी से बदलते समाज व मूल्यों के बीच स्वयं के अस्तित्व का प्रश्न मुख्य हो गया। परिणामतः प्राचीन ढांचा टूटने लगा। आधुनिक जीवन के पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन ज्ञानरंजन की पिता, शेष

मोहन राकेश की क्वार्टर, राजेन्द्र यादव की छोटे-छोटे ताजमहल, हरिप्रकाश की वापसी आदि कहानियों में देखा जा सकता है। भारतीय साहित्य सदैव ही आशावादी व अपने परंपरागत मूल्यों से आबद्ध रहा है।

हिंदी कथा साहित्य के प्रारंभिक उपन्यासों में 'देवरानी जेठानी की कहानी' पारिवारिक संबंधों व मूल्यों को आधार बनाकर लिखा गया। इसमें गृहधर्म का उपदेश, पारिवारिक संगठन व कुटुम्ब के विविध पक्षों पर दृष्टिपात किया गया है।

चंद्रकांता के उपन्यास 'ऐलान गली जिंदा है' में पारस्परिक सौहार्द व सामंजस्य को दांपत्य जीवन के लिए अनिवार्य माना गया है। उपन्यास के नारी पात्रों में परंपरागत नैतिक मूल्यों के प्रति विद्रोह के साथ-साथ एक स्वस्थ जिजीविषा दिखाई देती है। ऐलान गली की रत्नी चाची इन्हीं गुणों से संपन्न महिला है।

शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यासों में भी दांपत्य व कौटुंबिक मूल्यों का निर्वाह भली-भांति देखने को मिलता है। 'परसों के बाद' व 'ये छोटे महायुद्ध' उपन्यासों में पति-पत्नी के संबंधों का चित्रण हुआ है। इसमें नारी को नवीन जिम्मेदारी देते हुए नारी को परिवार का अभिन्न अंग स्वीकार किया गया है।

धर्मवीर भारती ने सामाजिक समानता व समरसता पर बल देते हुए कहा है, "जब हम सामाजिक समानता के सिद्धांत को प्राथमिक मान्यता प्रदान करें, मनुष्य और मनुष्य को समान मानें, महाजन के समकक्ष लघुजन को रखें और दोनों के लिए समान नैतिक मूल्य और समान अधिकार और समान गौरव की घोषणा करें"।

धर्मवीर भारती द्वारा सामाजिक समानता व नैतिक मूल्यों पर बल दिया गया है यही मानवीय मूल्यों का आधार है।

मृदुला गर्ग की 'जिजीविषा' कहानी में पारिवारिक मूल्यों में प्रमुख सेवाभावना को उत्कृष्ट रूप में दर्शाया गया है, "और क्या हो गया इन्हें? खाने के लिए मुंह ही नहीं खोल पाएंगे तो..... डॉक्टर प्लीज कुछ कीजिए। इन्हें बचा लीजिए, किसी भी तरह में, हर हालत में इनकी देखभाल करुंगी। रात-दिन सेवा करुंगी"। इस प्रकार पति या पत्नी का अटूट स्नेह व लगाव किसी भी प्रकार की विकट परिस्थिति में भी एक दूसरे को विलग नहीं होने देता।

सूर्यबाला की कहानी 'कहां तक', 'कहो ना', शिवानी की 'लाटी,' 'पिटी हुई गोट' दीप्ति खंडेलवाल की 'हिरो', 'दुल्हन' कहानियों में भी दांपत्य जीवन के गहरे व अखंड प्रेम व स्नेह को स्वीकार किया गया है।

इसीलिए वैश्विक परिदृश्य के संदर्भ में भारतीय साहित्य में विद्यमान मानवीय मूल्यों व कौटुंबिक आदर्शों की महत्ता व प्रासंगिकता अनिवार्य है।

निष्कर्ष :-

विश्व जगत व भारतीय समाज में आधुनिकता व पश्चिमी प्रभाव के परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति में निहित मूल्यों, सेवापरायणता, पातिव्रत्य, संयुक्त परिवार, आपसी सद्भाव की प्रासंगिकता बढ़ गई है। सामाजिक ढांचे को स्थिरता व सुदृढ़ता तथा मूल्य संवर्द्धन हेतु भारतीय साहित्य अपनी महती भूमिका निभा सकता है।

अतः इस आधुनिक युग में भारतीय साहित्य अपनी पारंपरिक मूल्यों की विरासत के कारण संपूर्ण विश्व के लिए एक मार्गदर्शक की भूमिका निभा सकता है।

संदर्भ सूची :-

1. प्रेमचंद-साहित्य का मूल्य।

2. महाभारत, शांतिपर्व, पृ. 220
3. सहृदय, जनवरी –मार्च, 2013, पृ. 16
4. धर्मवीर भारती–मानव मूल्य और साहित्य, पृ. 19
5. मृदुला गर्ग –उर्फ सैम, जिजीविषा, पृ. 110
6. डॉ. शम्भूनाथ सिंह –मूल्य और उपलब्धि, प्रकाशन–मोतीलाल बनारसीदास, पटना, प्रथम संस्करण 1960
7. डॉ. रामदरश मिश्र – हिंदी उपन्यास के सौ वर्ष, गिरनार प्रकाशन, मेहसाणा, प्रथम संस्करण 1984
8. डॉ. गणेशदास –स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में नारी के विविध रूप, अभय प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1992
9. गोपालराय–हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
10. चित्रा मुद्गल (साक्षात्कार) कौटुंबिक संवेदना को जड़ न होने दें, साक्षात्कारकर्ता, किरण श्रीवास्तव, पत्रिका, आजकल, मार्च, 2013
11. डॉ. पुष्पपाल सिंह– समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1986
12. रामचंद्र शुक्ल –हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002
13. रामस्वरूप चतुर्वेदी –समकालीन हिंदी साहित्य : विविध परिदृश्य, प्रतिभा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1995
14. डॉ. राजेन्द्र कुमार –स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में ग्राम्य जीवन और संस्कृति, परिमल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1998
15. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ –हिंदी कहानी के सौ वर्ष, मधुवन प्रकाशन, मथुरा, 2005
16. विनयमोहन सिंह –बीसवीं शताब्दी का हिंदी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, कानपुर, 1993
17. डॉ. सुमन मेहरोत्रा–हिंदी कहानियों में द्वन्द्व, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1975
18. डॉ. ज्ञान अस्थाना–हिंदी कथा साहित्य : समकालीन संदर्भ, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्रथम संस्करण, 1981



विश्व में हिन्दी भाषा का वैशिष्ट्य एवं भारतीय संस्कृति का स्वरूप

डॉ. रमेश चन्द्र टांक

सीनियर रिसर्च फ़ैलो, समाज शास्त्र विभाग, मो. सु. वि. वि. उदयपुर (राज.)

भूमिका :-

भाषा, भावों की अभिव्यक्ति के लिए मनुष्यकृत साधन है जिसका स्वाभाविक रूप से हुआ है। भाषा व्यक्तिगत अनुभव एवं विचारों को समाज तक संप्रेषित करने का माध्यम होता है। साहित्य सर्जन साहित्यकार के अन्तर्मन से शुरू होकर भाषा व शैली के माध्यम से प्रस्तुत रचना है। भावों एवं विचारों के आदान प्रदान के लिए मनुष्य जिन परम्परागत सार्थक व्यक्त ध्वनि संकेतो का प्रयोग करता है, सामान्यतः उसे हम भाषा कहते हैं, भाषा सम्प्रेषण का माध्यम है, सम्प्रेषण एवं सौन्दर्य भाषा के दो प्रमुख पक्ष हैं, साहित्य भाषा का सौन्दर्य पक्ष है। साहित्य का जन्म भाषा के गर्भ से ही होता है भाषा के सम्प्रेषण पक्ष के भी दो संदर्भ हैं, एक संदर्भ भाषा की संरचना और उसकी बनावट और दूसरा संदर्भ भाषा की प्रयुक्ति, प्रयोजन व प्रकार्य है।

हिन्दी बहुआयामी भाषा है हिन्दी अब साहित्य की भाषा न होकर रोजगार, व्यापार व वाणिज्य की भाषा बन गई है। हिन्दी भाषा ने अध्ययन-अध्यापन को एक नई दिशा प्रदान की है, हिन्दी भाषा वर्तमान में ज्ञान विज्ञान सूचना प्रौद्योगिकी एवं अन्य विभागों में निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रही है, शिक्षा और ज्ञान विज्ञान के प्रचार-प्रसार के साथ हिन्दी भाषा के नये, क्षेत्रों का विकास हुआ है, जिसमें प्रशासनिक हिन्दी, कामकाजी हिन्दी आदि है। आज हिन्दी भाषा, साहित्य के अतिरिक्त विज्ञान, विधि, बैंक, व्यापार, न्याय, सिनेमा, जनसंचार, कम्प्यूटर आदि विभिन्न क्षेत्रों में पर्दापण करके राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय संदर्भ से उपर उठकर वैश्विक संदर्भ में अपनी पहचान बनती जा रही है, हिन्दी भाषा विश्व की सबसे अधिक बोली, समझी जाने वाली भाषा में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। हिन्दी को भारतीय संविधान में राज भाषा के रूप में स्वीकृत है, किन्तु राजभाषा का गौरव हिन्दी को प्राप्त होने के बाद यह अन्य समुदायों को जोड़ने वाली भाषा बन गई, जो देश के सामाजिक व साहित्यिक रूप को साकार करती है।

भारतीय समाज के अध्ययन में हमें सनातन संस्कृति और उस मूल्य परम्परा की तरफ जाना होगा जिससे होकर हम यहां तक पहुंचे हैं हिन्दी भाषा संस्कृत भाषा वेद, पुराण इन तीनों से मिलकर बनी श्रृंखला ही आगे चलकर वर्चस्वादी सत्ता, संस्कृति, परम्परा और इतिहास का वाह का भारत में बनती हुई दिखाई देती है। हिन्दी भाषा निरन्तर वैश्विक संदर्भ में प्रगति करती हुई प्रतीत हो रही है।

‘हिन्दी भाषा’ का मूल ‘संस्कृत भाषा’ है। ‘हिन्दी भाषा’ संस्कृत की प्रपौत्री के रूप में गौरवान्वित है। संस्कृत से प्राकृत पुनश्च प्राकृत से अपभ्रंश और फिर अपभ्रंश से हिन्दी का प्राकट्य हुआ। हिन्दी खड़ी बोली, अवधी, ब्रज, बुन्देली, बिहारी, मैथिली आदि अन्य प्रादेशिक हिन्दी बोलियों शौरसेनी, मागधी, अर्ध-मागधी अपभ्रंशों से उत्पन्न हुई। आज खड़ी बोली ने प्रायः सम्पूर्ण भारत और विश्व में भी व्यवहार और साहित्य के क्षेत्र में अपनी धाक जमा ली है एवं श्रेष्ठ प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

हिंदी का स्वरूप :-

संस्कृत की वंशजा होने से हिन्दी में, संस्कृत देववाणी की दैवी-ध्वनियाँ हैं। संस्कृत-वर्णों की भाँति ही संस्कृत से प्राप्त हिन्दी वर्णों में वैज्ञानिकता है, एवमेव प्रत्येक ध्वनि या स्वरव्यञ्जन-वर्ण, यहाँ तक कि अनुस्वार भी अपना महत्त्वपूर्ण उपादेय एवं उपयोगी अर्थ संधारण करते हैं। हिन्दी की दूसरी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जैसा वर्णोच्चारण होता है, वैसा ही उसका लेखन होता है तथा जैसा लेखन होता है, तदनुसार ही उच्चारण भी होता है। इस प्रकार हिन्दी की वर्णमाला एवं शब्दावली भी वैज्ञानिक है और लिपि भी वैज्ञानिक है, जो देवनागरी या नागरी नाम से अभिहित है। हिन्दी भाषा की वैज्ञानिकता उसके ध्वनियन्त्र के माध्यम से उसके वर्णोच्चारण के स्थान-कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, नासिका, कण्ठतालु, कण्ठोष्ठ, दन्तोष्ठ, जिह्वामूल और मुख-नासिका से स्पष्ट हो जाती है।

हिन्दी भाषा का व्यापक क्षेत्र :-

सम्प्रति, ‘हिन्दी भाषा’ का विश्व भर में प्रचार-प्रसार है। यह भाषा साहित्य, ज्ञान, विज्ञान, चित्रपट, आकाशवाणी, दूरदर्शन, प्रौद्योगिकी, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र आदि सभी क्षेत्रों की उपयोगी एवं विभामयी भाषा बन चुकी है। आज विश्व की जनसंख्या लगभग सात अरब से अधिक ही प्रगण्य है। अष्टम विश्व-हिन्दी सम्मेलन न्यूयार्क में 13 जुलाई 2007 ई. को संपन्न हुआ था। उसमें विश्व की सात प्रमुख भाषाओं की सांख्यिकी स्थिति इस प्रकार प्रस्तुत की गई थी।¹

विश्व स्तर पर हिन्दी का आधिपत्य :-

विश्व में विश्व हिन्दी सम्मेलनों की संयोजना हिन्दी के समुत्कर्ष का ही द्योतक है। हिन्दी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह भारतीय संस्कृति ‘सत्यं शिवं सुन्दरम्’ का पर्याय सिद्ध हो चुकी है, अतएव इस पवित्र संस्कृति के आधान हेतु विश्व के लोगों को हिन्दी भाषा जानने की आकांक्षा है— ‘हिन्दी भाषा’ अपनी अद्वितीय एवं अतुलनीय जानकारी से विश्व को आकर्षित कर रही है। मूलशब्दों के विषय में हिन्दी और अंग्रेजी की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि अंग्रेजी में मूलशब्द मात्र ‘दस हजार’ है और हिन्दी के मूल शब्दों की संख्या ढाई लाख से अधिक है।²

भारतवर्ष में प्रायः दो सौ विश्वविद्यालय हैं। इनमें यान्त्रिक विश्वविद्यालयों को छोड़कर लगभग सभी कला एवं भाषा (लैंग्वेज) सम्बन्धी विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा का अध्ययन एवं अध्यापन कार्य सम्पन्न होता है। भारत में दो हिन्दी विश्वविद्यालय, एक वर्धा में और दूसरा भोपाल में प्रसिद्ध ही हैं।

विश्वस्तर पर दृष्टि-प्रक्षेप से स्पष्ट है कि आज विश्व के अधिकांश देशों में हिन्दी का पठन-पाठन हो रहा है। इस आधार पर हिन्दी की विकासोन्मुखी रचनात्मकता, वैचारिक श्रेष्ठता, गुणानुवाद एवं वैज्ञानिकता सिद्ध है। हिन्दी का रोजगारोन्मुखी निर्देशन भी है। देवनागरी लिपि भी हिन्दी के हित में एक सापेक्ष आधार है, जिससे

कम्प्यूटर जगत भी हिन्दी के आकर्षण को सम्बल प्रदान करता है।⁴

भारतीय संस्कृति की संरचना का स्वरूप :-

भारतीय संस्कृति के स्वरूप को समझने से पूर्व संस्कृति का सामान्य अर्थ समझना नितान्त अपेक्षित एवं अनिवार्य है। संस्कृति सामाजिक व्यवहार का एक प्रतीक है। प्रकृति का विकार विकृति है और प्रकृति का संस्कार संस्कृति। सम्यक् कृति का नाम संस्कृति है। प्रकृति और संस्कृति में मौलिक अन्तर है। मानव की जन्मजात अवस्था प्रकृति है और उसकी परिष्कृत व निखरी हुई अवस्था संस्कृति है। मानव प्रकृति में जब उदात्त तत्व का समावेश होने लगता है तो संस्कृति का निर्माण होता है। संस्कृति का सम्बन्ध मूल्यों से है और सभ्यता का सम्बन्ध उपयोगिता से। सुसंस्कृति उपयोगिता ही सर्वश्रेष्ठ होती है। सभ्यता वह है जो हमारे पास है, संस्कृति वह है जो हमारे अन्दर है। हमारे द्वारा अपने तन पर धारण किए हुए सुन्दर वस्त्र हमारी सभ्यता हैं और हमारे मन के करुणा, प्रेम, परोपकार, सत्यता आदि सद्गुण हमारी संस्कृति हैं। जितना हम प्रकृति से जुड़ते हैं, उतना ही हम संस्कृति से जुड़ते हैं और जितना हम संस्कृति से जुड़ते हैं, उतना ही हम अपनी अन्तरात्मा से जुड़ते हैं।

भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्त्व :-

प्रत्येक संस्कृति की मूल चेतना संस्कार की होती है, तथापि एक संस्कृति के तत्त्व किसी दूसरी संस्कृति के तत्त्वों के सर्वथा समरूप नहीं होते। एक संस्कृति की विशेषताएँ ठीक वही नहीं होतीं, जो किसी दूसरी संस्कृति की विशेषताएँ होती हैं। तत्त्वों या विशेषताओं की विभिन्नता ही सांस्कृतिक अनेकता को जन्म देती है और तात्त्विक भिन्नता ही वह आधार है जिसके कारण किसी एक संस्कृति को किसी अन्य संस्कृति से अलग पहचान पाना सम्भव हो पाता है। भारतीय संस्कृति के निम्नोक्त प्रमुख तत्त्व हैं जो इसे एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान कर अन्य संस्कृतियों से पृथक् करते हैं। भारतीय संस्कृति के स्वरूप को छः मुख्य भागों में बांटा गया जा सकता है।

1. आध्यात्मिकता की प्रधानता :-

धर्म संस्कृति का आवश्यक अंग है। धर्म के दो भाग हैं— आध्यात्मिकता (Spirituality) और कर्मकाण्ड अथवा बाह्याडम्बर (Ritualism)। आध्यात्मिकता तो सब धर्मों की एक जैसी है, लेकिन उनके बाह्याडम्बरों में अन्तर है। सब धर्मों ने अपने निजी प्रतीक चिह्न गढ़कर अपनी अलग अस्मिता व पहचान बना ली है। अब तो एक ही धर्म के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न सम्प्रदायों ने भी अपनी अलग पहचान बना ली है। उदाहरणार्थ, दक्षिण भारत में यदि कोई हिन्दू माथे पर लेटा हुआ चन्दन—तिलक लगाता है तो समझो वह शैव है और यदि सीधा खड़ा हुआ चन्दन—तिलक लगाता है तो समझो वह वैष्णव है। यद्यपि आध्यात्मिकता का न्यूनाधिक अंश प्रत्येक संस्कृति में निहित रहता है, परन्तु भारतीय संस्कृति का तो यह प्राण तत्त्व है। प्रारम्भ से लेकर आज पर्यन्त उसमें आध्यात्मिकता की प्रबलता रही है।

2. समन्वय की भावना :-

भारतीय संस्कृति समन्वय की साधिका है। वह देश, धर्म के आधार पर भेदभाव न करके सबके प्रति समभाव रखती है। अनेकता में एकता खोजना उसका लक्ष्य है। उदाहरणार्थ, सामने सौ व्यक्तियों की भीड़ खड़ी है जिसमें हिन्दू हैं, मुस्लिम हैं, पारसी हैं, ईसाई हैं। इस प्रकार इनमें अनेकता है। अब इस अनेकता में एकता खोजिए, एकसूत्रता खोजिए। 'इन सबका पिता एक ही ईश्वर है' — यह हई एकसूत्रता, जिससे इन सब लोगों को एकीकृत किया जा सकता है। इस प्रकार अनेकता में एकता की तलाश और स्थापना करना ही सत्य है।

युगों से भारतीय संस्कृति इसी सत्य की संवाहिका रही है। यदि भारत के प्रारम्भिक इतिहास को देखा जाये तो ज्ञात होगा कि यहाँ शक, हूण, मुगल आदि विभिन्न जातियाँ समय-समय पर आती रहीं। भारतीय संस्कृति ने इनमें से किसी को नकारा नहीं, बल्कि सभी को अपने विशाल हृदय में स्थान दिया। जो आक्रमणकारी जातियाँ शत्रु बनकर आई थीं, वे भी भारतीय संस्कृति में समाविष्ट होकर रह गईं।

3. सहिष्णुता की भावना :-

भारतीय संस्कृति का भव्य भवन सहिष्णुता की नींव पर आधारित है। सृष्टि-पालक विष्णु का सहिष्णु व्यवहार इसका प्रमाण है। भगवान् विष्णु जब क्षीरसागर में लक्ष्मी संग शय्या पर शयन कर रहे थे, तो वहाँ अचानक आए कुपित भृगु ऋषि ने उनके वक्ष पर पाद-प्रहार किया। तब भगवान् विष्णु ने प्रतिशोध में भृगु ऋषि की गर्दन नहीं पकड़ी, बल्कि ऋषि के पैर को हाथों में लेकर सहलाते हुए कहा कि 'ऋषिवर! आपके पैर कोमल हैं और मेरा वक्ष वज्र के समान कठोर। कहीं आपको चोट तो नहीं लगी?' देव-परम्परा से प्राप्त यह अनन्य सहिष्णुता ही हमारी संस्कृति की विलक्षणता है।

4. प्रकृति की आराधना :-

प्रकृति व पर्यावरण को भारतीय संस्कृति में विशेष महत्ता प्रदान की गई है। नदी, पर्वत, वृक्ष, वनस्पति सब उसके लिए श्रद्धेय व पूजनीय हैं। हमारी संस्कृति मानती है कि पवन पिता, धरती माता और पानी मनुष्य का गुरु है। नदियाँ हमारे खेतों को सींचती हैं, अपने साथ बहाकर लाई हुई मिट्टी से भूमि को उर्वर बनाती हैं— अतएव गंगा, यमुना, कावेरी, गोदावरी आदि अनेक नदियों की पूजा इस देश में प्राचीन काल से होती आई है।

5. प्रेम का अनन्त विस्तार :-

भारतीय संस्कृति प्रेम की गरिमा व महिमा से ओत-प्रोत है और प्रेम ही उसके पृष्ठ का अन्तिम शब्द है। प्राणिमात्र से प्रीति करना उसकी मूल भावना है। प्रेम-प्रसूत अहिंसा की भावना भी इस देश में प्राचीनकाल से रही है। यहाँ अहिंसा को तन तक सीमित नहीं रखा गया है, बल्कि मन और वचन की अहिंसा पर भी बल दिया गया है। सृष्टि के समस्त प्राणियों में एक ही परमात्मा की ज्योति जगती है और पेट की भूख भी सबकी एक जैसी होती है, फिर किसी प्राणी को कष्ट देना मानो परमात्मा को ही कष्ट देना है।

6. चार पुरुषार्थ :-

शास्त्रों में धर्म के प्रमुखतः तीन प्रकार माने गए हैं—कामार्थक, प्रवर्तक व निवर्तक। 'कामार्थक धर्म' काम और अर्थ की प्राप्ति को ही जीवन का सर्वस्व समझता है। कामार्थक धर्म के अनुयायी वर्तमान जीवन में प्राप्त होने वाले सुख के अतिरिक्त अन्य किसी सुख की कल्पना से न तो प्रेरित होते हैं और न उसके साधनों के अन्वेषण में समय नष्ट करना उचित समझते हैं। वर्तमान जीवन का सुख-भोग करना ही इनका उद्देश्य होता है और इसी ध्येय की प्राप्ति के लिए वे सब साधन जुटाते हैं। वे मानते हैं कि हम जो कुछ हैं, वह इसी जन्म तक है और मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म नहीं होता। पुनर्जन्म का अर्थ अधिक से अधिक हमारी सन्तति का चलते रहना है। अतः हम जो भी अच्छा-बुरा करेंगे, उसका फल हम इसी जन्म में भोग लेंगे, उसका फल भोगने के लिए इस जन्म के पश्चात् हमारा पुनर्जन्म नहीं होगा। बहुत हुआ तो हमारे कर्मों का फल हमारी सन्तान या हमारे समाज को भोगना पड़ सकता है। इस प्रकार की विचारधारा रखने वाले लोगों को हमारे प्राचीन शास्त्रों में अनात्मवादी, नास्तिक अथवा चार्वाक कहा गया है।

निष्कर्ष :-

हिन्दी भाषा आज विश्वभाषाओं में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाने में सफल है, किन्तु अपने ही प्रभवदेश भारत में यह गौरवपूर्ण 'राष्ट्रभाषा' के पद की प्राप्ति से वंचित है। यह हमारे देश और देशवासियों के लिये लज्जास्पद बात है। यथार्थ तो यह है कि यदि राजनीति आड़े न आये तो जन-जन के मन में रम जाने वाली यह परम हितैषिणी 'हिन्दी' राष्ट्रभाषा के पद पर आशु प्रतिष्ठित होकर राजभाषा। (राजकार्य की भाषा) के रूप में प्रत्यक्ष प्रदर्शित होगी और अतिशय लोक कल्याणकारिणी बनेगी।

आज विश्वपटल पर हिन्दी ने अपना मनोरम रूप प्रदर्शित किया है। यह हिन्दी की अपनी सामर्थ्य है। हिन्दी की सबसे बड़ी विशेषता इसकी जाति, वर्ग, धर्म, सम्प्रदाय एवं स्थान आदि से पूर्ण निरपेक्षता है।

निष्कर्ष रूप में भारतीय संस्कृति के विशिष्ट स्वरूप के प्रभाव का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है कि विदेशों पर भी भारतीय संस्कृति का प्रभाव आधुनिक काल में भी लक्षित होता है आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रति सर्वाधिक श्रद्धा व्यक्त करने वाला देश जर्मनी है। जर्मन के विद्वान गोटफ्रीड हर्टर ने जब प्रथम बार कालिदास के नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम् का जार्ज फास्टरकृत अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा तो उसने इस कृति के सम्बन्ध में अपना मतव्यक्त करते हुए कहा कि मानव मस्तिष्क की इससे अधिक आनन्दप्रद और कोई कल्पना मुझे नहीं मिली, भारतीय संस्कृति की विशिष्टता में उन्होंने कहा पूर्व का एक विकसित पुष्प सबसे पहला और सुन्दरता में बेनोड नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम् है। ऐसी वस्तु कोई दो-तीन हजार वर्षों में एक बार दिखाई देती है। यह है भारतीय संस्कृति की विशेषता जिसकी विदेशी विद्वानों ने भी मुक्तकंठ प्रशंसा करके भारतीय संस्कृति के गौरव को अति समृद्ध किया है।

भारतीय संस्कृति तथ्य की सूचक है कि नैतिकता के सम्बन्ध में भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण अनुदारवादी अथवा रूढ़िवादी कभी नहीं रहा। उसकी नैतिकता वैयक्तिक न होकर समाजोन्मुखी थी और उसमें सबके लिए समदृष्टि थी। प्रत्येक शिशु, चाहे वह उचित-अनुचित किसी भी सम्बन्ध स्वरूप उत्पन्न हुआ हो, परमात्मा का अंश समझा जाता था। भले ही सामाजिक नियमों का उल्लंघन करके भी किसी बच्चे को क्यों न उत्पन्न किया गया हो, तो भी समाज उस बच्चे को यथायोग्य स्थान देना तथा उसकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता था। उस युग में माता-पिता की गलती अथवा अपराध के लिए आने वाले बच्चे को दण्ड नहीं दिया जाता था। परन्तु परम सभ्यता के आधुनिक युग में तो तथाकथित रूप से अवैध कहे जाने वाले कितने ही कानून व पौनर्भव शिशुओं का निदर्यतापूर्वक वध कर दिया जाता है। यद्यपि भारतीय संस्कृति के तत्त्वों का एक ही स्थान पर समग्र विवेचन कर पाना न तो सरल है और न सम्भव, तथापि उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम भारतीय संस्कृति की एक स्पष्ट तस्वीर अपने मन-मस्तिष्क में निर्मित कर सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ :-

1. विश्व स्तर पर हिन्दी – सं. डॉ. मफतलाल पटेल।
2. हिन्दी विश्व काव्याञ्जलि (द्वितीय खण्ड) सं. डॉ. राजेन्द्रनाथ मेहरोत्रा।
3. बैवसाइट (विश्व हिन्दी सम्मेलन, दशम)।
4. 'कश्फ', भारतीय पत्रकारिता अंक, मई 2015, सम्पादक डॉ. विनोद तनेजा।

5. हिन्दी विश्व गौरव ग्रन्थ (प्रथम खण्ड), सं. डॉ. राजेन्द्र नाथ मेहरोत्रा।
6. हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य सं. – डॉ. महेश दिवाकर।
7. बढती हिन्दी – बट्टी नारायण तिवारी।
8. डॉ० उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन, पृष्ठ ८६-९०
9. There can be no great and complete culture without some element of asceticism in it (for asceticism means the self-denial and self-conquest by which man represses his lower impulses and rises to greater heights of his nature. Indian asceticism is not a mournful gospel of sorrow or a painful mortification of the flesh in morbid penance, but a noble effort towards a higher joy and an absolute possession of the spirit. A great joy of selfconquest, a still joy of inner peace and the forceful joy of a supreme self-exceeding are at the heart of its experience. Sri Aurobindo, The Foundations of Indian Culture, Page 74-75
10. महादेवी वर्मा, भारतीय संस्कृति के स्वर, पृष्ठ ३८
11. India has evolved a composite entity that has received and absorbed people of many races, many cultures, many creeds down the ages. No invader has been rejected, no enemy exterminated. Place has been found for all. Enemies have been turned into friends. Those who came to exploit, to loot and kill remained to pray. - Annada Shankar Ray, An Outline of Indian Culture, Page-9
12. साने गुरुजी (हिन्दी अनुवादक—बाबूराव जोशी), भारतीय संस्कृति, पृष्ठ १६७
13. साने गुरुजी (हिन्दी अनुवादक—बाबूराव जोशी), भारतीय संस्कृति, पृष्ठ १६६

मो. 9461503411

पत्र व्यवहार का पता –

115/147 गायत्री नगर, सैक्टर नम्बर 5 सरकारी स्कूल के पिछे वाली गली,

हिरण मगरी उदयपुर (राज.) 313002

EamilID :rctak25@gmail.com



वैदिक कालीन महिला शिक्षा

रामसेवक राम भगत

सहायक प्राध्यापक (इतिहास),

शासकीय टी. सी. एल. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जांजगीर, जिला – जांजगीर चाम्पा (छ.ग.)

सारांश :-

वैदिक काल में धार्मिक क्षेत्र में नारी को उच्च स्थान प्राप्त था। वैदिक काल में धार्मिक क्रियाओं में यज्ञ को सर्वाधिक महत्व दिया जाता था, पत्नी के अभाव में पति को यज्ञाधिकारी नहीं माना जाता था।

वृहदारण्यक उपनिषद से ज्ञात होता है कि उस समय महिलाएं दार्शनिक सभाओं में भाग लेती थीं।

वेदों में उल्लेखित कुछ मंत्र इस बात को रेखांकित करते हैं कि कुमारियों के लिए शिक्षा अपरिहार्य एवं महत्वपूर्ण मानी जाती थी। स्त्रियों को लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की शिक्षाएं दी जाती थीं। सह शिक्षा को बुरा नहीं समझा जाता था। गोमिल गृहसूत्र में कहा गया है कि अशिक्षित पत्नी यज्ञ करने में समर्थ नहीं होती थी। संगीत शिक्षा पर जोर दिया जाता था।

वैदिक शिक्षा पद्धति एवं स्वतंत्र तथा समतामूलक समाज का ही प्रभाव था कि वैदिक काल में कई विदुषी ऋचाओं की रचना की गयी थी। वैदिक सूक्तों की रचना करने वाली महिलाओं की संख्या 20 से अधिक थी। ब्रम्हवादिनी ममता दीर्घतमा ऋषि की माता थी। ये महान विदुषी और ब्रम्हज्ञान संपन्न थीं। अग्नि के उद्देश्य से किया हुआ इनका स्तुती पाठ ऋग्वेद संहिता के प्रथम मंडल के दशम सूक्त की ऋचा में मिलता है। अत्रि महर्षि के वंश में उत्पन्न विश्ववारा ने ऋग्वेद के पांचवें मंडल के अठाइसवें सूक्त में वर्णित 6 ऋचाओं की रचना की थी। ब्रम्हवादिनी अपाला ने ऋग्वेद के अष्टम मंडल के 91वें सूक्त की एक से सात तक की ऋचाएं संकलित कीं। ब्रम्हवादिनी घोषा ने ब्रम्हचारिणी कन्या के समस्त कर्त्तव्यों का उल्लेख दो सूक्तों में किया है। ब्रम्हवादिनी सूर्या ने ऋग्वेद के विवाह संबंधी सूक्त की रचना की। ऋग्वेद संहिता के दशम मंडल के 125 वें सूक्त में “देवी सूक्त” के नाम से 8 मंत्र ब्रम्हवादिनी वाक्र के रचे हुए हैं। चण्डीपाठ के साथ इन 8 मंत्रों के पाठ का बड़ा महात्म्य माना जाता है।

डॉ. ए. एस. अलतेकर – वैदिक युग से लेकर आज तक भारत में शिक्षा का मूल तात्पर्य यह रहा है कि शिक्षा प्रकाश का वह स्रोत है, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ प्रदर्शन करती है।”

- मुख्य शब्द** - वैदिक कालीन महिला शिक्षा, वैदिक काल में महिला की स्थिति।
अध्ययन का उद्देश्य - वैदिक कालीन महिला शिक्षा का अध्ययन।
अध्ययन विधि - द्वितीयक समंको पर आधारित।

प्रस्तावना :-

शिक्षा किसी भी समाज के सर्वांगीण विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपागम होती है। किसी भी वर्ग, समुदाय, समाज, राष्ट्र के विकास की सबसे पहली पीढ़ी शिक्षा ही होती है। प्रत्येक समाज की संरचना महिला तथा पुरुष के सामूहिक दायित्व पर आधारित होती है। शिक्षा एवं महिला के अन्तर्सम्बन्धों पर दृष्टि डालने से यह प्रतीत होता है कि महिलाएं आज भी निचले पायदान पर खड़ी हैं।

महिलाओं की जागरूकता के लिए महिला शिक्षा को दो भागों में वर्गीकृत किया जाए – प्रारंभिक साक्षरता, कार्यात्मक साक्षरता। प्रारंभिक साक्षरता कक्षा 10 तक है इसमें बाद प्रयोजनमूलक शिक्षा आती है।

एक शिक्षित माँ अपने बच्चों में शिक्षा और संस्कार तो देती ही है उनके स्वास्थ्य का भी बेहतर ध्यान रखती है। शिक्षित महिला घर परिवार का प्रबंधन अधिक कुशलतापूर्वक कर सकती है। अपने अधिकारों और दायित्वों को बेहतर ढंग से समझती है। समाज में व्याप्त बुराईयों के विरोध में खड़ी हो सकती है।

महिलाएं समाज के सांस्कृतिक चेहरे का दर्पण होती हैं। वैदिक काल में महिलाओं को आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठा प्राप्त थी। वैदिक अवधारणा के स्त्री शक्ति सिद्धांत के अनुसार महिलाओं को देवी रूप में पूजा शुरू हुई। महिलाओं को यज्ञों में सम्मिलित होने, वेदों का पाठ करने, तथा शिक्षा हासिल करने की आजादी थी।

“यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।”

वैदिक कालीन महिला शिक्षा :-

वैदिक समाज में पुत्र के समान ही पुत्री को स्नेह दुलार एवं आदर सम्मान दिया जाता था। परिवार में कन्याएँ अपने आदर्श गुणों को विकसित करती हुई प्रायः माता के अनुशासन में रहती थी। वैदिक कन्याएँ कृषि कार्य में भी पिता के साथ सहयोग करती थी। अपाला को अपने पिता के खेतों में अच्छी फसल के लिए इन्द्र से याचना करते हुए चित्रित किया गया है।

बालिकाओं के लिए बालकों की ही तरह शिक्षा ग्रहण करना आवश्यक था। बालिकाएँ ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई विविध विधाओं में पारंगत होती थी। आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र में बृहस्पति, भुवना, अपर्णा, एकपर्णा, मैना, धारिणी, आदि कन्याओं का उल्लेख आता है। ये सभी ब्रह्मवादिनी थी। ऐसी कन्याओं का भी उल्लेख आता है जिन्होंने तपस्या के बल पर अभीष्ट वर की प्राप्ति भी की। जैसे—उमा धर्मव्रता आदि। गृह में निवास करती हुई कन्याएँ गृहस्थ शिक्षा से अवगत हुआ करती थी।

शिक्षा के साथ वे नाना प्रकार के गायन, वादन एवं नृत्य जैसी ललित कलाओं में प्रवीण होती थी। कन्याओं को पाक शास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। युवा होने पर ही कन्या का विवाह होता था। पत्नी के रूप में भी महिला को उच्च स्थान प्राप्त था। वेदों में नारी को घर की रानी कहा गया है।

इच्छा और योग्यता के अनुसार शिक्षा प्राप्ति के लिए श्रमण क्रमणिका में उल्लेखित प्राचीन परम्परा के अनुसार ऋग्वेद की रचना में 200 महिलाओं का योगदान है। शकुन्तला राव शास्त्री ने इसे तीन वर्गों में विभाजित किया है – महिला ऋषि द्वारा लिखे गए श्लोक, आंशिक रूप से महिला ऋषि द्वारा लिखे गए श्लोक, महिला ऋषिकाओं को समर्पित श्लोक। ऋग्वेद के दशम मंडल के 39 एवं 40 सूक्त में ऋषिका घोषा, रोमशा, विश्ववारा, इन्द्राणी शची और अपाला थी।

वैदिक युग में महिलाएँ यज्ञोपवीत धारण कर वेदाध्ययन एवं सायं-प्रातः होम आदि कर्म करती थी। शतपथ ब्राम्हण में व्रतोपनयन का उल्लेख है। हरित संहिता के अनुसार वैदिक काल में शिक्षा ग्रहण करने वाली दो प्रकार की कन्याएँ होती थी – ब्रम्हवादिनी और सद्योवात। सद्योवात 15 या 16 वर्ष की उम्र तक जब तक उनका विवाह नहीं हो जाता था, तब तक अध्ययन करती थी। इन्हें प्रार्थना एवं यज्ञों के लिए आवश्यक महत्वपूर्ण वैदिक मंत्र पढ़ाये जाते थे तथा संगीत एवं नृत्य की भी शिक्षा दी जाती थी।

महावीर और गौतम बुद्ध ने संघ में नारियों के प्रवेश की अनुमति दी थी। ये धर्म और दर्शन के मनन के लिए ब्रम्हचर्य व्रत का पालन करती थी। जैन और बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि कुछ भिक्षुणियों ने साहित्य के विकास और शिक्षा में अपूर्व योगदान दिया जिनमें अशोक की पुत्री संघमित्रा प्रमुख थी। जैन साहित्य में जयंती का उल्लेख है। जो धर्म और दर्शन के ज्ञान की प्यास में अविवाहित रही, फिर भिक्षुणी हो गई।

महिलाओं के लिए किसी प्रकार की पाठशाला का पृथक प्रबंध किया गया हो, ऐसा वर्णन प्राप्त नहीं होता। जिन कन्याओं को गुरुकुल में अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होता था वे पुरुषों के साथ ही अध्ययन करती थी।

उत्तररामचरित में वाल्मीकि के आश्रम में आत्रेयी अध्ययन कर रही थी। भवभूति ने मालती माधव (प्रथमांक) में कामन्दकी की के गुरुकुल में अध्ययन करने का वर्णन किया है। अधिकांश कन्याओं की शिक्षा गृह पर ही होती थी।

पूर्व काल में जब बड़ी संख्या में महिलाएँ उच्च शिक्षा ग्रहण कर रही थी और अपना अमूल्य योगदान देकर साहित्य के गौरव को बढ़ा रही थी, उस समय उनमें से कुछ अध्यापन कार्य भी अवश्य ही करती होगी। संस्कृत साहित्य में उपाध्याया एवं उपाध्यायानी शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। उपाध्याया उन विदुषी नारियों के लिए प्रयुक्त हुआ है जो अध्यापन कार्य करती थी।

शंकराचार्य से हार जाने के फलस्वरूप अपने पति मंडल मिश्र के सन्यास ले लेने पर उभयभारती श्रृंगिरी में अध्यापन कार्य करने लगी थी। कहा जाता है कि भारती द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के कारण ही श्रृंगेरी और द्वारिका के मठों का शिष्य संप्रदाय “भारती” नाम से अभिहित हुआ।

संभवतः जब समाज में योग्य उपाध्याएँ प्राप्त हो जाती होगी तब उन्हीं के संरक्षण में कन्याओं को भेजा जाता होगा, किन्तु इनके उपलब्ध न होने पर बाध्य होकर आचार्यों के पास पुत्रियों को अध्ययनार्थ भेजना पड़ता होगा। मनु भी कन्याओं को पुरुष शिक्षकों के संरक्षण में रखकर लड़कों के साथ अध्ययन करने के लिए घर से बाहर भेजने के पक्ष में नहीं थे।

महिला शिक्षा का प्रथम संगठित प्रयास करने का श्रेय बौद्धों को प्राप्त है। विहारों में ये महिलाएँ सह शिक्षा ही ग्रहण करती थी।

वेदों में शिक्षा को आश्रम व्यवस्था एवं सोलह संस्कारों के साथ जोड़ा गया है शिक्षा उपनयन संस्कार के साथ आरंभ होकर समावर्तन संस्कार के साथ समाप्त होती थी। उपनयन संस्कार शिक्षारंभ का प्रतीक थी। इस संस्कार के बाद शिष्य और शिष्याएँ वेद और शास्त्रों का अध्ययन करते थे। बालकों के समान ही बालिकाओं का भी यज्ञोपवीत होता था। वे भी मेखला धारण करती थी। बालिकाओं को ललित कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। बालिकाएँ भी ब्रम्हचारिणी रहती थी। बालिकाएँ स्नातक होकर कुछ विवाह कर लेती थी, उन्हें सद्योद्वाहा” कहते

थे। कुछ आजन्म ब्रम्ह चारिणी रहती थी, उन्हे "ब्रम्हवादिनी" कहा गया है। ऐसी नारियों में गार्गी, मैत्रेयी, उल्लेखनीय है।

निष्कर्ष :-

वैदिक कालीन स्त्री के विदुषिता का उदाहरण विद्वता भरे शास्त्रार्थ में दिखाई देता है। ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी का मानव जीवन की दशा एवं भौतिक जीवन की सीमा पर बेहद सुन्दर गुढ़ दार्शनिक संवाद ने नोबल विजेता प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन को विकास को देखने का एक भिन्न दृष्टिकोण दिया। के.एम. पणिक्कर – "महिला शिक्षा ने विद्रोह की उस कुल्हाड़ी की धार तेज कर दी है जिससे हिन्दू सामाजिक जीवन की जंगली झाड़ियो को साफ करना संभव हो पाया है।

वैदिक कालीन समाज में जब महिला की परिस्थिति पर गौर करते हैं तो ज्ञात होता है कि परम्परागत रूप से भारत के इतिहास में विश्व के अन्य भू-भागों की तुलना में महिलाओं की परिस्थिति उच्च थी। भारतीय धर्म को छोड़कर विश्व का कोई भी धर्म महिला को इतनी अधिक प्रधानता नहीं देता।

वैदिक कालीन समाज एक प्रगतिशील, आशावादी, समाज था। जहाँ महिला पुरुष को समान स्थान प्राप्त था। वैदिक कालीन प्रगतिशीलता के लिए उन्नतिशील शिक्षा व्यवस्था उत्तरदायी थी। वेदों में कहा गया है – "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् शिक्षा व्यक्ति को उदार बनाती है। संभवतः यही कारण था कि वैदिक काल में बाल विवाह, पर्दा प्रथा एवं सती प्रथा जैसी बुराईयाँ प्रचलित नहीं थी। वे उत्सवों तथा यज्ञों में भाग लेती थी। उन्हे पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी।

डॉ. राधाकृष्णन – शिक्षा व्यक्ति और समाज के सर्वतोन्मुखी विकास की सशक्त प्रक्रिया है।

संस्कृति विकास के श्रेष्ठ काल वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति सुखद रही। शिक्षा और आत्मविकास के मार्ग महिलाओं के लिए खुले थे। शिक्षा और ज्ञान के क्षेत्र में बराबर की सहभागिता से महिलाओं का पूर्ण विकास इस युग में हुआ।

संदर्भ :-

From Internet :

1. वैदिक कालीन शिक्षा – स्त्री तथा महिला सशक्तिकरण।
2. भारतीय शिक्षा व्यवस्था – वैदिक काल से आधुनिक काल तक।
3. भारत में महिलाओं की वर्तमान स्थिति की वैदिक तथा मध्यकाल की स्थिति की तुलनात्मक सामाजिक विवचेना।
4. शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा।
5. महिला शिक्षा।
6. स्त्री शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य।
7. महिला साक्षरता दर में कमी और हमारे समाज पर इसका प्रभाव।
8. नारी शिक्षा।
9. नारी शिक्षा क्यों है जरूरी?

10. प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा ।
11. प्राचीन काल में स्त्रियों की दशा ।
12. स्त्री शिक्षा ।
13. स्त्री शिक्षा की भूमिका ।
14. स्त्री शिक्षा का महत्व – क्यों है बढ़ते भारत को स्त्री शिक्षा की जरूरत ।
15. स्त्री शिक्षा ।
16. नारी समाज का अतीत, वर्तमान और भविष्य ।
17. भारतीय महिलाओं की दिशा एवं दशा ।
18. महिला शिक्षा ।
19. शिक्षा की वर्तमान स्थिति, परिवर्तन की दिशा व उसमें हमारी भूमिका ।
20. भारत में महिलाओं की स्थिति – कल और आज ।
21. भारत में नारी शिक्षा ।
22. वैदिक युग की नारी को इक्कीसवीं सदी में पुनः प्रतिष्ठित किया जायेगा ।
23. वैदिक एवं आर्य महाकाव्य युग में स्त्रियों की शिक्षा ।
24. वेदों में नारी का महत्व ।
25. देश की तरक्की में साक्षर नारी का योगदान ।



राष्ट्रीय नई शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. रश्मी मालगी

प्लॉट नं. 9, सिद्धारुड कॉलोनी, (शिवालय के पीछे), शिवगिरी, धारवाड़ 580007 (कर्नाटक)

इस विदेशी भाषा के माध्यम ने लड़की के दिमाग को शिथिल कर दिया है और उनकी शक्तियों पर अनावश्यक जोर डाला उन्हें मौलिक विचारों व कार्यों के लिए अयोग्य कर दिया और अपनी शिक्षा का सार अपने परिवार वालों तथा जनता तक पहुँचाने में असमर्थ बना दिया है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली का यह सबसे बड़ा दुखांत दृश्य है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम ने हमारी देशी-भाषाओं की प्रगति को रोक दिया है। यदि मेरे हाथ में मनमानी करने की सत्ता होती तो मैं आज से ही विदेशी भाषा के द्वारा हमारे छात्र व छात्राओं की पढ़ाई बंद कर देता ओर सारे शिक्षकों व अध्यापकों में पाठ्यपुस्तकों की तैयार का इंतजार न करता।

वे तो परिवर्तन के पीछे चली आएंगी। यह खराबी तो ऐसी है, जिसके लिए तुरंत इलाज की जरूरत है। गांधी जी ने भारत के बच्चों की शिक्षा के बारे में जो चिंताएँ सितंबर 1921 ई. में व्यक्त की थी। उसका मूल भाव सौ साल बाद आई इस नई शिक्षा नीति में फलीभूत होता दिखाई देता है। इस नीति के तहत साफ कहा गया है कि “शिक्षा से न केवल साक्षरता व संख्या ज्ञान जैसी बुनियादी समस्याओं के साथ-साथ ‘उच्चतर स्तर’ की तार्किक और समस्या-समाधान संबंधी संज्ञात्मक क्षमताओं का विकास होना चाहिए बल्कि नैतिक सामाजिक व भावनात्मक स्तर पर भी व्यक्ति का विकास होना आवश्यक है।” इस नीति में व्यक्ति के जिस विकास की बात की गई है, वह भाषा के बिना संभव नहीं है। भाषा केवल संवाद मात्र नहीं है बल्कि एक सशक्त व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने का माध्यम नहीं है। ऐसे में हमेशा यह सवाल उठता है कि आखिर बच्चों की शिक्षा का माध्यम क्या हो? वह भी तब जब अगले दशक में भारत दुनिया का सबसे युवा जनसंख्या वाला देश होगा व इन युवाओं को उच्चतर गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा।

इसी सवाल से जुड़ा एक और महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि जिन युवाओं की बात नई शिक्षा नीति में की गई है, वे स्वप्न किस भाषा में देखते हैं? कई लोगों को यह प्रश्न अटपटा लग सकता है, लेकिन यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि भारत ही नहीं बल्कि संसार का कोई भी व्यक्ति स्वप्न अपनी मातृभाषा में देखता है, भले ही उसकी शिक्षा का माध्यम कोई भी हो। हम जानते हैं कि अपनी भाषा में अपनी भावनाएँ व्यक्त करने में हम सक्षम व सुगम होते हैं।

हमें ऐसी शिक्षा चाहिए, जिससे चरित्र का निर्माण हो, मस्तिष्क की शक्ति में वृद्धि हो, बुद्धि का विस्तार हो और जिससे व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो सके। सिस्टर निवेदिता ने एक बार कहा था कि “यदि श्री रामकृष्ण परमहंस उस परंपरा के प्रतीक हैं जिस पर भारत ने पिछले पांच हजार सालों में चिंतन किया है तो

स्वामी विवेकानंद उस सोच के प्रतीक हैं जिस पर भारत अगले पंद्रह सौ सालों तक चिंतन करेगा।² यदि हम विवेकानंद के दर्शन और विचारों को समग्रता में समझे तो पाएंगे कि यह टिप्पणी नई शिक्षा नीति के संदर्भ में भी सटीक बैठती है। जब हम मूल्य परक शिक्षा पर जोर देते हैं, तो हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि 'मूल्य क्या है?' वस्तुतः 'मूल्य' एक बहु आयामी शब्द है, जिसके भीतर बहुत सारे नैतिक संप्रदाय समाहित हैं जैसे ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, कर्तव्य, आत्मसम्मान, सभी के प्रति करुणा, मनुष्यता का उत्थान, महिलाओं व वंचितों के प्रति विशेष आदरभाव आदि। एक मूल्य आधारित शिक्षा में ये सभी तत्व समाहित होते हैं। इनके अभाव में वह केवल कुछ सूचनाओं का संग्रहण, शुष्क विचार मात्र रह जाएगी। इसलिए शुरु में ही यह जानना जरूरी है कि शिक्षा 'क्या नहीं है?' उसके बाद ही हम 'शिक्षा क्या है?' समझ पाएंगे। शिकागों, धर्म संसद से वापस लौटने के बाद अपने एक व्याख्यान 'द फ्यूचर ऑफ इंडिया' में स्वामी विवेकानंद जी कहते हैं, "शिक्षा सूचनाओं का संग्रहण मात्र नहीं, जो अपने मस्तिष्क में ठूस दी रहती है। ...यदि अपने पांच विचारों को पढ़कर अपने जीवन-चरित्र में उतार लिया तो आप उस व्यक्ति से ज्यादा शिक्षित हैं, जिससे पूरी लाइब्रेरी रट रखी हो। यथा चंदन के बोझ से लदे गधे को केवल उसका भार पता होता है, न कि मूल्य। यदि शिक्षा सूचनाओं का संग्रहण है, तो पुस्तकालय दुनिया के सबसे बड़े मनीषी होते और विश्वकोश सबसे बड़े ऋषि।"³

ये दानों अभिव्यक्तियाँ बताती हैं कि शिक्षा क्या नहीं है। दुर्भाग्य से इन्हें ही शिक्षा का असली अर्थ मान लिया गया। ऐसे में हमारे लिए शिक्षा का सही अर्थ जानना बेहद जरूरी है और यह भी हमें "किसी प्रकार की शिक्षा जरूरत है।"

शिक्षा के संदर्भ में यह विभेदीकरण किसी भी सभ्यसमाज के लिए एक लांछन की तरह है। इसीलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पहली पंक्ति में ही कहा गया है। "शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायसंगत व न्यायपूर्ण समाज व राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए मूलभूत विकास है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच प्रदान करना, सामाजिक विकास आर्थिक तथा वैश्विक मंच पर भारत को नेतृत्व प्रदान करने की कुंज है। सार्वभौमिक उच्च स्तरीय शिक्षा वह माध्यम है। जिससे देश की समृद्ध प्रतिभा व संसाधनों का सर्वोत्तम विकास व सवर्धन-व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व की भलाई के लिए किया जा सकती है।"⁴ स्पष्ट है कि शिक्षा कुछ विशिष्ट लोगों की निजी स्वार्थ पूर्ति तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए अपितु इसका उद्देश्य जनकल्याण होना चाहिए। इस विचारों को संग्रह मात्र नहीं अपितु जीवंत भी होना चाहिए, जिससे हर व्यक्ति जुड़ाव हो। निश्चित रूप से बौद्धिकता और अच्छी नौकरी शिक्षा के महत्वपूर्ण पक्ष हैं लेकिन ये अनिवार्य पक्ष नहीं हैं। इसलिए इनकी प्राप्ति मनुष्यता व नैतिक मूल्यों की कीमत पर नहीं होनी चाहिए। मानवता का दर्जा हमेशा निजी धन-अर्जन व बौद्धिकता से ऊपर रहेगा। इतिहास साक्षी है जिन लोगों ने भी राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विकास के नए प्रतिमान पढ़े हैं। वे बौद्धिक रूप से भले ही औसत रहे हों लेकिन नैतिक मूल्य व सत्यनिष्ठा की दृष्टि से उच्च कोटि के इन्सान थे। अल्बर्ट आइंस्टीन ने जोर देकर कहा था, "अधिकांश लोग कहते हैं कि महान वैज्ञानिक बुद्धि से बनते हैं। प्रसिद्ध मानव परोपकारी व व्यवसायी वारेन बुफे ने इस संबंध में बहुत महत्वपूर्ण बात कही है।"⁵

"किसी व्यक्ति में तीन चीजें देखें – बुद्धि, ऊर्जा व सत्यनिष्ठा। इसलिए सच्ची शिक्षा का अर्थ मानव जीवन का सर्वांगिण-शारीरिक, मानसिक, नैतिक व आध्यात्मिक विकास है एक आदर्श शिक्षा व्यवस्था इनमें से

किसी की भी उपेक्षा नहीं कर सकती। एक बेहतरीन सामंजस्य की प्रस्तावना करती है। आधुनिक मनोविज्ञान भी इस तथ्य को मानता है कि मनुष्य एक समग्र प्राणी है, उसके जीवन में किसी एक पक्ष पर जरूरत से ज्यादा ध्यान देने व दूसरे की उपेक्षा करने का उसका व्यक्तित्व विखंडित हो जाता है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का जोर विद्यार्थियों के समग्र विकास पर है कि बचपन से लेकर उच्च तर शिक्षा तक सीखने के प्रत्येक चरण में कौशल व मूल्यों का एक निश्चित प्रक्रम किया जाए।⁶ यहाँ एक स्पष्टीकरण आवश्यक है। किसी को यह गलतफहमी नहीं होनी चाहिए कि विवेकानंद वैज्ञानिक व तकनीकी शिक्षा के विरोधी थे और मूल्य आधारित शिक्षा के लिए उन्होंने इनकी तिलांजली दे दी। “वे वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान के महत्व को बखूबी जानते थे। उनकी चिंता केवल इस बात को लेकर थी कि इन्हें पाने के प्रयास में मनुष्य कहीं मानवीय अस्मिता को ही न खो दे।”⁷ यदि हम आज के शैक्षणिक संस्थानों पर नजर डालें तो पाएंगे की वे बहुत बड़ी संख में सॉफ्टवेअर इंजीनियर, अधिकारी, डॉक्टर, प्रोफेसर, वकील, फिल्मकार, खिलाडी, खेल-विशेषज्ञ, सीए, सीएस, मीडिया-विशेषज्ञ आदि पैदा कर रही हैं लेकिन विडंबना देखिए की अच्छी आर्थिक स्थिति होने के बावजूद इनमें से ज्यादातर लोक अपने गलत जीवन मूल्य, उपभोक्तावादी जीवन शैली के कारण एक मानसिक त्रासदी से गुजर रही है। वे अपनी योग्यता के कारण अपने-अपने क्षेत्र में अच्छे सिद्ध हो रहे हैं। लेकिन क्या वे अच्छे इन्सान हैं? यही वह प्रश्न है कि जिसका जवाब हमारे शैक्षणिक संस्थानों, नीति-निर्माताओं व परिवार के सदस्यों को सोचना है।

आज के शिक्षा तंत्र की सबसे बड़ी समस्या इसका मनुष्य के बौद्धिक विकास पर अत्यधिक जोर देना है, यहाँ तर्क की मानवीय मूल्यों की कीमत पर। हम इस बात को नहीं समझ पाए व न ही दूसरों को समझा पाए कि एक ‘अच्छा मनुष्य’ होना एक ‘शिक्षित व्यक्ति’ होने की तुलना में ज्यादा आवश्यक है। अशिक्षित होना, एक व्यक्ति विशेष के लिए समस्या हो सकती है। किंतु अनैतिक होना तो पूरी तरह दुनिया के लिए एक त्रासदी है। आज का हर समझदार व्यक्ति शिक्षा के इस विपथ गमन से बहुत चिंतित है।

आधुनिक विज्ञान व तकनीक के विकास ने ज्यादातर मनुष्यों को संवेदन शून्य बना दिया। उपभोक्तावाद के अति-लोभ ने अधिकता है। व्यक्ति की आजीविका पर स्थित है।

ज्ञान आधारित राष्ट्र बनाने का कार्य केवल सरकार का नहीं है बल्कि हर भारतीय का भी है जो अपनी मातृभूमि भारत को विश्वपटल के उच्च शिखर पर देखना चाहते हैं।

देश के शिक्षण संस्थानों में पिछले कई वर्षों से उथल-पुथल मची हुई है। जब से भारतीय लोकतंत्र ने उदारवादी व बाजारवाद को अपनाया तभी से इस बेचैनी का बीजारोपण प्रारंभ किया। सर्व शिक्षा शोध व विचार विमर्श को बंद करना चाहते हैं।

संदर्भ :-

1. मोहनदास करमचंद गांधी, हिंदी नवजीवन राष्ट्रीय शिक्षा, 2 सितंबर 1921, पृ. सं. 21-22
2. स्वामी विवेकानंद, हिंदी नवजीवन, पृ.सं. 22
3. स्वामी विवेकानंद, द कंग्लीट वर्क ऑफ स्वामी विवेकानंद खण्ड-3, पृ.सं. 116
4. नेशनल एज्युकेशन पॉलीसी 2020, मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन, गर्वमेंट ऑफ इंडिया, पृ.सं. 3
5. सी डब्ल्यू एस. वी. खण्ड-2, पृ. सं. 145 अद्वैत आश्रम कोलकत्ता 1996
6. वही, पृ. सं. 156
7. द स्टोरी ऑफ माइ एक्सपेरीमेंटस विथ ट्रुथ, पृ.सं. 373-374

मोबाईल नं. 8217784916



महाभारतकालीन धर्म की वर्तमान प्रासंगिकता

डॉ. रेखा गुप्ता

सीनियर रिसर्च फेलो, ICSSR, मो. ला. सु. वि. उदयपुर।

‘धर्म विहीनस्य जीवनं निष्प्रयोजनम्।’ अर्थात् धर्म के बिना मानव जीवन निष्प्रयोजन है। जगत् के सभी भौतिक पदार्थ नाशवान हैं तथा एकमात्र धर्म ही सनातन, शाश्वत व चिर स्थायी है। इसीलिये धर्म को ‘शाश्वत सत्य’ की संज्ञा दी गई है। धर्म ही समस्त संसार पर शासन करता है। धर्म एक विलक्षण तत्त्व है, जो समस्त विश्व का आधार व नींव है। यही मनुष्य को दुष्कर्म से निवृत्त कर सत्कर्म में प्रवृत्त कराता है। धर्म एक ऐसी आचार व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति के नियत विश्वास, आस्था व मौलिक धारणाएँ समाहित है। इसी से प्रेरित होकर व्यक्ति परिवार और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का पालन करता है।

भारतीय संस्कृति में धर्म शब्द की अभिव्यक्ति अत्यन्त व्यापक रूप में हुई है। धर्म शब्द “धृ” (धारणे) धातु में “मन्” प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है— ‘धारण करना’ अर्थात् जो लोकों को धारण करता है। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद मुनि के अनुसार— “यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः।”² अर्थात् जिससे इहलोक व परलोक में परम कल्याण की प्राप्ति हो, वही धर्म है। मीमांसक जैमिनी के अनुसार— “चोदनालक्षणार्थो धर्मः।”³ अर्थात् वेद प्रयुक्त अनुशासनों के अनुसार चलना ही धर्म है। मनुस्मृति में धर्म की परिभाषा करते हुये सदाचार को ही परम धर्म माना गया है—“आचारः परमोधर्मः।”⁴ वेद, स्मृति, सदाचार तथा आत्मा को प्रिय लगने वाला सन्तोष ये चार साक्षात् धर्म के लक्षण है।⁵ पुराणों के अनुसार “अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अकाम, अक्रोध, अलोभ तथा सभी प्राणियों के प्रति हित की भावना” ये सभी वर्णों के धर्म है।⁶ श्रीमद्भगवद्गीता में धृति से धर्म को धारण करना बताया गया है।⁷ महाभारत के अनुसार “प्राणियों के अभ्युदय व कल्याण का उद्देश्य ही धर्म है।”⁸

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर धर्म से अभिप्राय ऐसे कल्याणकारी तत्त्व से है जो ‘स्व’ और ‘पर’ का भेद मिटाकर मानव मात्र के आत्मिक व पारलौकिक उत्कर्ष का आधायक है। महाभारत में धर्म के विभिन्न स्वरूपों यथा—सनातन धर्म, व्यक्ति धर्म, वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, आपद्धर्म, राजधर्म आदिका सम्यक् चित्रण हुआ है। महाभारत में धर्म से आशय ‘कर्त्तव्य पालन’ है। कर्त्तव्य के द्वारा ही परम कल्याण की प्राप्ति होती है, जो धर्म का सार है। महाभारत में वर्णित धर्म के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन इस प्रकार है—

शाश्वत व सनातन धर्म :-

महाभारत के अनुसार, “अहिंसा, सत्य, अक्रोध, धन को बाँटकर भोगना, क्षमाशील होना, अपनी ही पत्नी के गर्भ से सन्तान उत्पन्न करना, पवित्र रहना, द्रोह न करना, सरलता, सेवकों का भरण—पोषण करना, ये सभी वर्णों के शाश्वत व सनातन धर्म है।”⁹ किन्तु किसी की रक्षा के लिये यदि असत्य बोलना पड़े तो वह सत्य से

श्रेष्ठ है। प्राण संकट के समय, विवाह के अवसर पर, परायेधन तथा धर्म की रक्षा के लिये असत्य बोलना पाप नहीं है।¹⁰ धर्म की गति सूक्ष्म है। अतः धर्म के लिये झूठ बोलने पर मनुष्य असत्य भाषण के दोष का भागी नहीं होता।

आपद्धर्म :-

महाभारत में आपद्धर्म का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। अनेक बार मनुष्य के समक्ष ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि वह अपने सामान्य धर्म का पालन नहीं कर सकता है। ऐसी विशेष परिस्थितियों में जो धर्म पालन करने योग्य है, वह आपद्धर्म कहलाता है। वैदिक साहित्य के अनुसार व्यक्ति को 'सुनीति' धर्म से अथवा 'वामनीति' आपद्धर्म से ही सदैव कार्य सिद्ध करना चाहिये।¹¹ देशकालानुसार कभी धर्म अधर्म तो कभी अधर्म धर्म बन जाता है। इसलिये अवसरानुकूल व्यवहार करना चाहिये। यही आपद्धर्म का रहस्य और औचित्य है। आपद्धर्म अथवा संकटकालीन धर्म का मूल आधार प्राण रक्षा था। अज्ञातवास के समय पाण्डवों के द्वारा राजा विराट के यहाँ गुप्त वेश बना कर रहना उनका आपद्धर्म ही था।¹² पाण्डवों ने अपने क्षत्रियत्व का त्याग कर पत्नी द्रौपदी सहित राजा विराट का किंकरत्व स्वीकार किया। यह आपद्धर्म सामान्य धर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ था क्योंकि इसका पालन आत्मरक्षा के लिये किया गया था। पाण्डव यदि वेश बदलकर राजा विराट के यहाँ नहीं रहते तो उनका अज्ञातवास पूर्ण नहीं हो पाता और उन्हें पुनः बारह वर्ष का वनवास भोगना पड़ता। अतः प्राणों की रक्षा चाहे स्वयं की हो अथवा किसी अन्य की, सदैव सर्वोपरि है। प्राणों की रक्षा के लिये यदि धर्म का उल्लंघन भी करना पड़े तो वह अधर्म नहीं माना जाता, क्योंकि प्राण रहने पर धर्म का पालन पुनः किया जा सकता है।

वैयक्तिक धर्म :-

वैयक्तिक उत्थान के निमित्त 'धृति, दम, शौच, धी एवं विद्या'¹³ मनु द्वारा उद्धृत पांच लक्षण ऐसे हैं, जिनका व्यक्तिगत जीवन में पालन करने से व्यक्ति उत्तरोत्तर विकास करता हुआ अपने परम आदर्श को प्राप्त होता है। अतः इसे वैयक्तिक धर्म कहा जाता है। महाभारत में पितामह भीष्म अपने जीवन में अनेकों बार प्राण प्रण से वैयक्तिक धर्म का निर्वाह करते दिखाई देते हैं। पिता के सुख के लिए भीष्म की आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा¹⁴ और इसकी रक्षा के लिये आजीवन विवाह न करना, अपने गुरु परशुराम की आज्ञा का उल्लंघन कर उनसे युद्ध के लिये तत्पर हो जाना¹⁵ युद्धभूमि में किसी नारी पर शस्त्र प्रहार न करना¹⁶ आदि भीष्म के वैयक्तिक धर्म हैं। जिनका उन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी पालन किया क्योंकि उनकी दृष्टि में व्यक्ति धर्म अन्य सभी धर्मों से श्रेष्ठ है।

वर्ण धर्म :-

महाभारत में मनुष्य के कर्तव्य व आचार के रूप में धर्म की व्याख्या की गई है। सामाजिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य के कर्तव्य के रूप में जो उचित हो, वही उसका धर्म है। धर्म की इस व्यावहारिक व्यवस्था के लिये धर्मशास्त्रों में समाज का विभाजन गुण एवं कर्मों के विभाग पूर्वक चार वर्णों में किया गया है— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र।¹⁷ जिसका आधार कर्म ही था। कोई भी व्यक्ति अपने कर्म और स्वभाव के अनुसार किसी भी वर्ण को ग्रहण कर सकता था। वर्ण धर्म के अंतर्गत महाभारत में चारों वर्णों के धर्म का पृथक उल्लेख है। यथा स्वाध्याय, सरलता, इन्द्रिय निग्रह, वेदों का अध्ययन तथा अध्यापनये ब्राह्मण के सनातन धर्म कहे गये हैं।¹⁸

युद्ध में अपने शरीर की आहुति देना, समस्त प्राणियों पर दया करना, लोक व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करना, प्रजा की रक्षा करना, दुखी मनुष्यों के दुःख दूर करना क्षत्रिय धर्म है।¹⁹ इसके साथ राजधर्म को भी क्षत्रिय धर्म का ही विशेष रूप कहा गया है। क्षत्रियों का सामान्य धर्मपालन राजधर्म पर ही अवलम्बित है। राजधर्म को नौका के समान बताते हुये भीष्म कहते हैं कि राजधर्म रूपी नौका धर्म रूपी समुद्र में स्थित है। सत्वगुण ही उस नौका का संचालन करने वाला बल है। धर्मशास्त्र उसे बाँधने वाली रस्सी है, त्याग रूपी वायु का सहारा पाकर वह मार्ग पर शीघ्रतापूर्वक चलती है, यह नाव ही राजा को संसार सागर से पार कर देती है।²⁰ राजा का जीवन प्रजा के सुख के लिये होता है। जब तक राजा स्वयं त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत नहीं करेगा। तब तक उसे प्रजा के सुख-दुःख का अनुभव नहीं हो सकता है। इसलिये राजा के लिये त्यागमय जीवन का निर्देश किया गया है। सामान्य प्रजाजन अपने गृहस्थ जीवन के अन्तर्गत सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत कर जिस पुण्य को प्राप्त करते हैं, राजा उसी पुण्य को तत्त्वज्ञान, सर्वत्याग, इन्द्रियसंयम तथा प्राणिमात्र पर दया करके प्राप्त कर लेता है। राजधर्म का पालन अत्यन्त कठिन होता है। इसलिये अच्छे कर्मों के द्वारा एक राजा को उत्तम आश्रमों के फल की प्राप्ति हो जाती है।

महाभारत में वैश्यों का प्रमुख धर्म 'वाणिज्य' माना गया है। कृषि, गो रक्षा तथा व्यापार द्वारा धनोपार्जन करते हुये धन की रक्षा करना, ब्राह्मणों और क्षत्रियों का प्रिय करते हुये धर्मशील एवं पुण्यात्मा होकर गृहस्थाश्रम में निवास करना ही वैश्यों का परम धर्म है।²¹ शूद्रों के धर्म का उल्लेख करते हुए महाभारत में कहा गया है कि प्रजापति ने तीनों वर्णों के सेवक के रूप में शूद्रों की सृष्टि की है। अतः शूद्र के लिये तीनों वर्णों की सेवा ही शास्त्रविहित कर्म है। सदैव उद्योगी तथा आलस्य रहित होकर अपने कल्याण की चेष्टा करे। यही शूद्रों का प्राचीन धर्म है।²²

आश्रम धर्म :-

वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय संस्कृति की अन्यतम विशेषता है। समाज को सुव्यवस्थित व संगठित करने के लिए वर्णव्यवस्था एवं व्यक्ति के जीवन को संयमित, नियमित तथा गतिशील बनाने हेतु आश्रम व्यवस्था का प्रारंभ हुआ। जीवन की एकरूपता में आयु की अनुकूलता और विविधता के सौन्दर्य का सन्निवेश करने के लिये ही भारतीय धर्मशास्त्रों में मनुष्य के जीवन को चार भागों में बाँट कर चार आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम स्वीकार किये गये।

ब्रह्मचर्याश्रम जीवन का प्रथम आश्रम है। इसे जीवन रूपी प्रासाद की नींव कहा जा सकता है। यह जीवन का विकास काल है। ब्रह्मचर्य की साधना द्वारा उपार्जित स्वास्थ्य, शक्ति और सदाचार पर प्रतिष्ठित यौवन ही सफल और सार्थक होता है। इसीलिये ब्रह्मचर्य को गृहस्थ का द्वार ही नहीं वरन् उसकी कृतार्थता की भूमिका माना गया है। भैक्षाचर्या, नित्य यज्ञोपवीत धारण किये रहना, धर्म का रहस्य सुनना, वेदोक्त व्रत का पालन करना, होम और गुरुसेवा करना, यह ब्रह्मचर्याश्रम का धर्म है।²³ भारतीय धर्मशास्त्रों में गृहस्थाश्रम को अत्यन्त श्रेष्ठ तथा अन्य सभी आश्रमों का उपजीव्य माना गया है। गृहस्थ पुरुष को ऋत्विज, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, शरणागत, बालक, वृद्ध, रोगी, वैद्य, सगे-सम्बन्धी, माता-पिता, कुटुम्ब की स्त्री, भाई, पत्नी, पुत्र तथा सेवक समूह के साथ कभी भी विवाद नहीं करना चाहिए। जो इन सबके साथ कलह त्याग देता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।²⁴ परोपकार भी गृहस्थाश्रम में पालनीय उत्तम धर्म है। परोपकार से गृहस्थ को शान्ति प्राप्त होती है

और अखण्ड पुण्य मिलता है। इस प्रकार गृहस्थाश्रम में रहकर सब धर्मों का पालन हो जाता है। इसलिये इसे स्वर्ग तक पहुँचाने वाला कल्याण का मार्ग कहा गया है।

गृहस्थाश्रम में स्त्री का प्रमुख स्थान होता है। स्त्री के बिना गृहस्थ धर्मों का निर्वाह नहीं हो सकता है। स्त्रियों का महत्त्व प्रदर्शित करते हुये महाभारत में कहा गया है कि धर्म, काम तथा अर्थ सम्बन्धी कार्य, शुश्रूषा तथा वंशपरम्परा की रक्षा, पितरों का तथा अपना धर्म पत्नी के ही आश्रित है।²⁵ स्त्रियों को मन, वाणी, शरीर और चेष्टाओं के द्वारा निरन्तर पति की सेवा करनी चाहिए। पति सेवा के साथ-साथ सास-ससुर की सेवा तथा बड़ों का आदर करना भी स्त्रियों का कर्तव्य बताया गया है। सदा सास-ससुर की आज्ञा में रहने वाली, देवता, पितर तथा ब्राह्मणों की पूजा में सलग्न रहने वाली स्त्री ही पतिव्रता है।²⁶

वानप्रस्थ का अर्थ 'वन की ओर प्रस्थान' करना है। भारतीय आचार शास्त्र के अनुसार गृहस्थ जीवन के प्रपंचों में ही सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करना उचित नहीं है, मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति के लिये प्रयासरत रहना चाहिये क्योंकि जीवन का प्रत्येक कर्तव्य पूर्ण करने में ही कृतकृत्यता है। भोग और कर्तव्य दोनों की एक सीमित अवधि होती है। अतएव गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों को पूर्ण करने के बाद मनुष्य वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करता है ताकि गृह व नगर से दूर वन में सरल व सात्विक जीवन व्यतीत कर आध्यात्मिक उन्नति हेतु प्रत्यनशील हो सके। वानप्रस्थाश्रम के धर्म के विषय में उल्लेख है कि "वानप्रस्थी पुरुषनियम के साथ रहे, नियमानुकूल भोजन करे। दिन के छठे भाग अर्थात् तीसरे पहर में एक बार अन्न ग्रहण करे और प्रमाद से बचा रहे। गृहस्थाश्रम की ही भाँति अग्निहोत्र, गो सेवा तथा यज्ञ के सम्पूर्ण अंगों का सम्पादन करना वानप्रस्थ का धर्म है।"²⁷

स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही केवल भोगवाद का विरोध किया गया है। मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला जीवन का अन्तिम आश्रम संन्यासाश्रम है। इस आश्रम में वे ही मनुष्य प्रवेश करते हैं, जिनकी रुचि अध्यात्म की ओर होती है। संन्यासी के धर्म बताते हुये महाभारत में कहा गया है कि "संन्यासी आत्मा का ही यजन करे तथा आत्मा में ही रत होकर आत्मा में ही क्रीड़ा करे। सब प्रकार से आत्मा का ही आश्रय ले। अग्निहोत्र की अग्नियों को आत्मा में ही आरोपित करके सम्पूर्ण संग्रह-परिग्रह को त्याग दे।"²⁸ तो वह सच्चा संन्यासी मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी है।

इस प्रकार महाभारत में वर्णित धर्म के विभिन्न स्वरूपों का अवलोकन करने के पश्चात् निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महाभारत में धर्म व नैतिकता का परस्पर सम्बन्ध है। धर्म के विपरीत अनैतिक या दोषपूर्ण कर्म अधर्म माना गया है। एक ही क्रिया देश और काल के भेद से धर्म या अधर्म बन जाती है। चोरी करना, झूठ बोलना एवं हिंसा करना आदि अधर्म भी विशेष स्थिति में धर्म माने गये हैं। महाभारत में वर्णित धर्म ईश्वर या परमात्मा की पूजा नहीं है। वरन् दैनन्दिन जीवन में उपयोगी हमारे सभी कर्मों की नैतिक व्याख्या है। महाभारत में धर्म के जिस रूप की प्रधानता है, वह मुख्यतः मानवीय व सामाजिक है। यह मानवीयता सत्य, अहिंसा, दया, शौच, करुणा, स्नेह, त्याग आदि उदार गुणों में अभिव्यक्त होती है। धर्म मानव की पशुता का निरोधक तथा मानवता का पोषक है। धर्म से प्रेरित होकर व्यक्ति अपने जीवन, समाज व समस्त विश्व को स्थायित्व प्रदान करता है। इसीलिये पुरुषार्थ चतुष्टय में सर्वप्रथम धर्म को ही स्थान दिया गया है। धर्म से ही अन्य तीनों पुरुषार्थों की सिद्धि होती है।

महाभारत के अनुसार धर्म का तात्पर्य ईश्वर या अध्यात्मवाद की संकुचित परिधि नहीं है अपितु सम्पूर्ण

चराचर जगत् में व्याप्त प्राणिमात्र विशेष कर मनुष्य के कर्तव्या कर्तव्य के निर्धारण की नैतिक मर्यादा है। जिससे जगत् में सौहार्द एवं सामंजस्य का मधुर वातावरण बने एवं किसी का अहित न हो। धर्म को पूजा-पाठ, कर्म-काण्ड, देवस्तुति तक रखने का प्रयास अनुचित एवं पाखंडपूर्ण है। महाभारत में धर्म के जितने गुण बताये गये हैं, उनमें स्वार्थ, अंहकार तथा पाखण्ड के लिये कहीं भी अवकाश नहीं है। ये सभी गुण दूसरों के लिये उदारता की भावना से ओतप्रोत हैं। 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को अपने समान मानकर उसके प्रति उदार व्यवहार करना ही धर्म का मर्म है।

सन्दर्भ :-

1. ध्रियते लोकः अनेन, धरति लोकं वा इति धर्मः। वृहत् संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ 528
2. वैशेषिक दर्शनसूत्र, 1.1.2
3. पूर्वमीमांसा सूत्र, 1.1.2
4. मनुस्मृति, 1.108
5. वेदरू स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ वही, 2.12
6. अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ श्रीमद्भागवतपुराण, 11.17.24
7. धृत्या यया धारयते। श्रीमद्भगवद्गीता, 18.33
8. महाभारत, शांतिपर्व 109.10
9. वही, 60.7-8
10. वही, 109.19, कर्णपर्व 69.33
11. भवासुनीतिरुत वामनीतिरूप ऋग्वेद, 6.47.7
12. महाभारत, विराटपर्व 1.8
13. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ मनुस्मृति 6.92
14. महाभारत, आदिपर्व 100.96
15. वही, उद्योगपर्व 178.49
16. वही, 192.66
17. चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। श्रीमद्भगवद्गीता 4.13
18. महाभारत, वनपर्व 206.34
19. वही, 64.27
20. वही, शांतिपर्व 66.37
21. वही, उद्योगपर्व 29.25
22. वही, शान्तिपर्व 60.28, उद्योगपर्व 29.26
23. वही, अनुशासनपर्व 141.35।
24. वही, 243-14&16
25. वही, आश्वमेधिकपर्व, 90.47
26. वही, अनुशासनपर्व 123.
27. वही, शान्ति पर्व 244.6
28. वही, 244.24

मो. 9929528884

10rg19750407@gmail.com

9- साकेत, धुलकोट चौराहा।

बोहरा गणेश रोड, उदयपुर (राजस्थान) 313001



संगम Impact Factor : 4.553

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037
SANGAM

विश्लेषण समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक

Vol. 11, Issue 10(1)
पृष्ठ : 123-125

वैश्विक परिपेक्ष्य में भारतीय साहित्य और नई शिक्षा नीति

सन्दीप कौर

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज, यमुनानगर।

भारत एक बहुभाषी एवं बहु सांस्कृतिक देश है। विविधता में एकता के सूत्र में बंधा यह देश अनेक राज्यों, जातियों, भाषाओं और संस्कृतियों को स्वयं में समाहित किए हुए निरंतर अपनी यात्रा पर गतिशील है। इस विकास यात्रा में भारत अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव के दौरों से गुजरा है। भाषा, संस्कृति का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण उपादान होती हैं इसीलिए जहाँ-जहाँ संस्कृति पुष्पित एवं पल्लवित होती है, वहाँ-वहाँ स्वतः ही भाषा का भी विकास होता चला जाता है। आज के वैश्विक युग में जब भारतीय समाज एवं संस्कृति ने अपनी वैश्विक पहचान निर्मित की है तो साथ ही भारतीय भाषाओं का भी वैश्वीकरण हो गया है। अतः भारतीय संस्कृति के वैश्विक स्वरूप का विश्लेषण करने के लिए भारतीय भाषाओं की वैश्विक पहुँच और परिधि का विश्लेषण किया जाना भी अनिवार्य प्रतीत होता है।

इक्कीसवीं सदी विज्ञान एवं तकनीक की सदी है। विज्ञान की प्रगति ने ऐसे अनेक कारक उत्पन्न किए हैं, जिनसे मनुष्य का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बसना आम बात हो गई है। आज का मनुष्य बेहतर अवसरों की चाह में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बस रहा है। फलस्वरूप प्रवास की प्रक्रिया में तेजी आई है। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् से शिक्षा, रोजगार एवं अन्य कारणों से विश्व के विकसित देशों ब्रिटेन, कनाडा, अमेरिका इत्यादि में बहुत तेजी से प्रवास हुआ है। बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में सूचना क्रांति के विस्फोट ने प्रवास की इस गति को और अधिक विस्तार दिया है। जिसके कारण विश्व के अधिकांश देशों में भारतीय तकनीकी पेशेवरों, चिकित्सकों इत्यादि के रूप में भारतीयों की एक बहुत बड़ी जनसंख्या विदेशों में जाकर बस गई। भारत से प्रवास का यह तीसरा और वर्तमान चरण पूर्व के प्रवासों से बहुत भिन्न और व्यापक है। यही कारण है कि इसकी वैश्विक गूँज भी सर्वत्र सुनाई पड़ रही है।

भारतीय भाषा विशेषकर हिंदी की वैश्विक स्वीकार्यता के पीछे भारत में हिंदी भाषा के क्रियान्वयन एवं विकास के लिए स्थापित संस्थाओं, समितियों यथा केंद्रीय हिंदी निदेशालय, आगरा, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा इत्यादि के द्वारा विदेशी छात्रों के लिए हिंदी भाषा के प्रशिक्षण के लिए संचालित पाठ्यक्रमों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ये सभी संस्थान मिलकर प्रतिवर्ष सैकड़ों विदेशी छात्रों को हिंदी भाषा में पारंगत करके विश्व मंच पर हिंदी के वैश्विक दूत तैयार करते हैं। जो कि अपने-अपने देशों में हिंदी और भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में हिंदी भाषा की वैश्विक परिधि का निर्माण कर रहे हैं।

वैश्विक परिदृश्य में भारतीय साहित्य के बढ़ते वर्चस्व के पीछे का एक बड़ा कारण भारतीय संस्कृति के

प्रति विदेशियों का अनुराग भी हैं। वे भारतीय समाज एवं संस्कृति को और अधिक नजदीक से जानने एवं समझने के लिए यहाँ की भाषा को सीखना चाहते हैं। एक अनुमान के मुताबिक संपूर्ण विश्व में लगभग 150 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी तथा भारतीय साहित्य का अध्ययन, अध्यापन किया जा रहा है। भारतीय साहित्य के इस वैश्विक विस्तार एवं स्वीकार्यता के लिए यह अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है।

भारतीय साहित्य का वैश्विक स्वरूप और नई शिक्षा नीति :-

भाषा, राष्ट्र का प्राणाधार होती है। वह उस राष्ट्र का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से प्रतिनिधित्व ही नहीं करती अपितु उसकी वाणी बनकर परस्पर सह-संबंध स्थापित करती है। इस तरह से देखा जाए तो गतिशील भाषा ही राष्ट्र की जीवंतता का प्रमाण होती है। जिस प्रकार राष्ट्र अपनी वैश्विक पहचान हेतु भाषाओं के अंतःसंबंध पर निर्भर होते हैं ठीक उसी प्रकार भाषाएँ भी अपनी गतिशीलता एवं विस्तार हेतु समाज पर ही आश्रित होती हैं। इस तरह इन दोनों की एक दूसरे पर यही निर्भरता दीया और बाती के समान हैं। दीये यानी समाज में रहकर ही बाती (भाषा) प्रज्वलित होती रहती है, उसी प्रकार भाषा (बाती) के बिना खाली दिया भी महत्त्वहीन ही है। अतः परस्पर एक-दूसरे के विकास और विस्तार के लिए इन दोनों का एक दूसरे के प्रति ईमानदार और सचेत होना अनिवार्य है। दुर्भाग्य से भारतीय समाज अपनी भाषा और बोलियों के प्रति सचेत नहीं रहा है। जिसके कारण हमारी सैकड़ों भाषाएँ और उनका साहित्य विलुप्त हो गया है। साहित्य के अस्तित्व पर आए इस विकट संकट से निपटने के लिए उस राष्ट्र की भाषाई नीतियों एवं नीतिकारों का दूरगामी और दूरदर्शी होना बहुत आवश्यक है। वर्ष 2020 में आई नई शिक्षा नीति इस दूरदर्शी सोच की परिणिति है, जिसमें भारतीय साहित्य के अस्तित्व पर आए संकटों पर चिंतन-मनन करते हुए भाषाओं के विकास और गतिशीलता हेतु विस्तृत एवं व्यापक कार्ययोजनाओं का प्रारूप तैयार किया गया है। नई शिक्षा नीति 2020 के अध्याय 22 में भारतीय साहित्य, भाषाओं, कला एवं संस्कृति से संबंधित प्रावधानों को समायोजित किया गया है, जिनमें से भाषाई विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रावधान निम्नलिखित हैं :-

1. भारत की नई शिक्षा नीति (2020) में प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षण हेतु इसी त्रि-भाषाई सूत्र को दृढ़ता से पालन करने की बात कही गई है। इसमें एक भारतीय भाषा साहित्यिक हिन्दी के साथ-साथ विदेशी भाषा अंग्रेजी तथा स्थानीय भाषा या बोली में शिक्षण की व्यवस्था का प्रावधान किया गया है। इस तरह नई शिक्षा नीति भारत की मुख्य भाषा साहित्यिक हिन्दी के साथ-साथ अन्य स्थानीय भाषाओं/बोलियों के संवर्धन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण मानी जाएगी।

2. नई शिक्षा नीति (2020) के अध्याय 22 के उपअध्याय 6 में भारतीय संविधान में स्वीकृत 22 भाषाओं के साथ-साथ अन्य भाषाओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए इन सभी भाषाओं से संबंधित साहित्य तथा अन्य सामग्री को लिखित रूप में संग्रहित करने की अनुशंसा की गई है। इसके साथ ही इन भाषा एवं बोलियों के शब्दकोशों का निर्माण, इनके अन्य भाषाओं में अनुवाद तथा वेबसाइट निर्माण जैसे अनेक कार्यों के क्रियान्वयन के लिए प्रावधान निर्मित किए गए हैं, जिनके अनुपालन के द्वारा इन सभी भाषाओं के संरक्षण एवं संवर्धन में काफी तेजी आएगी।

3. नई शिक्षा नीति (2020) के अध्याय 22 के उपअध्याय 7 में साहित्यिक भाषा शिक्षण के महत्त्व को स्वीकार करके, इस दिशा में कार्य करने का सुझाव दिया गया है। साहित्यिक भाषा शिक्षण को सरल बनाकर उसे और

अधिक व्यापकता प्रदान की जा सकती है।

4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) के अध्याय 22 के उपअध्याय 9 में उच्चतर शिक्षा में पूर्व प्रचलित मानदंडों को और अधिक सशक्त बनाने हेतु नए पाठ्यक्रमों का निर्माण उनका शिक्षण एवं संकाय निर्माण पर बल दिया गया है।

5. भारतीय साहित्य तथा भाषाओं के वैश्विक परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से नई शिक्षा नीति (2020) के अध्याय 22 का उपअध्याय 14 बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें भारतीय भाषाओं की वैश्विक पहुँच हेतु भारतीय एवं अन्य विदेशी भाषाओं के साहित्य का अनुवाद एवं विवेचना संबंधित कार्यों को और अधिक विस्तार देने की आवश्यकता पर बल दिया गया।

6. नई शिक्षा नीति के अध्याय 22 का उपअध्याय 16 भारतीय साहित्य व भाषाओं और संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन की दिशा में मील के पत्थर का कार्य करेगा। उक्त उपअध्याय में भारतीय भाषाओं और प्राचीन साहित्य का अध्ययन, अध्यापन करने वाले संस्थानों को और अधिक विस्तार करने, पांडुलिपियों को खोजने, संग्रहित करने तथा अनुवाद द्वारा सुरक्षित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया जाएगा।

7. नई शिक्षा नीति के अध्याय 22 का उपअध्याय 18 भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में स्वीकृत 22 भाषाओं के विकास एवं विस्तार से संबंधित है। इसमें संविधान द्वारा स्वीकृत भाषा की एक अकादमी की स्थापना का प्रावधान दिया गया है, जिसमें उस भाषा के साहित्य से जुड़े विद्वान और लोगों को सम्मिलित किया जाएगा।

8. नई शिक्षा नीति के अध्याय 22 के अंतिम उपअध्याय 20 में भारतीय भाषाओं, साहित्य, कलाओं तथा संस्कृति के अध्ययन के लिए विशेष छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने की अनुशंसा की गई है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) इसी उद्देश्य की पूर्ति का सकारात्मक प्रयास हैं। जिसमें भारतीय समाज एवं संस्कृति के सभी पक्षों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। हालाँकि यह शिक्षा नीति ऐसी पहली शिक्षा नीति है जिसके मानकों का निर्धारण भारत के जातीय चरित्र एवं भाषाई अस्मिता को ध्यान में रखकर किया गया है। भारतीय साहित्य, संस्कारों, मूल्यों एवं अन्य उपयोगी उपादानों को स्वयं में समायोजित किए हुए; यह शिक्षा नीति भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, भाषाई और ऐतिहासिक सरोकारों का विश्व मंच पर प्रतिनिधित्व करती है, जिसकी स्वीकार्यता एवं विस्तार का माध्यम हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ व उनका साहित्य बना है। अतः भारतीय साहित्य व भाषाओं की यह वैश्विक स्वीकार्यता भारत को विश्व से एवं विश्व को भारत से जोड़ने हेतु समन्वय सेतु का निर्माण कर रही हैं, जिसमें हिंदी भाषा व उसका साहित्य इन सभी भाषाओं का सिरमौर बनकर उभर रहा है।

संदर्भ सामग्री :-

1. नई शिक्षा नीति (2020), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
2. गोयनका, कमल किशोर, प्रवासी साहित्य, यश प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. प्रेमचंद, विश्व में हिंदी, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।

पता— सन्दीप कौर, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज, यमुनानगर।



वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय शिक्षा संस्कृति और साहित्य

डॉ. शक्ति

सहायक प्रवक्ता, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज, संतपुरा, यमुनानगर।

साहित्यस्य भावं साहित्यम् कथन के अनुसार सत्साहित्य में सर्वजनहिताय और सर्वजन सुखाय का भाव होना अवश्यंभावी है। विधाता की सृष्टि में मानवीय गुण धर्म के आधार पर मनुष्य को अभ्युदय का अवसर मिला है। मनुष्य सर्वाधिक चिंतनशील प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के कारण अपनी उन्नति के साथ सामाजिक प्रगति का चिन्तन स्वाभाविक है। सृष्टि में उत्थान पतन, अनुकूल प्रतिकूल, हर्ष विषाद, दिन-रात का चक्र निरन्तर चलता रहता है। यदि इस चक्र की गति के बाधित हो जाने से अंधकार क्रमिक विकास रूप से गहराता दिखाई दे, तो यह स्थिति विचारणीय और चिन्तनीय हो जाती है। भारतीय संस्कृति परिवर्तन के साथ निरन्तरता बनाए हुए चलती है। हमारी संस्कृति उन तत्वों को सतत परिवर्तित करती रहती है जो युग अनुरूप आवश्यक नहीं हैं। इतिहास के पन्ने निरन्तर बदलते रहें अनेक आन्दोलन विकसित हुए, अनेक उतार चढ़ाव आए, बदलाव आए। छठी शताब्दी ईसा पूर्व जैन और बौद्ध के उदय और आधुनिक भारत में अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ नवजागरण ऐसे उदाहरण हैं जिनसे भारतीय नवजागरण, व्यवहार और चिन्तन में आमूल चूल परिवर्तन दिखाई देता है। परन्तु भारतीय दर्शन के आधारसूत्र खंडित नहीं हुआ। निरन्तरता और परिवर्तन का क्रम भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। यह हमारी संस्कृति की गतिशीलता का परिचायक है। हमारी संस्कृति जैसी विविधता विश्व की किसी अन्य संस्कृति में नहीं है। हमारा देश में बोले वाली भाषाओं और बोलियां की संख्या काफी है जो साहित्य को एक महान विविधता प्रदान करती है। विश्व के आठ महान धर्मों के लोग यहाँ भाईचारे के साथ मिलजुल कर रहते हैं। मुर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला, नृत्यकला, शास्त्रीय संगीत आदि के अनेक रूप विविधता में एकता का रूप उपस्थित करते हैं। अनेक त्यौहार, अनेक प्रथाएँ और अनेक ऋतुएँ भी हमारे देश की सांस्कृतिक विशेषता का ही अंग है। यह विविधता देश की संस्कृति की एक सांझी बनाती है और हमारे देश को एक विविधता में एकता का रूप उपस्थित करती है।

संस्कृति का अर्थ है जीवन जीने का तरीका। आप का खाना, औढ़ना, पहनना, बात करने का ढंग अर्थात् भाषा, पूजा, प्रार्थना, आराधना के ढंग यह सभी कुछ हमारी संस्कृति के ही परिचायक हैं। भारतीय संस्कृति उस पयस्विनी के समान है जो किसी हिमाच्छादित शैल खंड के अज्ञात स्थल बिंदु से जन्म ग्रहण कर अपनी जीवन यात्रा आरम्भ करती है और उस यात्रा के क्रम में नाना कालों में नाना दिशाओं से भाव और विचार, नीति और

आचार, धर्म और दर्शन, साहित्य और कला के अनन्त स्रोतों से अपने को परिपूर्ण बनाते हुए अपना प्रवाह अनवरत रखती है।¹ हमारी संस्कृति इसलिए भी अक्षुण्ण रही हैं क्यों कि हम पूर्व पीढ़ी के द्वारा किए गए काम को उपयोग में लाने के और उस पर आगे और निर्माण करने में सक्षम होते रहें हैं।² इस सतत प्रक्रिया से आप अपने अवदान से भावी को समृद्ध करते चलते हैं।

भारतीय संस्कृति सद्भावपूर्ण और समन्वयात्मक है। इसका अर्थ है मेल, सारी जातियों का मेल, सारे कालों का मेल—यह मानव जाति के बेड़े को मंगल की ओर ले जाने वाली संस्कृति है।³ इसके द्वारा मनुष्य के जीवन में विस्तार समृद्धि और गुणात्मक उच्चता आती है।⁴ डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसको संस्कृति कहते हैं।⁵

संस्कृति और शिक्षा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। गीता में लिखा गया है कि सा विद्या या विमुक्तये।⁶ विद्या हमें संसार में सुख समृद्धि एवं सुयश प्रदान कराती है और ज्ञान का मार्ग दिखाकर हमें मोक्ष प्रदान कराती है। विद्या हमें माता के समान सुख पहुंचाती है, पिता के समान पथ प्रदर्शन करती है अर्थात् विद्या ज्ञान का वह स्रोत है जो हमारी उन्नति और पथ प्रदर्शन में सहायक होती है। प्रत्येक मानव समूह में हजारों वर्षों के विकास के परिणामस्वरूप संस्कृति के विभिन्न अंगों का विकास होता है।

A.S. Altekar - From the Vedic Age downwards the central conception of education of the Indians has been that it is a source of illumination giving us a correct lead in the various spheres of life.

अर्थात् वैदिक युग से लेकर आज तक भारत में शिक्षा का मूल तात्पर्य यह रहा है कि शिक्षा प्रकाश का स्रोत है, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा प्रदर्शन करता है।⁷ शिक्षा मनुष्य का सर्वांगीण एवं सन्तुलित विकास करने वाली अन्तर्ज्योति और शक्ति है। भारतीय शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत शिक्षा छात्रों के सर्वांगीण विकास या व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं जैसे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक का संतुलित विकास करती है। यह शिक्षा पद्धति आर्य संस्कृति की देन है। यह ज्ञान परम्परा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाता है जैसे ज्ञान, धार्मिक, विश्वास, कला, कानून, नैतिक नियम, रीति—रिवाज, तौर—तरीके, साहित्य, संगीत, भाषा इत्यादि। हमारी प्रवृत्तियां, विश्वास और विचार, हमारे निर्णय और मूल्य, हमारी संस्थाएँ, राजनीतिक और कानूनी, धार्मिक और आर्थिक, हमारी विज्ञान, दर्शन और दार्शनिक ये सब और दूसरी बहुत सी चीजें तथा प्राणी स्वयं भी और अपने विविध सम्बन्धों में भी संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान है।

समाज की जैसी संस्कृति होती है उसी के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था की जाती है या ऐसे भी कह सकते हैं कि शिक्षा की रूपरेखा का निर्माण समाज की संस्कृति के अनुसार होता है। जैसे कि अगर समाज की संस्कृति में धर्म और आध्यात्मिकता की प्रधानता होती है तो, शिक्षा में शाश्वत मूल्यों की प्राप्ति पर बल दिया जाता है। इसके विपरीत यदि समाज की संस्कृति का स्वरूप भौतिक होता है तो शिक्षा द्वारा भैतिक उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास किया जाता है। इसके विपरीत जिस समाज की कोई संस्कृति नहीं होती उसकी शिक्षा का स्वरूप भी अनिश्चित होता है। शिक्षा के सभी अंग—उद्देश्य, पाठ्यक्रम, अनुशासन आदि पर संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। शिक्षा का उद्देश्य समाज के खान—पान, रहन—सहन, आचार—विचार, दार्शनिक धाराओं, विश्वासों, आवश्यकताओं के आधार पर निर्मित होते हैं। इस प्रकार समाज की संस्कृति के आधार पर निर्मित होते हैं। इस प्रकार समाज

की संस्कृति के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य का निर्धारण होता है। समाज के विचार, विश्वास, मूल्य आदि को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जाता है। शिक्षक समाज की संस्कृति को अपनाकर चलता है, अपनी संस्कृति को अपने शिक्षण की युक्तियों द्वारा फैलाता है। शिक्षक के विचारों के प्रभाव से ही बालक उसकी संस्कृति को अपनाते हैं। शिक्षण संस्थान समाज की संस्कृति का केन्द्र होते हैं। शिक्षण संस्थानों के समस्त कार्य समाज की प्रमुख विचारधाराओं के अनुकूल चलते हैं। समाज के नए-नए रहने-सहने के ढंग फैशन, प्रवृत्तियों, रीति-रिवाज यहीं पर फलते फूलते हैं।⁸

भारत में आधुनिक शिक्षा की नींव यूरोपीय ईसाई धर्म प्रचारक तथा व्यापारियों के हाथों से डाली गई। उन्होंने कई विद्यालय स्थापित किए प्रारम्भ में मद्रास उनका कार्य क्षेत्र रहा। धीरे-धीरे कार्यक्षेत्र का विस्तार बंगाल में भी होने लगा। इन विद्यालयों में ईसाई धर्म की शिक्षा के साथ-साथ इतिहास, भूगोल, व्याकरण, गणित, साहित्य आदि विषय भी पढ़ाए जाते थे। प्रायः 150 वर्षों के बीतते बीतते व्यापारी ईस्ट इंडिया कम्पनी राज्य करने लगी। जिसका ध्यान कवल राज्य विस्तार पर था और विस्तार में बाधा न पड़े इस कारण ये शिक्षा के विषय में उदासीन ही रहे। कम्पनी ने 1781 में कलकत्ता में कलकत्ता मदरसा स्थापित किया। 1792 में जॉनथन डंकन बनारस में संस्कृत कॉलेज की स्थापना की। समय के चलते कम्पनी ने अपनी धर्म सम्बन्धी नीतियों में बदलाव करने लगी। उन्हें भारतीयों को शिक्षा देने की आवश्यकता अनुभव हुई। 1813 के आज्ञा पत्र के अनुसार उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में धनव्यय करने का निर्णय लिया। इस पर प्राच्य पाश्चात्य शिक्षा समर्थकों में मतभेद रहा। अंत में लार्ड मैकाले के तर्क वितर्क और राजा राममोहन राय के समर्थन से 1835 में लार्ड बैंटिक ने अंग्रेजी भाषा और साहित्य और यूरोपीय इतिहास, विज्ञान आदि को पढ़ाने का निर्णय लिया गया। अंग्रेजी साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ अधिक कर्मचारियों की और चिकित्सकों, इंजीनियर और कानून जानने वालों की आवश्यकता पड़ी। मैडिकल, इंजीनियरिंग और लॉ कॉलेजों की स्थापना होने लगी। स्त्रियों की दशा सुधारने और उनकी शिक्षा के लिए ज्योतिबा फूले ने 1848 में एक स्कूल खोला। यह इस प्रकार का पहला विद्यालय था। इस कर्म को दायित्व निर्वाह कुछ दिन करके उन्होंने अपनी पत्नी को इस कार्य के लिए तैयार कर दिया। विपरीत परिस्थितियों को झेलते हुए यह दम्पति इस कार्य में लगे रहे। 1853, 1854 के विभिन्न समितियों ने शिक्षा सम्बन्धी निर्णय कम्पनी के पास भेजे।⁹ अंग्रेजों द्वारा संस्कृत भाषा को प्रोत्साहन देने से संस्कृत का पुनः उद्धार और इसके माध्यम से प्राचीन साहित्य का प्रचार-प्रसार आरम्भ हुआ।

शिक्षा सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के लिए कार्य करती है। वास्तव में मानव का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास शिक्षा द्वारा ही सम्भव हो पाता है इसके साथ व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का पुनर्निर्माण होता है। इस तरह शिक्षा जीवन की मुख्य क्रिया है। संस्कृति शिक्षा को प्रभावित करती है और उसे नवीन रूप प्रदान करता है। किसी भी समाज का सांस्कृतिक पैटर्न उसकी शैक्षिक प्रणाली को निर्धारित करता है।

अशोक के समय में शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में भी काफी विकास हुआ। अशोक के समय का समाज शिक्षित समाज था। उन्होंने अपने धर्म सिद्धान्तों को शिलाओं तथा स्तम्भों पर खुदवा कर साम्राज्य के कोने-कोने में लगवा दिए थे ताकि लोग इन्हें पढ़कर उनके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें।¹⁰ विद्यार्थी शिक्षा मठों तथा गुरुकुलों में प्राप्त करते थे जो तत्कालीन शासन द्वारा संचालित थे। इन गुरुकुलों में न केवल भारत अपितु विदेशों के विद्यार्थी भी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। यहां वेद, बौद्ध, धार्मिक ग्रंथों, चिकित्सा, सैनिक विज्ञान, पशु विज्ञान,

गणित एवं ज्योतिष शास्त्र आदि का अध्ययन करके विश्व में उस शिक्षा का प्रसार किया। अशोक के समय में पाली साहित्य की भी बहुत उन्नति हुई। कलिंग विजय के पश्चात् विजय अभियान को विराम देकर पड़ोसी देश लंका, बर्मा और यवन देशों में बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए भिक्षु भेजे। डॉ. राधा कुमुद मुकर्जी के अनुसार, इस प्रकार अशोक के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध ऐसे सिद्धान्तों पर आधारित थे जिन्हें आज संसार को स्वीकार करने की आवश्यकता है। उसको विश्वव्यापी भ्रातृत्व की भावना के मार्ग में बन्धन बाधा नहीं डाल सकते थे जो राष्ट्रों को एक दूसरे से पृथक कर देते हैं।¹¹

दक्षिण पूर्वी एशिया के द्वीपों में भारतीय संस्कृति का बहुत अधिक प्रसार हुआ। वहां आज भी इन द्वीपों में भारतीय संस्कृति के चिह्न स्पष्ट रूप दिखाई देता है। इण्डोनेशिया पर शताब्दियों मुस्लिम शासन रहा, फिर भी यहां आज भी सुकार्णो तथा सुदर्शन आदि संस्कृत नाम प्रचलित हैं। बाली में जाति व्यवस्था आज भी विद्यमान है वहां के शिल्पी आज भी इन्द्र, विष्णु एवं कृष्ण आदि हिन्दू देवताओं की मूर्तियां बनाते हैं।

डॉ. सम्पूर्णानन्द लिखते हैं कि निरन्तर प्रगतिशील मानव जीवन प्रकृति और मानव समाज के जिन-जिन असंख्य प्रभावों एवं संस्कारों से संस्कृत व प्रभावित होता है। मानव का प्रत्येक विचार, प्रत्येक कृति संस्कृति नहीं है। पर जिन कामों से किसी देश-विशेष के समस्त समाज पर कोई अमिट छाप पड़े वही स्थायी प्रभाव ही संस्कृति है। संस्कृति वह आधारशिला है, जिसके आश्रय से जाति, समाज व देश का भव्य प्रासाद निर्मित होता है।¹²

कवि सुमित्रानन्दन पंत संस्कृति के सम्बन्ध में लिखते हैं— संस्कृति को मैं मानवीय पदार्थ मानता हूं, जिसमें हमारे जीवन के सूक्ष्म स्थल दोनों धरातलों के सत्यों का समावेश तथा हमारे उर्ध्व चेतना-शिखर का प्रकाश और समदिक् जीवन की मानसिक उपत्यकाओं की छायाएं गुम्फित हैं। उसके भीतर अध्यात्म, धर्म, नीति से लेकर सामाजिक रुढ़ि, रीति तथा व्यवहारों का सौन्दर्य भी एक अन्तर-सामञ्जस्य ग्रहण कर लेता है। संस्कृति को हमें अपने हृदय की शिराओं में बहने वाला मनुष्यत्व का रुधिर कहना चाहिए।¹³

संस्कृति का सम्बन्ध मानवीय बुद्धि स्वभाव और उसकी मनोवृत्तियों से होता है। इन्हीं तत्वों की सहायता से व्यक्ति अपना और अपने समाज का विकास करता है। संस्कृति साध्य और साधन दोनों का कार्य करती है। जब संस्कृति व्यक्ति तक सीमित रहती है तो व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करती है पर जब संस्कृति जाति और समाज तक प्रसार पा जाती है तो राष्ट्रीय चेतना को विकसित करती है। संस्कृति और शिक्षा किसी राष्ट्र के व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत ऐसा व्यवहार है जो भावी पीढ़ी के लिए आदर्श उपस्थित करती है उनके द्वारा अनुकरणीय होती है और समाज को शिक्षित करने के लिए साहित्य के नवीन रूप उपस्थित करती है।

भारतीय संस्कृति और साहित्य जिसका प्रसार सुदूर देशों तक है उसके मूल में भारतीय दर्शन, ज्योतिष और साहित्य शास्त्र की सुक्ष्मता और विश्लेषणात्मक तथ्य निरूपण विद्यमान हैं। इन गुणों के साथ इसमें आस्तिकता और आध्यात्मिक का मिश्रण है। इन्हीं गुणों के कारण यह सार्वभौम होकर वैश्विक रूप से दिशा निदर्शन करती दिखाई देती है। भारतीय संस्कृति में जीवन के लौकिक और आलौकिक दोनों पक्षों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। लौकिक पक्ष को आध्यात्मिक उन्नति के साधन के रूप में स्वीकार किया जाता है। गीता का कर्म उपदेश सम्पूर्ण विश्व को निष्काम कर्म का उपदेश सीखा रहा है— नियतम् कुरु कर्मत्वंकर्मज्यायोह्यकर्मणः अर्थात् सकाम कर्म मानव को बन्धन में बांधते हैं और निष्काम कर्म उसे बन्धन मुक्त करते हैं। सकाम कर्म मानव

को दुर्बल बनाते हैं और निष्काम कर्म उसे सबल।¹⁴

आधुनिक भारतीय युवा पूर्णतः पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगा गया है। अपनी संस्कृति को त्यागकर भौतिक उन्नति और पूंजिवाद की ओर आकृष्ट हो रहा है। आज उसने भारतीय संस्कृति के मूल विशिष्टताएँ त्याग, संतोष ज्ञान प्राप्ति की इच्छा को भूलकर आर्थिक और राजनीतिक कुचक्रों में फंस रहे हैं। परिणाम स्वरूप विनाशकारी संघर्ष हो रहा है, विदेशियों के आक्रमण की सम्भावना बढ़ गई है। भारतीय संस्कृति के परिवर्तित होते रूप ने साहित्य को भी पूरी तरह से बदल दिया है। समकालीन वातावरण से प्रभावित कवि और लेखक अपनी प्राचीन मान्यताओं को ताक पर रखकर न जाने क्या लिख और परोस रहे हैं। साहित्य के इस बदले हुए रूप के कारण हमारी शिक्षा और संस्कृति का प्राचीन रूप आहत हो रहा है। विश्वगुरु बनने की अग्रसर भारत की सांस्कृतिक विरासत को हमें सहेजना होगा और इसके उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहना होगा। पंत लिखते हैं :-

आज वृहत सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,
खंड मनुजता को युग युग की होना नव निर्मित।
विविध जाति, वर्गों, धर्मों को होना सहज समन्वित,
मध्य युगों की नैतिकता को मानवता में विकसित।।

.....
व्यर्थ आज राष्ट्रों का विग्रह, औ तोपों का गर्जन,
रोक न सकते जीवन की गति शत विनाश आयोजन।
नव प्रकाश में तमस युगों का होगा स्वयं निमज्जित,
प्रतिक्रियाएं विगत गुणों की होंगी शनैः पराजित।।¹⁵

संदर्भ सूची :-

1. एस. एल. नागौरी, ऐतिहासिक निबन्ध, पृ0 55
2. डॉ उषा नागर, प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ0 1
3. डॉ देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ0 30
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ0 81
5. श्रीमद्भागवत्गीता, अध्याय 8 श्लोक 18
6. डॉ किरण टंडन, भारतीय संस्कृति, पृ 2
7. डॉ उषा नागर, प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ0 14
8. विकि पीडिया डॉट कॉम।
9. डब्ल्यु डब्ल्युडब्ल्यु डॉट कॉम।
10. डॉ महेन्द्र कुमार मिश्रा, भारतीय सभ्यता और संस्कृति, पृ0 116
11. वहीं, पृ0 117
12. डॉ. किरण टंडन, भारतीय संस्कृति, पृ0 2
13. डॉ. किरण टंडन, भारतीय संस्कृति, पृ0 2- 3
14. श्रीमद्भागवत्गीता, अध्याय 3 श्लोक 8
15. फेस बुक डॉट कॉम, कविताकोश।



महाकवि कालिदास के नाटकों में वर्णित संस्कृति का बोध (वैश्विक परिप्रेक्ष्य में)

शिल्पी प्रसाद

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,
ग्रांड ट्रंक रोड, एनएच 1 से दूर, अमृतसर, पंजाब-143005

संस्कृति साहित्य का प्रधान वाहन भारतीय संस्कृति है। संस्कृति जहां संस्कृत काव्यों में अपनी अनुपम गाथा सुनाती है वही संस्कृत नाटकों में कमनीय क्रीड़ा दिखाती है। आध्यात्मिक भावना भारतीय संस्कृति का प्राण है। भारतीय संस्कृति का रमणीय आध्यात्मिक रूप त्याग से अनुप्राणित, तपस्या से पोषित तथा तपोवन में सर्वर्धित है जो कि संस्कृत भाषा के ग्रन्थों में अपनी सुन्दर झांकी दिखलाता हुआ सहृदयों के हृदयों को खींचता है। महाकवि कालिदास संस्कृति के पोषक थे। उनके नाटकों में पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त वर्ण-व्यवस्था का भी वर्णन इसमें किया गया है। कालिदास के नाटकों में वर्णित संस्कृति इस प्रकार है-

धर्म का आदर-भारतीय संस्कृति में धर्म का बहुत महत्व है। इसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

धर्म का अर्थ कर्तव्य कर्म और धार्मिक कार्यों दोनों से है। महाकवि कालिदास के नाटक में राजा अपने धर्म के प्रति सजग थे। राजकार्य अविलम्ब सम्पन्न होते थे। जब शकुंतला को भ्रमर तंग कर रहा होता है तो वह उसकी रक्षा हेतु तुरन्त उपस्थित हो जाता है। राजा का कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना होता है। यथा- राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम।¹ तपोवन की रक्षा का भार तो राजा ही पर होता है राजा का कर्तव्य केवल जनपद रक्षण मात्र से ही नहीं समाप्त होता अपितु राजा का कर्तव्य तपोवन की रक्षा करना भी है। इसी प्रकार जब एक उद्वण्ड हाथी तपोवन को तहस-नहस करता है तब भी राजा सबकी रक्षा करता है। वह कहता है- गच्छन्तु भवत्यः। वयमप्याश्रमपीडा यथा न भवति तथा प्रयतिष्यामहे।² तपस्वी राजा के समक्ष अपनी प्रार्थना लेकर आते हैं- तत्रभवतः कण्वस्य महर्षेरसान्निध्याद्रक्षांसि न इष्टिविघ्नमुत्सादयन्ति। तत्कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति।³ विक्रमोर्वशीय नाटक में राजा पुरुरवा उर्वशी को दानव के चंगुल से छुड़ा कर लाता है- यतिष्ये वः सखीप्रत्यानयनाय।⁴ भारतीय संस्कृति में यज्ञादि कर्म का बहुत महत्व है। अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में यज्ञादि कर्म का वर्णन है। महर्षि कण्व शकुन्तला को हवन की हुई अग्नि की प्रदक्षिणा करने को कहते हैं-

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्धन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।

अपध्नतो दुरितं हव्यगन्धैर्वेतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु ।।⁵

मालविकाग्निमित्रम् में सेनापति पुष्यमित्र द्वारा अश्वमेघ यज्ञ का किया जाना भी यज्ञादि कार्यों में विश्वास को प्रकट करता है। राजा ने बौद्धधर्म से संबंध रखने वाली कौशिकी को विशेष आदर-सम्मान प्रदान किया था। वह उसको निर्णायक भी बनाता है— यदादिशति भगवती ।⁶

अतिथि सेवा—हमारी भारतीय संस्कृति हमें अतिथि सेवा का पाठ पढ़ाती है और उसे महत्व भी देती है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में अतिथि को देवता कहा गया है अतिथि देवो भव ।⁷ अभिज्ञानशाकुन्तल में जब दुष्यन्त आश्रम में प्रवेश करता है तो तपस्वी उससे अतिथि-सेवा ग्रहण करने का अनुरोध करते हैं— न चेदन्यकार्यातिपातः प्रविश्य प्रतिग्रह्यतामतिथेयः सत्कारः ।⁸ वैसे तो अतिथि सत्कार जल से अर्घ्य देकर और फल इत्यादि खिलाकर किया जाता है परन्तु महाकवि कालिदास ने प्रिय एवं मधुर वाणी के द्वारा भी अतिथि-सत्कार को संभव बताया है— भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम् ।⁹

नारी सम्मान - भारतीय संस्कृति नारियों को विशेष सम्मान देता है। यह इस बात का बोध कराती है कि नारियों को सदैव सम्मान की दृष्टि से देखना चाहिए। मनुस्मृति में कहा गया है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।

यत्रैस्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया ।।¹⁰

राजा पुरुरवा जब भोजपत्र के साथ रानी के समक्ष पकड़ा जाता है तब वह रानी से क्षमा याचना करता है। इससे पुरुरवा का देवी के प्रति सम्मान प्रदर्शित होता है। वह स्वयं को दास और रानी को स्वामी कहता है—

अपराधी नामाहं प्रसीद रम्भोरु विरम संरम्भात् ।

सेव्यो जनश्च कुपितः कथं नु दासो निरपराधः ।।¹¹

राजा दुष्यन्त भी नारी सम्मान के पक्ष में थे। वह दूसरी स्त्री को घूरकर देखने को उचित नहीं मानते थे। इसे वह सदाचार के विरुद्ध मानते थे। इसे वह सदाचार के विरुद्ध समझते थे— भवतु अनिर्वर्णनीय परकलत्रम् ।¹² इसके अतिरिक्त जब दुष्यन्त मारीच आश्रम में जाते हैं तो सर्वदमन से उसकी माता का नाम पूछने की सोचते हैं तब उन्हें शिष्टता-अशिष्टता का विचार आता है— यदि तावदस्य शिशोमार्तरं नामतः पृच्छामि । अथवाऽनार्यः परदारव्यवहारः ।¹³ अतः उपरोक्त प्रसंग से हमें बोध होता है कि हमें भारतीय संस्कृति को बनाए रखने के लिए नारियों का सम्मान करना चाहिए।

विवाह समय कन्या आदर्श शिक्षा :- हमारी भारतीय संस्कृति में कन्या को पराया धन कहा है। कन्या दूसरे का धन होती है क्योंकि वह विवाहोपरान्त पराए घर चली जाती है। महर्षि कण्व अपनी बेटी को आदर्श शिक्षा देते हैं जिसमें ससुराल में आदर्श व्यवहार करने का ज्ञान होता है। वे कहते हैं—

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखी वृत्तिं सपत्नीजने ।

भतुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।।

भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी ।

यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाःकुलस्याध्यः ।।¹⁴

उपरोक्त शिक्षा का पालन प्रत्येक बेटी को करना चाहिए। यह भारतीय संस्कृति के लिए आवश्यक है।

चित्रकला, संगीत और नृत्यकला—भारतीय संस्कृति में चित्रकला, संगीत और नृत्यकला का विशेष स्थान

है। नीतिशतक में कहा गया है :-

साहित्यसंगीतकलानभिज्ञः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।

तृणं न सादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥¹⁵

महाकवि ने अपने नाटकों में नृत्य और चित्रकला का वर्णन किया है। राजा चित्र बनाने, नृत्य देखने और संगीत सुनने के शौकीन थे। कुछ रानियां भी संगीत और नृत्य सीखने में रुचि रखती थी। राजा दुष्यंत शकुंतला के विरह में उसका चित्रांकित करते हैं। उनकी चित्रकला की प्रशंसा करती हुई सानुमती कहती है— अहो! एषा राजर्षिर्निपुणता जाने सख्यग्रतो मे वर्तत इति ॥¹⁶ रानी हंसपदिका के मधुर गीत गाती है—

अभिनवमधुलोलुपो भवांस्तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् ।

कमलवसतिमात्रनिवृत्तो मधुकर! विस्मृतोऽस्येनां कथम् ॥¹⁷

मालविकाग्निमित्रम् में नृत्यकला का वर्णन है। हरदत्त और गणदास नाट्याचार्य शिक्षण के लिए नियुक्त किए गए थे। वे दोनों मालविका को नृत्य कला सिखाते हैं। महाराज गणदास महारानी की ओर से पूछे गए प्रश्न के उत्तर में बकुलावलििका से कहते हैं कि मालविका बहुत अच्छे से शिक्षा ग्रहण कर रही है जो शिक्षा मैं उसे देता हूँ वह बहुत अच्छे से धारण करती है—

यद्यत्प्रयोगविषये भाविकमुनदिश्यते मयातस्यै ।

तत्तद्विशेषकरणात्प्रत्युपदिशतीव मे बाला ॥¹⁸

इस नाटक में चित्रकला का भी वर्णन है। राजा अग्निमित्र मालविका को चित्र में ही देखते हैं चित्र में देखकर वह उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो जाते हैं। मालविका चित्र में राजा को इरावती की ओर देखते हुए ईर्ष्यान्वित हो उठती है। मालविका बकुलावलििका से कहती है— सखी! अदक्षिण इव भर्ता में प्रतिभाति यः सर्वदेवी जनमुज्झित्वैकस्या मुखे बद्धलक्ष्यः ॥¹⁹

उपरोक्त प्रसंग से प्रतीत होता है कि उस समय बहुत अच्छी चित्रकला की जाती थी।

व्रत तथा पूजा में विश्वास :- पति के लिए पूजा-पाठ, व्रत इत्यादि करना भारतीय संस्कृति को प्रकट करता है। विक्रमोर्वशीय नाटक में औशीनरी राजा के लिए प्रियानुप्रसादन नामक व्रत रखती है। वह आर्यपुत्र से कहती है— आर्यपुत्रं पुरस्कृत्य कोऽपि व्रतविशेषो मया संपादनीयः ॥²⁰ इस व्रत का प्रयोजन बताती हुई देवी कहती है— एषाहं देवतामिथुनं रोहिणीमृगलाञ्छनं साक्षीकृत्य आर्यपुत्रमनुप्रसादयामि । अद्यप्रभृति यां स्त्रियमार्यपुत्रः प्रार्थयते या चार्यपुत्रस्य समागमप्रणयिनी तथा सह मया प्रीतिबन्धेन वर्तितव्यमिति ॥²¹ अभिज्ञानशाकुन्तल में प्रतिकूल भाग्य की शान्ति के लिए भी उपाय किया जाता है। महर्षि कण्व शकुंतला के प्रतिकूल भाग्य की शान्ति के लिए सोमतीर्थ जाते हैं—इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य देवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः ॥²²

उपरोक्त प्रसंग से हमें ज्ञान होता है कि उस समय लोग व्रत और पूजा इत्यादि में विश्वास रखते थे। आश्रम व्यवस्था—महाकवि कालिदास के नाटकों में हमें आश्रम व्यवस्था का वर्णन मिलता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार प्राचीन काल में आश्रमों में शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थी आश्रम में ही रहकर गुरु की सेवा किया करते थे। भारतीय संस्कृति में चार प्रकार के आश्रम बताए हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में शिक्षा का कार्य चलता है जिसमें कुलपति होता है जो विद्यार्थियों को शिक्षा देता है। अभिज्ञानशाकुन्तल में महर्षि कण्व विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं। उनके आश्रम में पर्यावरण संरक्षण तथा जीवन मूल्य संबंधित शिक्षा दी जाती थी। विक्रमोर्वशीय नाटक में च्यवन

ऋषि के आश्रम में राजकुमारों को आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति की शिक्षा के साथ-साथ धनुर्वेद की शिक्षा भी दी जाती थी। इस बात का प्रमाण हमें आयुष से मिलता है। आयुष ने धनुषबाण से गीध को बीध कर धराशायी कर दिया। राजा कहता है—

शृणु तावत्प्रहर्तुर्नामाक्षराणि ।
 उर्वशीसंभवस्यायमैलसूनोर्धनुर्भृतः ।
 कुमारस्यायुषो बाणः प्रहर्तुर्द्विषदायुषाम् ।²³

आश्रम में बच्चों का लालन-पालन भी होता था। आयुष च्यवन ऋषि के आश्रम में सत्यवती तापसी के पास ही रहता है। अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यंत पुत्र सर्वदमन मारीच के आश्रम में पोषित होता है। उसी आश्रम में उसका जातकर्म संस्कार भी होता है। राजा कहता है— भगवता कृतसंस्कारे सर्वमस्मिन् वयमाशास्महे।²⁴ गृहस्थ आश्रम में विवाहोपरान्त घर के लालन-पालन का सारा उत्तरदायित्व निभाते थे। राजा अपने बेटे से कहता है— अपि वत्स उषित त्वया पूर्वस्मिन्नाश्रमे। द्वितीयमध्यासितुं तव समयः।²⁵ वानप्रस्थ आश्रम में वनों में जाने की परम्परा थी। उर्वशी से यह ज्ञात होने पर कि आपने पुत्र का मुख देख लिया है इन्द्र की शर्त के अनुसार मुझे आपको छोड़कर देवलोक जाना होगा पुरुरवा वन जाने को तैयार हो जाता है—

न हि सुलभवियोगा कर्तुमात्मप्रियाणि
 प्रभवति परवत्ता शासने तिष्ठ भर्तुः ।
 अहमपि तव सुनावायुषि न्यस्तराज्यो
 विचरितमृगयूथान्याश्रयिष्ये वनानि ।²⁶

शिक्षित नारीयां :- भारतीय संस्कृति में शिक्षा का विशेष स्थान है। शिक्षा प्रत्येक स्थान पर काम आती है।

शिक्षा का अधिकार सबको है। चाहे महिला हो या पुरुष। कालिदास के नाटको में नारी शिक्षित है। उर्वशी शिक्षित होने के कारण पुरुरवा के प्रति अपना प्रणय भोजपत्र पर लिखकर प्रकट करती है प्रभवनिर्मितेन भूर्जपत्रेण संपादितोत्तरा भवि—तुमिच्छामि।²⁷ इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तल में भी नारी शिक्षित है। शकुंतला की सखियां अनुसूया और प्रियंवदा दुष्यंत द्वारा दी गई अंगूठी पर लिखे नाम को पढ़ लेती है। उभेनाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परमवलोकयतः।²⁸

नैतिकता :- भारतीय संस्कृति नैतिकता को भी संजोए है। महाकवि कालिदास के नाटक में नैतिकता की भी झलक है। जिसमें निरभिमानता को अलंकार कहा है। राजा पुरुरवा जब उर्वशी को राक्षस के चंगुल से छुड़ाकर लाता है तब चित्ररथ पुरुरवा को बधाई देते हैं। वह इस बधाई का पात्र स्वर्ग को न बनाकर इन्द्र को बनाता है क्योंकि उन्हीं के कारण पुरुरवा को विजय प्राप्त हुई है। इस बात को सुनकर चित्ररथ कहता है— अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः।²⁹ इसी प्रकार राजा दुष्यंत इन्द्र द्वारा सौंपे गए कार्य को सम्पन्न करते हैं। वह दुर्जय नामक दानव का संहार करते हैं। इसका श्रेय भीवह इन्द्र को देता हैं। राजा कहता है—

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
 संभावनागुणमवेहितमीश्वराणाम् ।
 किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
 तं चेत्सहस्त्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ।³⁰

इसी नाटक में नैतिकता का एक ओर प्रसंग वर्णित है जिसमें आश्रम के दो विद्यार्थी भारतीय संस्कृति का पालन करते हैं। दोनों विद्यार्थी महर्षि कण्व की बेटी को बहन मानते हैं। महर्षि कण्व शार्ङ्गरवमिश्र तथा शारद्वतमिश्र को आदेश देते हैं कि वह अपने बहन शकुंतला को हस्तिनापुर ले जाए— भगिन्यास्ते मार्गमादेशाय।³¹ राजा दुष्यंत भी भारतीय संस्कृति का सम्मान करते हैं। वहा राजा होते हुए भी विनीत वेष धारण करके आश्रम में प्रवेश करते हैं। वह अपने आभूषण इत्यादि सारथि को देकर आश्रम में प्रवेश करते हैं। सूत! विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम। इदं तावत् गृह्यताम् (सूतस्याभरणानि धनुश्चोपनीय) सूत यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेक्ष्याहमुपावर्ते।³² भारतीय संस्कृति सादगी को प्राथमिकता देती है इसलिए राजा आश्रमवासी के दर्शन साधारण वेष न में करने जाता है।

पति का सम्मान :- भारतीय संस्कृति को मानने वाली नारीयां पति का अपमान नहीं करती। चाहे वह पति द्वारा कितना भी अपमानित की गई हो। राजा दुष्यंत जब शकुंतला का अपनाने से मना कर देता है तो वह उसको अपशब्द नहीं बोलती और न ही तब बोलती है जब राजा की स्मृति लौट आती है — उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः। नूनं मे सुचरितप्रतिबंधकं पुराकृत तेषु दिवसेषु परिणाममुखमासीद्येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्ता।³³ रानी औशीनरी भी भारतीय संस्कृति को भली प्रकार समझती है। वह अपने पति की बड़ी से बड़ी गल्ती को क्षमा कर देती है। पति पुरुरवा के दोषी होने पर भी उसका प्रेम पति के प्रति कम नहीं होता। वह अपने पति के कृत्रिम अनुनय—विनय को जानती है परन्तु वह उसको उतना महत्व नहीं देती क्योंकि उसे अपने अशिष्ट आचरण पर पछताने को डर है— मा खलु लघुहृदयाहमनुनयं बहुमन्ये। किं त्वदाक्षिण्यकृतात्पश्चात्तापाद्विभेमि।³⁴

वैश्विक परिप्रेक्ष्य :- विश्व के देशों की अपनी संस्कृति होती है जो वहां रहने वाले सभी मनुष्यों के लिए महत्वपूर्ण है पर भारतीय संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है जिसे समस्त विश्व हृदय से अपनाना चाहता है। यह संस्कृति प्राचीन एवं विशिष्ट है। विदेशी आक्रमणकारियों ने अपनी—अपनी संस्कृति को भारतीयों पर आरोपित करने का प्रयत्न किया परन्तु भारतीय संस्कृति ने सभी संस्कृतियों का सम्मान किया और उसको आत्मसात् भी किया। इन सबके बावजूद भी भारतीय संस्कृति का अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ। भारतीय संस्कृति के ये अलौकिक गुण सदा विद्यमान रहने वाले हैं। यह संस्कृति बहुत से गौरवपूर्ण तत्वों को समाहित किए हैं। भारतीय संस्कृति का जीने की कला, राजनीति क्षेत्र या विज्ञान क्षेत्र में विशेष स्थान रहा है। भारतीय संस्कृति समय की धारा के साथ—साथ नष्ट नहीं होती जबकि अन्य देशों की संस्कृति समय की धारा के साथ नष्ट होती रही है। भारतीय संस्कृति का परम्परागत रूप आज भी अजर—अमर है।

साहित्य संस्कृति एवं समाज का दर्पण होता है। संस्कृत के कवियों ने अपनी कृतियों में भारतीय संस्कृति का सुन्दर वर्णन किया है। महाकवि कालिदास संस्कृति एवं सभ्यता के उपासक थे। इसका आभास हमें उनकी कृतियों से मिलता है। अभिज्ञानशाकुन्तल में उन्होंने एक आदर्श राजा दुष्यंत और आदर्श नारी शकुन्तला का वर्णन किया है। राजा दुष्यंत राजा होते हुए भारतीय संस्कृति का पालन करते हैं और उसको बनाए रखते हैं। वह अपना राजधर्म नहीं भूलते। वह आश्रमवासियों की प्रार्थना को स्वीकार करते हैं और तुरन्त कार्य करते हैं। वह प्रजा की रक्षा को अपनी सेवा समझते हैं। वह तब तक शकुन्तला से विवाह करने को तत्पर नहीं होते जब तक उनको यह ज्ञात नहीं हो जाता कि वह क्षत्रिय है। वह वैदिक परम्परा को भी जानता है जब तपस्वी उसके राजमहल में आते हैं तब वह वैदिक रीति से अतिथि सत्कार करने का आदेश देता है। आश्रम में यज्ञ इत्यादि का कार्य

होता था जो भारतीय संस्कृति की पहचान है। अतिथि सत्कार दर्शन मात्र और प्रिय एवं मधुर वचनों से भी सम्भव है। हमारी संस्कृति अतिथि को देवता की संज्ञा देती है। विक्रमोर्वशीय में पति का सम्मान, उसके लिए व्रत रखना इत्यादि का वर्णन है। भारतीय नारीयां पतिव्रता होती है इसलिए वह पति की त्रुटियों को क्षमा कर देती है। उनके नाटकों में संगीत, चित्रकला और नृत्यकला का भी सुन्दर वर्णन है इसमें हमारी भारतीय संस्कृति की चमक है। महाकवियों की दृष्टि में नारीयां अशिक्षित नहीं होनी चाहिए अपितु शिक्षित होनी चाहिए।

उपसंहार :- अंत में कहा जा सकता है कि किसी भी राष्ट्र का प्राण उसकी संस्कृति होती है। समाज अथवा राष्ट्र में व्याप्त गुणों का सामूहिक नाम संस्कृति है। संस्कृति की संरचना साहित्य, भाषा, वेशभूषा, परम्पराएं, पूजा-पद्धति एवं पर्व आदि के मिश्रण से होती है। कला, संगीत, साहित्य, विज्ञान, शिल्प, धर्म, आदि संस्कृति को प्रकट करते हैं। विश्व की अति प्राचीन संस्कृति होने के कारण भारतीय संस्कृति प्राचीन काल में सबके द्वारा स्वीकृत संस्कृति है।

सन्दर्भ सूची :-

1. अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रथम अंक, पृष्ठ 44
2. अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रथम अंक, पृष्ठ 72
3. अभिज्ञानशाकुन्तल, द्वितीय अंक, पृष्ठ 112
4. विक्रमोर्वशीय, प्रथम अंक, पृष्ठ 12
5. अभिज्ञानशाकुन्तल 4/7
6. मालविकाग्निमित्रम्, प्रथम अंक, पृष्ठ 47
7. तैत्तिरीय उपनिषद् 1/11/2
8. अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रथम अंक, पृष्ठ 22
9. अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रथम अंक, पृष्ठ 47
10. मनुस्मृति 3/56
11. विक्रमोर्वशीय 2/21
12. अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रथम अंक, पृष्ठ 36
13. अभिज्ञानशाकुन्तल, सप्तम अंक, पृष्ठ 392
14. अभिज्ञानशाकुन्तल 4/17
15. नीतिशतक 12
16. अभिज्ञानशाकुन्तल, षष्ठ अंक, पृष्ठ 324
17. अभिज्ञानशाकुन्तल 5/1
18. मालविकाग्निमित्रम् 1/5
19. मालविकाग्निमित्रम्, चतुर्थ अंक, पृष्ठ 152
20. विक्रमोर्वशीय, तृतीय अंक, पृष्ठ 202
21. विक्रमोर्वशीय, तृतीय अंक, पृष्ठ 206

22. अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रथम अंक, पृष्ठ 24
23. विक्रमोर्वशीय, 5/7
24. अभिज्ञानशाकुन्तल, सप्तम अंक, पृष्ठ 420
25. विक्रमोर्वशीय, पंचम अंक, पृष्ठ 384
26. विक्रमोर्वशीय 5/17
27. विक्रमोर्वशीय, द्वितीय अंक, पृष्ठ 100
28. अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रथम अंक, पृष्ठ 66
29. विक्रमोर्वशीय, प्रथम अंक, पृष्ठ 36
30. अभिज्ञानशाकुन्तल 7/4
31. अभिज्ञानशाकुन्तल, चतुर्थ अंक, पृष्ठ 193
32. अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रथम अंक, पृष्ठ 28
33. अभिज्ञानशाकुन्तल, सप्तम अंक, पृष्ठ 403
34. विक्रमोर्वशीय, द्वितीय अंक, पृष्ठ 126



वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता और राहुल सांकृत्यायन

शीशा कुमारी

शोधार्थी, हिंदी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

आमुख :-

विश्व में विकास की कथा—गाथा आज चरमोत्कर्ष पर है। आज विश्व एक गाँव 'ग्लोबल विलेज' बन गया है। टेक्नोलॉजी ने हमें कुछ ही घंटों में कहीं से कहीं पहुँचा दिया है। सारा विश्व एक गाँव तो बन गया है, परंतु यह एकता हमारी भावनाओं में नहीं है। आज संपूर्ण विश्व तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। प्रस्तुत आलेख वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता और इसी संस्कृति की खोज में देश—विदेश की अनेकों रोमांचक एवं दुर्गम यात्राएं करने वाले महान घुमक्कड़ लेखक राहुल सांकृत्यायन और उनके साहित्यिक अवदानों के संदर्भ में दो टुकड़ों में लिखा गया एक वैचारिक वार्तालाप है।

कहा जा रहा है कि बदलते समीकरणों के अनुसार 21वीं सदी भारत और चीन की सदी होगी। भारत आज विश्व की उभरती हुई आर्थिक महाशक्ति है। भारत का भविष्य अत्यंत संभावनापूर्ण है, परंतु इसका मुख्य आधार भारत के विशाल आकार और जनसंख्या में निहित है।

एक अन्य बिंदु यह है कि भारत विश्व की सभी प्राचीनतम सभ्यताओं में से एकमात्र जीवित एवं विकसित सभ्यता है। भारत विश्व का एकमात्र जीवित प्रागैतिहासिक राष्ट्र है। अतीत से भविष्य तक इतने लंबे अंतराल में इतने विराट स्वरूप को भारत ने संरक्षित एवं सुरक्षित रखा है। यह पश्चिमी विचारकों के लिए आश्चर्य और शोध का विषय है।

विस्तार :-

भारत की एकता का मुख्य आधार आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक कारणों में निहित नहीं है। इन आधारों पर गठित बड़े—बड़े राष्ट्रों का जीवन बहुत लंबा नहीं होता। इसके कई उदाहरण हैं। इतिहास में अरब क्षेत्र में तुर्की और मेसोपोटामिया के साम्राज्य, उत्तरी अफ्रीका में मिस्र का साम्राज्य और यूरोप में रोमन साम्राज्य आज उसी क्षेत्र में अनेक राष्ट्रों में विभाजित हैं। पिछली शताब्दी में ही चेकोस्लोवाकिया और सोवियत संघ का विघटन इसका प्रमुख उदाहरण है। भारत में एकता का सूत्र यहाँ की संस्कृति, धर्म और सांस्कृतिक मनोविज्ञान में इतने सुव्यवस्थित में ढंग से बसा हुआ है कि सामान्य तौर पर वह नजर ही नहीं आता।

भारतीय संस्कृति में एकता का सूत्र अत्यंत गहरा है। इसी कारण यह आज भी जीवंत एवं विकासशील

है। इस संदर्भ में हरबर्ट रिसले का कहना है कि 'भारत में भौगोलिक, सामाजिक, भाषा, रीति-रिवाज, धर्म की भिन्नता होने पर भी कश्मीर के से लेकर कन्याकुमारी तक यह एकता सूत्र बँधा है'।

यह एकता है सांस्कृतिक एकता, जिसने भारत की विविधता को अपने में समेटकर अभिन्न एवं वृहद रूप प्रदान किया है— यह एक अद्भुत घटना है। भारतीय संस्कृति की यह एक अद्भुत विशेषता है कि हम यहाँ के धर्म और संस्कृति के किसी भी प्रतीक पर आस्था रखें तो संपूर्ण भारतवर्ष से स्वतः जुड़ जाएँगे।

इसे कुछ इस तरह से समझा जा सकता है। जैसे यदि कोई भारतीय कहे कि वह वैष्णव है, उसकी आस्था भगवान राम में है तो उत्तर में अयोध्या से लेकर चित्रकूट होते हुए धुर दक्षिण में रामेश्वर तक सभी स्थानों से उस व्यक्ति की आस्था स्वयं जुड़ जाएगी। यदि कोई व्यक्ति कहे कि उसकी आस्था भगवान श्रीकृष्ण में है तो उत्तर में उनकी जन्मभूमि मथुरा, पूर्व में जगन्नाथपुरी, पश्चिम में द्वारका और दक्षिण में तिरुपति बालाजी तक देश के सभी स्थानों से उसकी आस्था स्वतः जुड़ जाएगी।

यदि कोई यह कहे कि वह वैष्णव नहीं बल्कि शैव है और उसकी आस्था भगवान शंकर में है तो उत्तर में अमरनाथ, मध्य में उज्जैन के महाकाल, पश्चिम में सोमनाथ और दक्षिण में रामेश्वरम सहित द्वादश ज्योतिर्लिंगों के द्वारा भारत के हर कोने से उसकी आस्था जुड़ जाएगी।

यदि कोई यह कहे कि वह शाक्त है और उसकी आस्था देवी में है तो उत्तर में वैष्णो देवी, मध्य में विंध्यवासिनी, पश्चिम में मुंबा देवी, पूर्व में कामाख्या और दक्षिण में कन्याकुमारी सहित देश के सभी भौगोलिक क्षेत्रों में उस व्यक्ति की आस्था अपने आप जुड़ जाएगी।

एकता का यह सूत्र केवल विचारों में ही सीमित नहीं था। इसका क्रियात्मक स्वरूप भी अनादिकाल से दिख रहा है। देश के चार स्थानों नासिक, उज्जैन, प्रयाग और हरिद्वार में हर तीन वर्ष के बाद कुंभ मेला होता है और देश के समस्त साधु-संत अखाड़े लगाकर इन चारों स्थानों की यात्रा करते रहते हैं।

आदि शंकराचार्य जी ने चारों कोनों पर चार मठ बनाए और वहाँ के शंकराचार्य बनने के लिए यह बाध्यता बनाई कि उसी क्षेत्र का व्यक्ति शंकराचार्य नहीं बनेगा। नेपाल में पशुपतिनाथ का मुख्य पुजारी शताब्दियों से कर्नाटक का ही होता रहा है अर्थात् राजनीतिक पृथकता भी एकता को सांस्कृतिक सूत्र से जोड़े रखती है।

इतना ही नहीं, भारत में धर्म और संस्कृति के कर्मकांडों में भी, जिसकी आधुनिक बुद्धिजीवी तीव्र आलोचना करते हैं, राष्ट्रीय एकता के गहरे सूत्र हैं। हमारा धार्मिक कर्मकांड भी इसी विशेषता को स्पष्ट करता है।

पूजा करते समय जब पुरोहित हमसे हाथ में जल लेने को कहता है तो संकल्प स्वरूप यह मंत्र बोला जाता है— 'गंगे च यमुने च गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु, कावेरी जलेस्मिन सन्निधिं कुरु।' अर्थात् पूजास्थल पर बैठे हुए हम भगवान से देश की समस्त नदियों के साथ जुड़ जाते हैं। विधान के अनुसार त्योहारों में स्नान करते समय भी इसी मंत्र का उच्चारण किया जाता है।

स्पष्ट है कि भारत की एकता के सूत्र जिन देवी-देवताओं और परंपराओं में निहित हैं, उनके कारण देश का कोई हिस्सा यदि किसी अन्य के प्रभाव में हो तो भी दूसरे हिस्से में बैठे व्यक्ति की भावना उस हिस्से से जुड़ी रहती है।

भारतीय संस्कृति में जरूरी नहीं कि हम पूजा बाहर जाकर करें। हम अपने देवता घर में ही रख सकते हैं। घर में उपासना करने से किसी भी देवता की आराधना से हमारी आस्था सारे भारत के साथ जुड़ जाती है।

यहाँ तक कि हम धार्मिक विधान के अनुसार स्नान करते हुए स्वयं को सारे भारत की नदियों से जुड़ा हुआ महसूस कर सकते हैं।

विश्व की कोई भी निरंकुश शक्ति मंदिरों, मठों और आस्था के केंद्रों को तो नष्ट कर सकती है, परंतु एक-एक व्यक्ति के आवास में प्रवेश कर उसके क्रियाकलाप को नियंत्रित नहीं कर सकती और स्नानागार में स्नान कर रहे व्यक्ति को नियंत्रित करना तो अकल्पनीय है। आस्था और विश्वास हमारे मन में बसता है।

भारत की एकता के सूत्र सांस्कृतिक आस्था और धार्मिक कर्मकांड से लेकर घर के स्नानागार तक इतने सूक्ष्म तरीके से बने हुए हैं कि शताब्दियों के विदेशी शासन के बाद भी भारत अपनी राजनीतिक एकता को अक्षुण्ण रखकर विराटस्वरूप के साथ अडिग एवं अचल है। इसी कारण हम 21वीं सदी में विश्व का मार्गदर्शन करने के लिए तैयार खड़े हैं। जबकि विश्व की अन्य महानतम शक्तियाँ अपनी किसी भी किस्म की एकता को नहीं बचा पाईं। इसीलिए भारत एक चिरंतन राष्ट्र है, सनातन राष्ट्र है।

सांस्कृत्यायन और उनका साहित्य :-

राहुल सांस्कृत्यायन महान घुमक्कड़, जनकवि और महान लेखक थे। इनका सम्पूर्ण जीवन यात्राओं में बीता है। लगभग पांच दशकों तक अनवरत यात्राएं करके वैश्विक परिदृश्य और संस्कृति का अद्भुत वर्णन किया है। विश्व की यात्राएं करते हुए विश्व-संस्कृति का चिंतन कर मानव-जाति के संघर्ष, उनकी कला, संस्कृति, रहन-सहन वातावरण का अध्ययन कर वैश्विक स्तर पर भारतीय संस्कृति को एक दूसरे से साझा किया है। उर्मिलेश लिखते हैं, 'राहुल जी भारतीय बुद्धजीवियों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के प्रतीक पुरुष हैं। जीवन संघर्ष और सृजनकार्य के स्तर पर वे भारतीय मनीषा का प्रतिनिधित्व करते नज़र आते हैं'।

राहुल जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रगतिशील समाज की वैचारिकी और सांस्कृतिक आधार को मजबूत बनाने का प्रयास किया है। अपनी पुस्तकों 'वोल्गा से गंगा', 'भागो नहीं दुनिया को बदलो', 'मानव समाज', 'तुम्हारी छय', मानव की कहानी जैसी पुस्तकों में उन्होंने मनुष्य और समाज की विकाश यात्रा उसकी संस्कृति और उसके अंतर विरोधों का विवेचन करते हुए अपनी विश्वदृष्टि का प्रतिपादन किया है। अपनी पुस्तक मानव समाज में लिखते हैं 'मानव आज जहाँ है, वहाँ प्रारम्भ में ही नहीं पहुँच गया था, इसके लिए उसे बड़े-बड़े संघर्षों से गुजरना पड़ा है। 'श्वोल्गा से गंगा' में भी 6000 वर्ष पहले की 2500 पूर्व तक के भारतीय समाज के इतिहास, सामाजिक विकास क्रम और सभ्यता-संस्कृति के उत्थान-पतन की कहानी कहता है।

'राहुल जी पहले आदमी थे, कम से कम हिंदी के बारे में मैं जानता हूँ, जिन्होंने बताया की भारतीय संस्कृति केवल वेदांत और ब्राह्मणवाद ही नहीं है। भारतीय संस्कृति में और भी कुछ है और बुद्ध उतने ही भारतीय हैं। बल्कि कहना चाहिए कि उनके बिना भारतीय संस्कृति का इतिहास पूरा नहीं होता।

राहुल सांस्कृत्यायन ने विश्व की युवा पीढ़ी को एकजुट होकर कार्य करने और निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरणा देने के लिए अपनी पुस्तक 'घुमक्कड़ शास्त्र' में कहा है—आप अपना शहर छोड़िए, हजारों शहर आपको अपनाने को तैयार मिलेंगे। आप अपना गांव छोड़िए, हजारों गाँव आपके स्वागत के लिए तत्पर मिलेंगे। एक मित्र और बंधु की जगह हजारों बंधु-बांधव आपके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप एकाकी नहीं हैं। गीता का श्लोक दुहराते हुए कहते हैं— 'क्षुद्रं हृदय त्याकवोक्तिष्ठ परन्तप' तुम अपनी हृदय की दुर्बलता को छोड़ो फिर दुनिया को विजय कर सकते हो। यहां दुनियां को विजय करने से अर्थ भारत की संस्कृति अपने आप में विश्व-विजेता है।

और विश्व की सभी धर्मों और संस्कृतियों को जोड़े हुए है।

उपसंहार :-

अतः भारत की युवा पीढ़ी को इसकी शक्ति के इस और वास्तविक, मूल और नैसर्गिक तत्त्व को समझना के होगा, इसे संरक्षित और विकसित करना होगा— इसी तभी भारत 21वीं सदी में विश्व का नेतृत्व कर पाएगा। भारत एकता का मूलमंत्र हमारी भावनाओं में गहराई से रचा—बसा है। वैचारिक रूप से मतभिन्नता संभव है और को होनी भी चाहिए, परंतु सांस्कृतिक स्वर हमारी रगों राष्ट्र में बहता है, कण—कण में रमता है और व्यवहार में दृष्टिगोचर होता है। भारत की युवा पीढ़ी इस सत्य इस और तथ्य से सुपरिचित है, बस, उसे दृढ़ संकल्पना के साथ क्रियान्वयन करने की आवश्यकता है। इसी आधार पर हम कह सकते हैं, हम विश्व का सक्षम एवं समर्थ रूप से नेतृत्व कर सकते हैं।

संदर्भ :-

1. योद्धा महापंडित राहुल सांकृत्यायन, उर्मिलेश, पृष्ठ 26
2. मानव समाज – राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ 106
3. वोल्गा से गंगा, राहुल सांकृत्यायन, प्रथम संकरण के प्राक्कथन से।
4. नामवर सिंह, नागपुर में राहुल स्मृति समारोह 1993 में दिए गए भाषण से।
5. घुमक्कड़ शास्त्र, राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ 19



साहित्य के शाश्वत एवं प्रासंगिक मूल्यों की समाजवादी व्याख्या

डॉ. सुलेखा कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, हिंदी विभाग, विद्यासागर कॉलेज, कोलकाता।

मार्क्स ने इतिहास की द्वंद्वात्मक भौतिकवादी समीक्षा की, जिसके मूल में आर्थिक संरचना है। आर्थिक संबंधों की व्याख्या करते हुए मार्क्स ने यह बताया कि आर्थिक कारण समाज को बहुत गहराई से प्रभावित करते हैं; यहाँ तक कि राजनीति, कानून, दर्शन, धर्म, साहित्य और कला इससे प्रभावित होते हैं। किंतु आर्थिक कारण ही कला और साहित्य के क्षेत्र में एकमात्र कारण नहीं होते। डॉ० रामविलास शर्मा आर्थिक कारणों और वर्गाधारित समाज की व्याख्या को स्वीकार करते हैं किंतु साहित्य और कला को आर्थिक संबंधों का प्रतिबिंब नहीं मानते। उन्होंने एंगेल्स को उद्धृत कर यह स्पष्ट करना चाहा कि जिस प्रकार आर्थिक कारण राजनीति, कानून, धर्म, साहित्य और कला को प्रभावित करते हैं, उसी प्रकार इनका भी प्रभाव आर्थिक संबंधों पर पड़ता है। वह लिखते हैं— “एंगेल्स ने इस बात को अपने एक पत्र में और भी खुलासा कर दिया था। उन्होंने स्टारकेन वुर्ग को लिखते हुए बताया था— ‘राजनीतिक, कानूनी, दार्शनिक, धार्मिक, साहित्यिक, कलात्मक आदि विकास का आधार आर्थिक विकास है। लेकिन इन सबका एक—दूसरे पर असर पड़ता है और आर्थिक आधार पर भी उनका असर पड़ता है।’” यह प्रभाव कभी भी एक ही तरह का ही नहीं होता। मार्क्स ने समाज को वर्गों में देखा किन्तु साहित्य पर यह वर्गवादी व्याख्या उसी प्रकार लागू नहीं होती जिस प्रकार ज्ञान के अन्य अनुशासनों में।

डॉ० रामविलास शर्मा यह मानते हैं कि जिस समाज में वर्ग भेद कायम हो, उसमें वर्गों से परे होकर साहित्य रचना नामुमकिन है। किंतु डॉ० शर्मा साहित्य को वर्ग संघर्ष का फार्मूला—बद्ध प्रचार नहीं मानते। उनके अनुसार— “विभिन्न वर्ग एक ही समाज—व्यवस्था में रहने के कारण एक—दूसरे को प्रभावित करते हैं; उनकी वर्ग—संस्कृति को परखते हुए इस परस्पर प्रभाव को भी देखना चाहिए।”²

सिर्फ वर्ग को ध्यान में रखकर, जब साहित्यकार वर्ग— संस्कृति के परस्पर संबंध को भूला देता है, तो वह रचना फार्मूलाबद्ध होती है। डॉ० शर्मा ने एंगेल्स को उद्धृत करते हुए लिखा है— “एंगेल्स ने कवि प्लाटेन के बारे में लिखा था, ‘प्लाटेन की गलती यह थी कि वह अपनी बुद्धि की उपज को कविता समझता था।’”³ कविता बुद्धि का व्यापार नहीं है। साहित्य कला का रूपमय माध्यम है। जब साहित्य को वर्गवादी व्याख्यानुसार चित्रणों में गूँथा जाता है तो डॉ० शर्मा कहते हैं ‘वह जीवन के निष्कर्ष होते हैं। जीवन के चित्र नहीं’ अर्थात् उन्होंने साहित्य में जनता और समाज की संश्लिष्ट संस्कृति को महत्व दिया है।

प्रगतिशील साहित्य ने समसामयिक एवं वैश्विक परिस्थितियों पर विशेष ज़ोर दिया। प्रगतिवाद की शुरुआत ही साहित्य में बढ़ती यथार्थवादी प्रवृत्ति और साधारण जन की ओर उसके झुकाव से हुआ। प्रगतिशील साहित्य का गहरा जुड़ाव राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से था। प्रगतिशील दृष्टिकोण के नजरिये से भक्ति साहित्य के वैश्विक प्रगतिशील मूल्य लक्षित किये जा सकते हैं। भक्ति साहित्य भक्ति का दर्शन जीवन की स्वीकृति का दर्शन है। अतः जीवन को कर्ममय बनाने की प्रेरणा इस साहित्य का मूल तत्व रहा है जिसे डॉ० शर्मा ने तुलसी में सर्वाधिक लक्षित किया किया है। डॉ० शर्मा की दृष्टि में तुलसी में जनसाधारण के जीवन का चित्रण सबसे अधिक है। वह तुलसी को न सिर्फ जातीय कवि मानते हैं बल्कि तुलसी के सामाजिक संदर्भ को देखते हुये कहते हैं "तुलसी किसानों के प्रतिनिधि कवि हैं।" वहीं वह कबीर के महत्व को भी नहीं भूलते और कबीर के लिए लिखते हैं "कबीर शहरी कारीगरों के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी सीधी टक्कर जुलाहे से माल खरीदने वाले सौदागरों से थी।" यह उनकी दृष्टि में दो प्रमुख जीवन दृष्टियों का भेद है। साथ ही वह जायसी को सांस्कृतिक समन्वय का कवि नहीं मानते हैं। इसलिए जायसी जैसे कवि को सांस्कृतिक समन्वय का कवि न कहकर जन संस्कृति का कवि कहना चाहिए, क्योंकि जायसी में जनसंस्कृति का जो बिम्ब उभरता है वह उन्हें एक सामान्य जन चेतना का कवि सिद्ध करता है। सूरदास को डॉ० शर्मा ने आत्मविभोर गायक माना है "सूर शृंगार और वात्सल्य के कवि नहीं हैं, वह संसार में प्रेम के श्रेष्ठ गायकों में से हैं।" सूरदास ने सामंती व्यवस्था में प्रेम का चित्रण दिखलाकर उस व्यवस्था को चुनौती दी है।

डॉ० शर्मा ने सन् 30 के बाद ही हिंदी साहित्य में एक व्यापक और बुनियादी परिवर्तन को लक्ष्य कर रहे थे। उनके अनुसार 'यह परिवर्तन अपने आप हुआ था, किसी संगठन द्वारा निर्देश देने पर या उससे संचालित होकर यह परिवर्तन नहीं हुआ।' इस परिवर्तन को उन्होंने प्रेमचंद के साहित्य से ही लक्षित किया है। "यह परिवर्तन यथार्थवाद की ओर है। प्रेमचंद ने पहले महायुद्ध के समय ही 'सेवासदन' लिखकर इस यथार्थवाद के लिए ज़मीन तैयार की थी।" इस पृष्ठभूमि से जुड़कर प्रगतिशील साहित्यकारों ने जिनमें अमृतलाल नागर, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, वृंदावनलाल वर्मा, सुमन प्रमुख हैं, साहित्य को यथार्थवाद की नई ज़मीन दी, जिसमें साहित्य और वर्तमान परिस्थितियों का बहुत गहरा संबंध स्थापित हुआ।

मार्क्स ने जगत् की परिवर्तनवादी व्याख्या की। वह विश्व में एक मात्र परिवर्तन को ही स्थाई मानता है। उसने मनुष्य-समाज की भी विकासवादी व्याख्या प्रस्तुत की। डॉ० शर्मा ने भौतिकवादी और भाववादी दर्शनों के मध्य पार्थक्य को चित्रित करते हुए लिखा है— "भौतिकवादी दर्शन पूर्ण होने का दावा नहीं कर सकता क्योंकि वह ज्ञान को विकासमान समझता है।" इस कारण वह सत्य को भी विकासमान और परिस्थितियों से प्रभावित मानता है। डॉ० शर्मा कहते हैं— "साहित्य किसी ऐसे शाश्वत सत्य का चित्रण नहीं कर सकता, जो सामाजिक परिस्थितियों से परे हो। जिस समाज में वर्ग-संघर्ष कायम हो, उसको चित्रित करने वाला साहित्य वर्गों से परे नहीं हो सकता।" अतः साहित्य में शाश्वत सत्य या शाश्वत मूल्यों की स्थापना करना भूल है। किन्तु साहित्य में शाश्वत मूल्यों और सत्यों की स्थापना को लेकर कई प्रश्न उठाए गए हैं।

वास्तव में चिरंतन सत्य की अवधारणा भाववादी दर्शन की प्रमुख विशेषता है; जिसमें भौतिकवादी यथार्थवादी ऐतिहासिक दृष्टि को अशाश्वत क्षणिक और सामयिक महत्व का माना। प्रगतिशील साहित्य जिस यथार्थवाद की भूमि पर आगे बढ़ रहा था उसमें समसामयिक परिस्थितियों का विशेष महत्व था। इस कारण

चिरंतन साहित्यिक मूल्य के प्रश्न को लेकर साहित्य को परिस्थितियों से अलग कर उसे यथार्थवाद की वास्तविक भूमि से अलगाना था।

साहित्य में स्थायी मूल्यों की समस्या प्राचीन साहित्य के मूल्यांकन से जुड़ी हुई है। साहित्य द्वारा प्रक्षेपित मूल्यों, चाहे वह युगों से आती मानवतावादी धारणा हो; या मनुष्य के सौंदर्य प्रेम से जुड़ी कल्पनाएँ या मनुष्य की रसग्राही दृष्टि के नियामक कोई विषय—वस्तु आदि को साहित्य का स्थायी गुण माना जाता रहा है। डॉ० रामविलास शर्मा ने प्रगतिशील साहित्य और प्रगतिशील समीक्षा के अंतर्गत इस समस्या पर वस्तुवादी दृष्टिकोण से 'साहित्य के स्थायी मूल्यों की समस्या' कालिदास शीर्षक लेख में विचार करते हैं। वह कहते हैं कि साहित्य इंद्रियबोध, भावों और विचारों का सुंदर सामंजस्य है। इस कारण उनका मानना है कि 'उच्च साहित्य में महान विचारों, गंभीर भावों और सूक्ष्म इंद्रियबोध का समन्वय मिलता है, इनका असंतुलन साहित्य के प्रभाव और उसके कलात्मक सौंदर्य को कम करता है।' कालिदास के साहित्य का मूल्यांकन करते हुये उन्होंने साहित्य को स्थायी माने जाने वाले कारणों का विस्तार से वर्णन करते हैं। कालिदास का साहित्य हमारे लिए मूल्यवान है मगर उस तरह नहीं जैसा की माना जाता रहा है। डॉ० शर्मा कालिदास को चारण कवि नहीं मानते; न ही उनके साहित्य के प्रत्येक तत्व को मूल्यवान मानते हैं। वह उन्हें मुख्यतः एक सौंदर्योपासक 'लिरिक कवि' कहते हैं। कालिदास के साहित्य में मानव—जीवन के सर्वांगीण चित्र नहीं है; जैसे व्यास और वाल्मीकि में है। किंतु कालिदास ने अपने साहित्य द्वारा हमारे इंद्रियबोध और भाव जगत को समृद्ध किया है— 'उमा का सौंदर्य, वाल्मीकि का सात्विक क्रोध, इंद्रुमति के लिए अज का शोक, भारत की धरती से कवि का प्रेम— ये सभी साहित्य के स्थायी तत्व हैं। इन्हें कवियों ने तुरंत नहीं पा लिया, इन्हें पाने के लिए उन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का लंबा मार्ग तय करना पड़ा था। कालिदास ने उन मानव—मूल्यों को सहेजा और अनेक दिशाओं में उन्हें अधिक विकसित किया।"¹¹ किंतु विचारों के स्तर पर कालिदास के साहित्य से सहमत होना असंभव है। इस तरह किसी भी युग के साहित्य के स्थायी मूल्य को उस युग के साहित्य की अमरता या शाश्वतता का प्रश्न नहीं है; बल्कि साहित्य या कला के निरंतर विकास का प्रश्न है।

सन्दर्भ-सूची :-

1. शर्मा रामविलास, 'मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण—1984, पृष्ठ—28
2. शर्मा रामविलास, 'मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण—1984, पृष्ठ—239
3. शर्मा रामविलास, 'मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण—1984, पृष्ठ—232
4. शर्मा रामविलास (सं), 'लोकजागरण और हिन्दी साहित्य', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति 2013, पृष्ठ—73
5. शर्मा रामविलास (सं), 'लोकजागरण और हिन्दी साहित्य', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति 2013, पृष्ठ—73

6. शर्मा रामविलास (सं), 'लोकजागरण और हिन्दी साहित्य', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति 2013, पृष्ठ-27
7. शर्मा रामविलास, 'मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-1984, पृष्ठ-54
8. शर्मा रामविलास, 'मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-1984, पृष्ठ-54
9. शर्मा रामविलास, 'आस्था और सौंदर्य', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 1961, तीसरी आवृत्ति, 2015, पृष्ठ-16
10. शर्मा रामविलास, 'मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-1984, पृष्ठ-74
11. शर्मा रामविलास, 'आस्था और सौंदर्य', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 1961, तीसरी आवृत्ति, 2015, पृष्ठ-70

पता (पत्राचार के लिए)

20, पी. बी. एम. रोड, चांपदानी, पोस्ट- बैद्याबाटी

जिला- हुगली (पं बंगाल), पिन- 712222,

मो-9830274389,

ईमेल-sulekha2503@gmail.com



प्रेमचंद के साहित्य की प्रासंगिकता

डॉ. सुनीता राठौर

सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय एम. एम. आर. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चाम्पा।

प्रेमचंद का साहित्य अतुलनीय है, ये मानवतावादी है। इनके साहित्य में पूंजीवाद, जातिवाद, भाषावाद, साम्प्रदायिकता आदि अनेक समस्याएं विद्यमान हैं। प्रेमचंद जिस सामाजिक और राजनीतिक क्रांति के अग्रदूत थे, वह क्रांति अभी अधूरी है, क्योंकि, समाज आज भी उन समस्याओं से जूझ रहा है, जिनसे प्रेमचंद का समाज जूझा करता था, उनसे उबर नहीं सका है। प्रेमचंद पहले भी प्रासंगिक थे, और आज भी प्रासंगिक हैं। प्रेमचंद का साहित्य अपने समय, समाज और ऐतिहासिक स्थितियों से गहरे जुड़ा है। वे अपने काल और परिवेश से जुड़े हुए लेखक हैं, इसलिए उनके साहित्य में युग-बोध का आभास हमें होता है, वह आज भी परिलक्षित होता है। मुंशी प्रेमचंद भारतीय साहित्य के ऐसे साधक हैं, जिन्होंने आजीवन भारतीय जीवन की आशाओं, सपनों, संभावनाओं एवं दुर्बलताओं को अपनी वाणी दी। उनका साहित्य भारतीय समाज संस्कृति और सभ्यता का दर्पण स्वरूप है। प्रेमचंद जी के साहित्य में अधिकांशतः किसानों की समस्या, कर्ज की समस्या, गरीबी, बेईमानी, आडंबर प्रियता तथा नारी जीवन की समस्याएं आदि देखने को मिलती हैं। प्रेमचंद की रचनाओं में शहर की अपेक्षा गांव का वर्णन अधिक देखने को मिलता है। ईक्कीसवीं सदी में आज गांव कितने ही बदल गए हो, लेकिन गाँवों की यह निश्छलता आज भी कही न कही देखने को मिलती है।

कफन कहानी प्रेमचंद की यथार्थ के धरातल पर लिखी गई, भारतीय समाज के कड़वे सच का दर्पण है। प्रेमचंद की कहानी कफन में स्वार्थ की पराकाष्ठा का वर्णन बड़े ही सहज ढंग से देखने को मिलता है। घीसू और माधव का प्रसव के दर्द से कराहती बुधिया के पास इस कारण से न जाना, कि एक यदि चला गया तो दूसरा उसके आलुओं पर हाथ साफ कर जाएगा— जैसे हम देखते हैं ये उदा. कफन कहानी में “माधव को भय था कि वह कोठरी में गया, तो घीसू आलुओं का बड़ा भाग साफ कर देगा। बोला “मुझे वहाँ जाते डर लगता है।” इस प्रकार इस कहानी में अपने पेट की आग शांत करने के लिए मनुष्यता को भूल जाने की हद तक चले जाने का वर्णन देखने को मिलता है।

प्रेमचंद जी का गबन उपन्यास एक सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यास है। इसमें सामाजिक यथार्थ और पात्रों के जीवन में वैयक्तिक यथार्थ के चित्रण द्वारा उन्होंने सामाजिक आदर्श तथा वैयक्तिक आदर्श की प्रतिष्ठा की है। इसमें मध्यम वर्ग के जीवन को केन्द्र बनाकर मध्यवर्गीय सामाजिक, परिवारिक एवं वैयक्तिक समस्याओं

का बड़ा सजीव आदर्शोन्मुख यथार्थवादी चित्रण किया गया है। मध्यम वर्ग का जीवन झूठ और दिखावे पर आधारित है। इस यथार्थ को जालपा, रमानाथ, रतन, इन्दुभूषण, मणि—भूषण, दयानाथ तथा कलकत्ता प्रसंग की कथा के माध्यम से चित्रित किया गया है। जब तक झूठ और दिखावे का जीवन जीते हैं, तब तक उनके जीवन में समस्याओं पर समस्याएं खड़ी होती जाती हैं, रमानाथ का जीवन इसका प्रमाण है।

आभूषणप्रियता के दोषों का यथार्थ चित्रण करते हुए मानवीय गुणों को ही सच्चा आभूषण मानने के आदर्श की स्थापना की गई है।

अनमेल और वृद्ध-विवाह से उत्पन्न सामाजिक यथार्थ को रतन और इन्दुभूषण के अभिशप्त दाम्पत्य जीवन के माध्यम से उभारा गया है। उसके साथ ही परिवार में नारी की पराधीन स्थिति, संयुक्त परिवार के दोषों आदि के चर्चा की तस्वीर प्रस्तुत कर नारी स्वतंत्रता और शिक्षा तथा संयुक्त परिवार के बन्धन से उसकी मुक्ति सामाजिक और पारिवारिक आदर्श की स्थापना की गयी है।

बेकारी की समस्या एवं, स्वराज्य की समस्या को भी उभारा है, राजनैतिक यथार्थ स्थिति का चित्रण करते हुए प्रेमचंद ने स्पष्ट किया है, कि जब तक सामान्य जनता राष्ट्रीय आन्दोलन में पहल नहीं करेगी, तब तक स्वराज्य का वास्तविक लाभ—जनता को प्राप्त नहीं होगी।

‘गबन’ उपन्यास में जालपा द्वारा आभूषण प्रियता भी एक ज्वलंत समस्या बन जाती है, जिसके कारण रमानाथ झूठे दिखावे के लिए पैसे का गबन करता है, जो आगे चलकर विकराल समस्या बन जाती है।

बचपन से ही जालपा की मां के द्वारा जालपा में आभूषणों के प्रति प्रेम की भावना थी। बचपन से ही उसे नकली चन्द्रहार के प्रति प्रेम था, किन्तु युवावस्था में विवाह के अवसर पर ससुराल से जब चढ़ावे में चन्द्रहार नहीं आता है तो उसे अपना जीवन व्यर्थ सा लगने लगता है। स्वयं प्रेमचंद ने गबन में स्पष्ट किया है — “जालपा को गहनो से जितना प्रेम था, उतना कदाचित संसार की और किसी वस्तु से न था। और इसमें आश्चर्य की कौन—सी बात थी? जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी, उस वक्त उसके लिए सोने के चुड़े बनवाये गये थे।”

इस प्रकार जालपा की आभूषण प्रियता के फलस्वरूप ही रमानाथ कर्ज के भार से दबकर दुःखी और निरुपाय हो जाता है। आभूषण की ईच्छापूरी होते ही जालपा के जीवन में निखार तथा चहल—पहल उत्पन्न हो जाती है।

इस प्रकार ‘गबन’ उपन्यास में मध्यमवर्ग की मिथ्या प्रदर्शन भावना, अनमेल विवाह, रिश्वत खोरी पुलिस प्रशासन के हथकण्डों का चित्रण कर प्रेमचंद जी ने इनसे सावधान या दूर रहने का अप्रत्यक्ष सुझाव दिया है। इस प्रकार प्रेमचंद जी का ‘गबन’ उपन्यास वर्तमान युग में प्रासंगिकता लिए हुए है।

प्रेमचंद जी का उपन्यास ‘गोदान’ यथार्थ पर आधारित सबसे महत्वपूर्ण महाकाव्यात्मक कृति मानी जाती है। जिसकी रचना प्रेमचंद ने 1936 में की थी। उपन्यास में ग्रामीण स्तर पर किसानों के जीवन की त्रासदी को स्वाभाविक, सरल और सहज रूप में दिखाया गया है। ‘गोदान’ उपन्यास का नायक होरी है। होरी पर विपत्ति उसके बेटे गोबर के अंतरजातीय विवाह के कारण आता है। होरी के बेटे गोबर को दूसरी जाति की एक विधवा

लड़की से प्रेम हो जाता है। वह उससे गर्भवती हो जाती है। गोबर उसे छोड़कर भाग जाता है। गर्भवती बहू को होरी और धनिया अपने घर में ही रख लेते हैं। समाज में पंचायती व्यवस्था होती है जो समाज की, मान मर्यादा की रक्षा करता है पंचायती के द्वारा होरी को जाति से बाहर कर दिया जाता है। सामूहिकता पर आधारित ग्रामीण जीवन में एक दूसरे के सहयोग के बिना किसान का जीना असंभव हो जाता है। इसलिए जब वह जाति में आने के लिए पंचायतों का पांव पकड़ने है तो वही पंचायत साजिश कर उस पर अस्सी रूपये का जुर्माना लगा देता है। जुर्माना अदा करने में उसका सारा अनाज पंचों के घर पहुंच जाता है।

यह उपन्यास किसान के क्रमिक दरिद्रीकरण की शोक गाथा है। पांच बीघे खेत का मालिक खेत को देकर मजदूर बन जाता है। उपन्यास का एक धूर्त पात्र झिंगुरी सिंह कहता है 'कानून और न्याय उसका है, जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे, कोई जमींदार किसी कास्तकार के साथ सख्ती न करें, मगर होता क्या है। रोज ही देखते हो। जमींदार मुसक बंधवा के पिटवाता है और महाजन लात और जूते से बात करता है। जो किसान पोढ़ा है, उससे न जमींदार बोलता है, न महाजन। ऐसे आदमियों से हम मिल जाते हैं और उनकी मदद से दूसरे आदमियों की गर्दन दबाते हैं।

आज भी वर्तमान में भारतीय किसान की दशा होरी जैसी ही है। 'गोदान' का नायक होरी की यातना केवल यहीं तक सीमित नहीं है कि उसे आर्थिक व्यवस्था ने कितना कुचल डाला है, बल्कि यह है, कि उस अवस्था में वह अपने उन दायित्वों को सम्पन्न नहीं कर पाता। वह जीवन के अंत तक गोदान के लिए पैसे भी नहीं जुटा पाता, जो उसकी आत्मा को यह लोक न सही, परलोक में शांति दे सके।

समाज में जातिगत भेदभाव को भी बताया गया है, गोदान उपन्यास होरी और धनिया को इसी जातिगत भेदभाव की वजह से उस समय उसका समाज में हुक्का पानी बंद हो जाता है, जब गोबर झुनिया को प्रेमविवाह के तहत् घर लाने के लिए मजबूर हो जाता है तो उसे इसके प्रायश्चित के लिए जुमाने भी भरने पड़ते हैं। अंतरजातीय विवाह को लेकर प्रेमचंद जी ने जो इस प्रकार की समस्या दर्शाई है, वह आज भी प्रासंगिक है।

'गोदान' में प्रेमचंद ने नारी विमर्श को भी दिखाया है। पंडित जी द्वारा छेड़छाड़ किये जाने पर झुनिया कहती है 'इस फेर में न रहना पंडित जी। मैं अहीर की लड़की हूं। मूछ का एक-एक बाल नुचवा लुंगी। यही लिखा है, तुम्हारे पोथी-पथरे में कि दूसरे की बहू बेटी को अपने घर में बंद करके बेज्जित करें।..... हांडी उसके मूह पर दे मारी।'

'सद्गति' कहानी मुंशी प्रेमचंद की सामाजिक कहानियाँ हैं। 'सद्गति' कहानी में भारतीय समाज की कुव्यवस्था की कुरीतियों और रूढ़ियों ने आम आदमी को किस प्रकार मरने के लिए मजबूर किया है। इसी का वर्णन किया गया है। यह कहानी यथार्थ वादी है, जिसमें सामाजिक विषमताओं के चलते शोषित एवं पीड़ित समाज के घोर दर्दनाक स्थिति को दिखाया गया है यह एक कारुणिक कहानी है, जो पाठक के आंखों में आंसू डबडबवा देते हैं।

दुःखी चमार जाति का एक गरीब इंसान है। वह अपनी पुत्री के विवाह के लिए शुभ मुहूर्त निकलवाने के लिए पंडित के पास जाता है। सगुन विचारने के बदले पंडित जी ने दुःखी को अपने घर के काम करने के लिए

कहा। दुःखी तैयार हो गया। दुःखी सब काम किया, परन्तु लकड़ी में एक मोटी गांठ थी वो, इसलिए नहीं फट रही थी। गांव के गोड़ ने उसके लकड़ी फोड़ने में मदद की, किन्तु फिर भी नहीं फटा, दुःखी भूख प्यास में व्याकुल था, फिर चिलम पीया, उसके बाद लकड़ी की गांठ फटी। लकड़ी फाड़ने के बाद दुःखी बेसूध होकर गिर पड़ा काम पूरा हो गया था। दुःखी मर चुका था। पंडित जी चमार मोहल्ले में लाश ले जाने का संदेश भेजा क्योंकि गोड़ सारी सच्चाई जानता था। तो उसने सभी चमारों को लाश न ले जाने की सलाह दी, कोई लाश उठाने न आया लाश से दुर्गन्ध आ रही थी, पं. घासीराम जब किसी को नहीं देखा तो स्वयं एक रस्सी का फन्दा दुर्गन्धमय लाश के एक पैर में डाला और उसे गांव से बाहर घसीट कर ले गया। वापिस आकर गंगाजल से स्वयं को पवित्र किया, “उधर दुखी की लाश को खेत में गीदड़ और गिद्ध कुत्ते और कौए नोच रहे थे। यही जीवन पर्यन्त की भक्ति, सेवा और, निष्ठा का पुरस्कार था।”

‘सद्गति’ कहानी में प्रेमचंद जी ने जाँति-पाँति के भेदभाव को भी चित्रित किया है – देखते हैं— ‘सद्गति’ कहानी में पंडिताइन ने भवें चढ़ाकर कहा, “तुम्हें तो जैसे पोथी पत्रों के फेम में धरम-करम किसी बात की सुधि ही नहीं रही। चमार हो, धोबी हो, पासी हो, मुंह उठाये घर में चला आये। हिन्दू का घर न हुआ, कोई सराय हुई। कह दो दाढ़ीजार से चला जाए, नहीं तो इस लुआठे से मुंह झुलस दूंगी। आग मांगने चले है।”

प्रेमचन्द ने ‘ठाकुर का कुंआ’ कहानी के माध्यम से हमारे समाज में व्याप्त जातिप्रथा की सबसे घृणित परंपरा छुआछूत के कारण तिरस्कार, अपमान और मानवीय अधिकारों से वंचित जीवन जी रहे अछूतों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को बताया है। ‘ठाकुर का कुंआ’ स्वच्छ पानी के लिए तरसते अछूत जीवन की वास्तविक कहानी है। ‘ठाकुर का कुंआ’ मुंशी प्रेमचंद की एक यथार्थवादी कहानी है। इस कहानी में निम्नवर्गीय समाज की विडम्बनाओं को बताया गया है। भारतीय समाज में जाति-पाति के नाम पर उच्च वर्ग, निम्नवर्गीय समाज को किस प्रकार मरने के लिए मजबूर करता है। इसी कड़वी सच्चाई को प्रेमचंद ने बताया है जोखू और गंगी निम्नवर्गीय दम्पति है। जोखू कई दिन से बीमार है, उसके घर में गंदा पानी है तो गंगी ठाकुर के कुंए में चोरी से पानी लेने जाती है, क्योंकि ठाकुर के कुंए में निम्न जाति के लोगों को पानी नहीं भरने देते हैं। गंगी जब पानी भरने के लिए करती है तो ठाकुर का दरवाजा खुल जाता है तो गंगी भागते हुए आती है और “घर पहुँचकर देखती है कि, जोखू लोटा मुंह से लगाये वही मैला-गन्दा पानी पी रहा है।”

‘मंत्र’ कहानी में प्रेमचंद जी ने मानव स्वभाव का सजीव चित्रण किया है। इस कहानी में ये यह बताना चाहते हैं, कि ग्राम और नगर तथा स्वार्थ और सेवा में कितना अंतर है? प्रेमचंद जी ने इस कहानी में स्पष्ट किया है, कि मानव की महानता मानव सेवा में है। प्रायः नगरों के गुणी और धनी लोग कठोर हो जाते हैं। वे गरीब और ग्रामीण लोगों की ओर ध्यान नहीं देते। उन्हें समय की पाबंदी, समय पर खेलना आदि मानवता से अधिक प्रिय है। इसके विपरीत दरिद्र, अभावग्रस्त और अनपढ़ ग्रामीणों में मनुष्यता का उज्ज्वल प्रकाश सुरक्षित है। किसी मनुष्य के दुःख-दर्द को सुनकर वे अनायास ही उसकी सहायता को तत्पर हो जाते हैं। ईर्ष्या, द्वेष, अथवा प्रतिरोध की अग्नि भी उनकी मानवता के शीतल जल से शांत हो जाती है।

‘मंत्र’ कहानी का प्रमुख पात्र भगत है, उसका सातवां और अंतिम पुत्र शैया पर है, वह स्थानीय डॉक्टर

चड्डा के पास अपने पुत्र के इलाज हेतु आता है, लेकिन डॉ. चड्डा का वह समय मरीजो को देखने का नहीं होता बल्कि मनोरंजन का होता है, इसलिए वह उस समय बच्चे को देखने से इंकार कर देता है, उसका मनोविनोद एक गरीब के प्राणों से अधिक मूल्यवान है, और अंत में उसके पुत्र की मृत्यु हो जाती है। डॉ. चड्डा के पुत्र कैलाश को सर्प डस देता है, कोई बचाने वाले नहीं रहते हैं तभी भगत के मन में स्वार्थ प्रवृत्ति टल जाती है, और उसकी कर्तव्य भावना जागृत हो जाती है और वह मंत्र के प्रभाव से कैलाश को बचा लेता है वह धन की बिल्कुल ईच्छा नहीं करता और लौट आता है। इस प्रकार यह कहानी आदर्शवादी कहानी है। मंत्र कहानी में बूढ़े ने हाथ जोड़कर कहा – “हुजूर बड़ा गरीब आदमी हूं। मेरा लड़का कई दिन से..... डॉ. साहब ने सिगार जलाकर कहा – कल सबेरे आओ, कल सबेरे, हम इस वक्त मरीज को नहीं देखते।”

प्रेमचंद की कहानी ‘बूढ़ी काकी’ मानवीय करुणा की भावना से ओतप्रोत कहानी है। इसमें लेखक ने ‘बूढ़ी काकी’ के माध्यम से समाज परिवार की उस समस्या को उठाया है, जहां वृद्धजनों से उनकी जायदाद संपत्ति लेने के बाद उनकी उपेक्षा होने लगती है। केवल इतना ही नहीं बात बात पर उन्हें अपमानित और तिरस्कृत किया जाता है। भरपेट भोजन तक भी नहीं मिलता। सामाजिक यथार्थ के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद ने मनुष्य की स्वार्थी भावनाओं का घृणित एवं वीभत्स रूप चित्रित किया है। ‘बूढ़ी काकी’ का अपना कोई नहीं था, इसलिए सारी सम्पत्ति अपने भतीजे बुद्धिराम के नाम कर देती है, परन्तु बुद्धिराम पैसे का लालची बहुत जल्दी ही बदलने लगता है बुद्धिराम की पत्नी रूपा भी कठोर स्वाभाव की थी। रूपा को, बूढ़ी काकी को बहुत तकलीफ देने के बाद अंतिम में पश्चाताप होता है, तब उसे विभिन्न प्रकार की व्यंजनों के साथ भोजन देती है, और माफी मांगती है, बूढ़ी काकी को उस समय स्वर्गिक आनन्द की अनुभूति होती है। इस कहानी का उद्देश्य है, कि वृद्धजनों के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार अनुचित है। रूपा अंतिम में जब परमात्मा से डर कर बूढ़ी काकी से माफी मांगी और भोजन लाकर दी तब की बात है – “ भोले-भाले बच्चे की तरह जो मिठाईयां पाकर मार और घुड़कियां सब भूल जाता है। बूढ़ी काकी बैठी हुई खाना खा रही थी, उनके एक-एक रोएं से सच्ची दुआएं निकल रही थी और रूपा बैठी ये रूहानी नजारा देख रही थी।”

‘पूस की रात’ कहानी में प्रेमचंद जी ने यह बताने की कोशिश की है, कि हमारे किसान किस तरह कठिन परिस्थितियों में जी रहे हैं। आखिर वे भी इंसान हैं। प्रकृति की कठोर आपदाओं का गरीब असहाय किसान सामना नहीं कर पाते और फलस्वरूप अपना सब कुछ गंवा बैठते हैं जैसे कि हल्कू किसान ने किया।

आज भी जिंदा है, प्रेमचंद का हल्कू। मुंशी प्रेमचंद के हल्कू की तरह देश का किसान आज भी कर्ज में डूबा है, और आज भी खेती लाभकारी नहीं है। हल्कू की तरह आज भी किसान फसलों को जानवरो से बचाने के लिए रात भर जाग रहे हैं। मुन्नी खेत पर पहुंची तो उसके चेहरे पर उदासी थी, क्योंकि सारी फसल नष्ट हो चुकी थी। लेकिन हल्कू खुश था। मुन्नी ने चिंतित होकर कहा “अब मजूरी करके मालगुजारी करनी पड़ेगी। हल्कू का उत्तर था “रात को ठंड में यहां सोना तो न पड़ेगा। इस प्रकार प्रेमचंद की ‘पूस की रात’ कहानी की मूल समस्या गरीबी की है, जो किसान राष्ट्र के पूरे सामाजिक जीवन का आधार है, उसके पास इतनी ताकत भी नहीं है, कि “पूस की रात” की कड़कती सर्दी से बचने के लिए एक कंबल खरीद सके।

निष्कर्ष :-

प्रेमचंद एक प्रगतिशील और जनवादी लेखक है। तत्कालीन परिस्थितियों के परिपेक्ष्य में उन्होंने जो कुछ भी देखा, सुना, समझा उसे अपनी रचनाओं के माध्यम से यथावत प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आज हमें आवश्यकता इस बात की है, कि हम प्रेमचंद के पात्रों की समस्याओं को अपने समाज से विमुक्त करने का प्रयास करें और तब शायद हम कह सकेंगे कि हमने वास्तविक आजादी हासिल कर ली। इस प्रकार प्रेमचंद के साहित्य की पहले भी प्रासंगिकता थी, और वर्तमान में और भी ज्यादा प्रासंगिकता है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :-

1. हिन्दी कथा साहित्य, बी.ए. प्रथम वर्ष हेतु, हिन्दी साहित्य (द्वितीय प्रश्नपत्र) संपादक—डॉ. सत्यभामा आड़िल, अधिकृत प्रकाशक, अजय प्रकाशन, दर्जी लाइन मालवीय रोड, रायपुर (छ.ग.) पृ. सं. 29
2. नवबोध, परीक्षा सार 2014 हिन्दी साहित्य, बी.ए. प्रथम वर्ष (द्वितीय प्रश्नपत्र) नवबोध शिक्षा समिति द्वारा सम्पादित, नवबोध प्रकाशन, 7, समता कॉलोनी, रायपुर (छ.ग.) पृ. सं. 32
3. गोदान (उपन्यास) प्रेमचंद।
4. सद्गति (कहानी) प्रेमचंद।
5. मंत्र (कहानी) प्रेमचंद।
6. बूढ़ी काकी (कहानी) प्रेमचंद।
7. पूस की रात (कहानी) प्रेमचंद।

मो. नं. — 9907987060

sunitarathore1503@gmail.com



वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति, धर्म, शिक्षा और साहित्य का प्रसार और प्रासंगिकता

दुम्पा शर्मा

विद्यार्थी, स्नातकोत्तर, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय।

प्रत्येक राष्ट्र की पहचान उसकी सांस्कृतिक और धार्मिक धरोहर तथा शैक्षिक और साहित्यिक मूल्यों से होती है। भारतीय संस्कृति धर्म, शिक्षा और साहित्य का स्वरूप निःसंदेह रूप से समन्वयवादी तथा लोक कल्याणकारी रहा है। भारतीय सभ्यता महासागर के समान है। विश्व की तमाम संस्कृतियां आकर इसमें समाहित हो गई हैं। आज जिसे आर्य सभ्यता, हिंदू संस्कृति आदि नामों से जाना जाता है। वस्तुतः वह भारतीय संस्कृति ही है। जिसकी धारा सिंधु घाटी की सभ्यता, प्रागवैदिक और वैदिक संस्कृति से झरती हुई नवोन्मेष काल तक बहती रही है। अनेकानेक धर्मों, सभ्यताओं और संस्कृतियों को अपने में समाहित किए हुए इस भारतीय संस्कृति को सामासिक संस्कृति ही कहना उचित है। अनेकता में एकता के साथ हमारे समाज की रचनात्मक ऊर्जा अधिकाधिक मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाती रही है। यह सांस्कृतिक अनुशासन भारतीय समाज की विशिष्टता है। 'रवींद्रनाथ ठाकुर' का एक गीत है—'यहां आर्य भी आए, अनार्य भी आए, द्रविड़, चीनी, शक, हूण, पठान, मुगल सभी यहां आए, लेकिन कोई भी अलग नहीं रहा, सब इस महासागर में विलीन होकर एक हो गए। 'पाण्डुकरंग सदाशिव' ने संस्कृति की व्याख्या करते हुए कहा है—'संस्कृति मनुष्य के त्याग, संयम, सेवा, प्रेम, ज्ञान, विवेक आदि भावों को जगाती है, संस्कृति का अर्थ है—अंधकार से प्रकाश की ओर, भेद से अभेद की ओर, कीचड़ से कमल की ओर, अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर जाना, सारे धर्मों का मेल, सारी जातियों का मेल, ज्ञान—विज्ञान का मेल, मानव जाति के बेड़े को मंगल की ओर ले जाना ही संस्कृति है। मनुष्य के लौकिक—पारलौकिक सर्वाभूयोदय के अनुकूल आचार—विचार की संस्कृति है।'¹ तो वहीं डॉ. मोहन सिंह का मानना है कि "मानव जीवन के विभिन्न पक्षों और पहलुओं का व्यापक चित्र भारतीय संस्कृति में उपलब्ध है। यह अत्यंत दुर्लभ है। यह एक व्यापक और विशाल सांस्कृतिक धारा है, जो विभिन्न उपधाराओं से संपन्न एवं पुष्ट हुई है। ऋषि—मुनियों की प्राचीन भारतीय मनीषा के संस्कारों के साथ शक, हूण, पठान, तुर्क, मुगल और अरब संस्कारों के सम्मेलन ने इस सामाजिक संस्कृति को स्वरूप दिया है। यह शताब्दियों की यात्रा से पुष्ट हुई है।"² 'ऐतरेय ब्राह्मण' में संस्कृति को स्वरूपित करने का प्रयास लक्षित होता है। वहां संस्कृति मानव के वैयक्तिक और समष्टिगत उत्कर्ष की प्रतीत कराती है। 'छन्दोग्योतपनिषद्' में मनुष्य को मानवतावादी चेतना से अनुप्राणित करने वाली दृष्टि को संस्कृति की व्याख्या प्रदान की है। जीवन में, समाज में मानवीय दृष्टि की महत्ता निर्विवाद है, क्योंकि इसी भावना

के परिणामतः सभी धर्म, कर्म, सम्प्रदाय, सदाचार समन्वित होते हैं। ऐसी विशिष्ट संस्कृति के प्रति भारतीय चिंतकों के मत इस प्रकार हैं—रवींद्रनाथ ठाकुर—“संस्कृति मस्तिष्क का जीवन है।”³ रामधारी सिंह दिनकर— “संस्कृति जिंदगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जागृत होकर समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्मो लेते हैं।”⁴ डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में —“संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। जीवन के नानाविध रूपों का समुदाय ही संस्कृति है।”⁵

भारतीय संस्कृति बाहर से बहुरंगी प्रतीत होती है, लेकिन अंतरण दृष्टि से एक है। अन्य देशों की संस्कृतियां तो समय की धारा के साथ-साथ नष्ट होती रही हैं किंतु भारत की संस्कृति आदिकाल से ही अपने परंपरागत अस्तित्व के साथ अजर-अमर बनी हुई है। यह संस्कृति अमर बेल के पौधे की तरह है, जिसकी जड़े दिखाई नहीं देती है, लेकिन हमेशा पुष्पित, पल्लवित और हरित दिखाई देती भारतीय संस्कृति की जड़े बहुत गहरी हैं। कहा जाता है कि भौगोलिक दृष्टि से भारत विविधताओं का देश है, फिर भी सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व प्राचीनकाल से बना हुआ है। यहां आर्थिक और सामाजिक भिन्नता भी विद्यमान है लेकिन इन विभिन्नताओं के कारण ही भारत में अनेक सांस्कृतिक उपधाराएं विकसित होकर पल्लोवित हुई हैं। इसलिए यह पूरे विश्व के लिए एक मिसाल है कि अनेक भिन्नता के बावजूद भी भारत की पृथक सांस्कृतिक सत्ता बनी रही है। लोक-कल्याण की कामना भारतीय संस्कृति की विशेष पहचान है। इस संदर्भ में स्वामी विवेकानंद का मत है कि “संसार नहीं हम संसार के ऋणी हैं। यह तो हमारा सौभाग्य है कि हमें संसार में कुछ कार्य करने को मिला है। संसार की सहायता करने में हम वास्तव में स्वयं का ही कल्याण करते हैं।”⁶

बड़ों के लिए आदर और श्रद्धा भी भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। बड़े खड़े हैं, तो उनके सामने न बैठना, बड़ों के बैठने के लिए अपना स्थान छोड़ देना, उनको खाना पहले परोसना जैसी क्रियाएं अपनी दिनचर्या में प्रायः दिखाई देती हैं, जो हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है। युवा अपने बुजुर्गों का नाम लेकर संबोधन नहीं करते हैं, सभी छात्र-छात्राएं अपने शिक्षकों के पैर छूते हैं। मन, शरीर, वाणी, विचार, शब्द और कर्म में शुद्धता हमारे लिए महत्वपूर्ण है। इसलिए हमें कभी भी कठोर और अभद्र भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। भारतीय संस्कृति स्थिर एवं अद्वितीय है जिसके संरक्षण की जिम्मेदारी वर्तमान पीढ़ी पर है। इसकी उदारता और समन्वयवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है, किंतु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित भी रखा है। एक राष्ट्र की संस्कृति अनेक लोगों के दिल और आत्मा में बसती है। सर्वांगीणता, विशालता, उदारता और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य। संस्कृतियों की अपेक्षा भारतीय संस्कृति अग्रणी स्थान रखती है और इस वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान दर्ज कराती है।

यदि भारतीय संस्कृति पर एक दृष्टि डाले तो चार बातें बहुत ही स्पष्ट हैं— प्रथम, भारतीय संस्कृति प्रगतिशील रही है। द्वितीय, वह असांप्रदायिक है, उसकी अंतरधारा में चिंतन से सहिष्णुता की भावना का प्रवाह बहता रहा है। अनेक बार सांप्रदायिक वैमनस्य उभरे, उग्र हुए, फिर भी उन संप्रदाओं ने इस सहिष्णुता की भावना को तिलांजली कभी नहीं दी। सभी संप्रदाय अंत में गंगा की सहायक नदियां ही सिद्ध हुईं। तृतीय, भारतीय संस्कृति भारत के समस्त इतिहास के प्रति ममत्व की भावना है और चौथी बात, भारतीय संस्कृति की अखिल भारतीय भावना सहस्रों मील की दूरी पर स्थित बदरीनारायण, गंगोत्री, काशी, रामेश्वरम, पुरी, द्वारका जैसे तीर्थ

स्थानों की भक्ति और प्रेम से यात्रा करना भारत का हर व्यक्ति (वह चाहे जिस प्रांत का निवासी हो) अपना कर्तव्य मानता है। क्योंकि सांस्कृतिक दृष्टि से ये समस्त भारत को अपना देश समझते हैं। आचार्य शंकर द्वारा चार कोनों पर चार पीठों की जो स्थापना की गई उसके पीछे यही भावना थी। इसी भावना के वशीभूत होकर अयोध्या में राम (गोस्वामी तुलसीदास के राम, जो विष्णु के अवतार हैं), रामेश्वरम में शिव की उपासना करते हैं। 'निराला' के राम रामेश्वरम में शक्ति की उपासना करते हैं। शक्ति की पूजा का अनुष्ठान कहीं अधूरा न रह जाए, इसके लिए वे अपने नयन-कमल देवी को चढ़ाने के लिए तत्पर हो उठते हैं। कहां है इनमें शैवों, वैष्णवों और शाक्तों का वैमनस्य, 'तुलसीदास' के राम तो स्पष्ट कहते हैं—“शिवद्राही मम दास कहावा, सो नर मोहि सपनेहू नहिं भावा।”⁷

भारतीय संस्कृति के स्वरूप और स्वभाव की पहचान को यदि संक्षेप में सूत्रबद्ध किया जाए तो भारतीय संस्कृति अपने स्वभाव और स्वरूप में प्रगतिशील और समन्वयात्मक है। गंगा यमुना रूपी वैदिक तथा वैदिकेतर अन्यत धाराओं के संगम से बनी भारतीय संस्कृति इतिहास के किसी भी युग में स्थिर व जड़ नहीं रही है। यह निरंतर प्रवाहमान धार्मिक और साहित्यिक प्रभावों और आवेगों को अपने में समाहित करते हुए निरंतर गतिशील रही, निरंतर विकासमान रही। प्राचीनकाल के सभ्य संसार में भारत की स्थिति अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। हिंद महासागर के तट पर स्थित होने के कारण भारत की केंद्रीय स्थिति थी। इसलिए वह तत्कालीन सभ्य और सुसंस्कृत देशों के समुद्री भागों के बीच में स्थित होने के कारण उन देशों में फैली सभ्यताओं के संपर्क में आया। लेकिन सिर्फ मध्य में स्थित होने के कारण ही उन पर हमारी संस्कृति का प्रभाव नहीं पड़ा, बल्कि व्यापार के वृत्ति ने इसको और अधिक बढ़ावा दिया, क्योंकि संस्कृति का प्रसार व्यापार के साथ भी होता है। भारतीय संस्कृति के प्रसार में भारतवासियों की व्यापार यात्राओं ने अनुपम सहयोग प्राप्त किया। उस समय में भारतीयों को ज्ञात था कि पूर्वी द्वीप समूह मसालों और स्वर्ण के खानों से भरपूर है, इसलिए भारतीय नाविक और व्यापारी उन देशों की अत्यधिक यात्रा करते थे, जिनके कारण वहां की जातियां उनके संपर्क में आने लगीं और भारतीय संस्कृति इससे प्रभावित होने लगी।

प्राचीन ऋषि-मुनियों और बौद्ध धर्म के प्रचारकों में धार्मिक प्रचार का उत्साह अत्यधिक था, इसलिए वे भी व्यापारियों के साथ-साथ धर्म प्रचार के लिए विदेशों में जाते रहते थे। इनका जीवन त्याग एवं तपस्या के तेज से आलोकित रहता था। ये लोग अनेक मुश्किल बाधाओं का सामना करते और निःशंक होकर असभ्य जातियों को धर्मोपदेश देकर अपने धर्म में दीक्षित करते थे। इनका लक्ष्य विश्व में सत्य का प्रचार-प्रसार करना था। मध्य एशिया विभिन्न जातियों के निवास और उनकी संस्कृतियों के अवशिष्ट अवशेषों के लिए प्रसिद्ध रहा है। मौर्य साम्राज्य के विस्तृत, सम्राट अशोक के धर्म प्रचार तथा कुषाण शासकों के इस भाग पर अधिकार के कारण भी भारत का मध्य एशिया के साथ घनिष्ठ संपर्क स्थापित हो गया था। सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इस बात की पुष्टि की है कि मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति तथा बौद्ध धर्म का पूर्ण रूप से प्रचार था। मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति और धर्म प्रसार चीन, जापान, कोरिया आदि द्वीप समूह में किया गया। ईसवी सन की प्रथम शताब्दी में कश्यप, मातंग, धर्मरत्न आदि धर्म प्रचारक बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति का संदेश देकर चीन में प्रविष्ट हुए, तभी तीसरी शताब्दी से छठी शताब्दी के समय संपूर्ण चीन देश में बौद्ध धर्म फैल गया। चौथी शताब्दी में बौद्ध धर्म का प्रचार चीन से कोरिया में होने लगा। वहीं कोरिया में छठी शताब्दी में इस धर्म का प्रसार

जापान द्वीप समूह में हुआ। भारतीय संस्कृति ने जापान की संस्कृति को अत्यधिक मात्रा में प्रभावित किया। मंगोलों द्वारा तेरहवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म को स्वीकार किया गया। उस समय अफगानिस्तान में संस्कृत भाषा को महत्व दिया जाता था। आज भी वहां के लोग संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं। अफगानिस्तान के समान ही ईरान, सीरिया और इराक आदि देशों में भी इस्लाम के पूर्व बौद्ध धर्म प्रचलित था। सातवीं शताब्दी के कई भारतीय विद्वानों ने तिब्बत की यात्रा की और वहां बौद्ध धर्म का प्रचार किया।

भारतीय संस्कृति की तरह ही भारतीय साहित्य यकीनन दुनिया के सबसे पुराने और समृद्ध साहित्य में से एक है। इसके अतिरिक्त भारतीय साहित्य की सबसे पुरानी कृतियों में ज्ञान का मौखिक प्रसारण शामिल है। भारत विशाल विविधता वाला देश है और विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लोगों को समायोजित करता है। 22 से अधिक आधिकारिक भाषाओं के साथ देश ने सभी भाषाओं से साहित्य का उत्पादन किया है। हालांकि भारतीय साहित्य के प्रारंभिक रूप में प्रमुख रूप से संस्कृत भाषा के ग्रंथ शामिल हैं। भारतीय साहित्य का प्रारंभिक स्वरूप 1500–1200 ई. पूर्व का है। इसके अतिरिक्त, संस्कृत साहित्य में ऋग्वेद भी शामिल है, जो साहित्य का एक संग्रह है। इसके अलावा तीन अन्य वेद भी मौजूद हैं। भारतीय साहित्य में रामायण, महाभारत आदि जैसे महाकाव्य भी शामिल हैं। ये हिंदू संस्कृति के कुछ पवित्र ग्रंथ हैं। हिंदू साहित्य की सूची कभी न खत्म होने वाली सूची है। हालांकि, समय बीतने के साथ-साथ विभिन्न भाषाओं का साहित्य भी अस्तित्व में आया। जबकि शास्त्रीय संस्कृत साहित्य पहली कुछ शताब्दियों के दौरान विकसित हुआ, उसी तरह पाली, कैनन और तमिल संगम साहित्य भी विकसित हुआ। इसके अतिरिक्त तमिल संगम साहित्य भी प्राचीनकाल से ही भारतीय साहित्य का अभिन्न अंग रहा है। वह अपनी काव्यात्मक प्रकृति, दार्शनिक ग्रंथों के साथ-साथ लेखकों की धर्मनिरपेक्ष दृष्टि के लिए भी जाना जाता है।

तमिल लेखकों के कार्यों में इतिहास के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं का समावेश है। इसके अतिरिक्त, तमिल संगम साहित्य ज्यादातर दक्षिण भारत के लोगों द्वारा लिखा गया है। साहित्य का सबसे पुराना काम जो उस काल से जीवित रहने में सक्षम है, वह है तोल्कपियम, जो तमिल के व्याकरण पर एक काम है। इसके अलावा, तमिल संगम साहित्य जो आज इतिहासकारों को ज्ञात है, वह तीसरे संगम के दौरान विकसित हुआ माना जाता है। भारत साहित्य जगत में अपना एक अभिन्न और महत्वपूर्ण योगदान निभाता है। इसके अतिरिक्त बंगाली लेखक रवींद्रनाथ टैगोर साहित्य के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार जीतने वाले पहले भारतीय हैं। उन्हें 1913 में उनकी कृति 'गीतांजलि' के लिए पुरस्कार मिला। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि हाल के दिनों में अधिक महिलाओं को इस क्षेत्र में आते देखा जा सकता है। इनमें से कुछ हैं— गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स' की लेखिका 'अरुंधति रॉय', 'झुम्मपा लाहिड़ी' और 'शोभा डे'। इसके अतिरिक्त वे सभी पुरस्कार विजेता लेखक हैं जबकि अरुंधति रॉय उसी पुस्तक के लिए बुकर पुरस्कार विजेता हैं, झुम्मपा लाहिड़ी पुलित्जर पुरस्कार विजेता हैं।

भारतीय साहित्य की भक्तिकालीन अनुपम कृति 'रामचरितमानस' की लोकप्रियता विश्वभर में फैली हुई है। दुनिया में रामायण के लगभग तीन सौ से ज्यादा टैक्स्ट हुई मौजूद हैं। बर्मा में रामकथा पर आधारित 'रामवत्थुत', लाओस में 'रामजातक' (फ्रलक-फ्रलाम), कम्पूचिया में 'रामकेर्ति', इंडोनेशिया में 'रामायण काकावीन', मलेशिया में 'हिकायत सेरीराम' तथा चीन और जापान में 'रामकथा' मौजूद है। चीन में 'अनामकं जातकम्' और 'दशरथ

कथानम्' तथा जापान में 'हेबुत्सुशू' नाम से रामकथा को संकलित किया गया है। 'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' के लेखक जॉर्ज ग्रियर्सन ने तुलसीदास को 'बुद्धदेव के बाद सबसे बड़ा लोकनायक' कहा है। भारतीय साहित्य की भक्तिकालीन शाखा का बहुत-से विदेशी विद्वानों ने गहन अध्ययन किया है। आदिकालीन साहित्यक में 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता को लेकर कर्नल टाड और डॉक्टर बुलर ने गहन अध्ययन किया। 'जगनिक' कृत 'आल्हाखंड' को प्रकाशित करवाने का श्रेय 'चार्ल्स इलियट' को जाता है। इन उदाहरणों को उद्धृत करने का उद्देश्य यह बताना रहा है कि भारतीय साहित्य के प्रति विदेशी विद्वानों की रुचि बहुत पुराने समय से चली आ रही है। इन्हीं विद्वानों के माध्यम से भारतीय साहित्य की कृतियां अनुवादित होकर विश्व के कोने-कोने तक अपनी पहुंच बना चुकी हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति, धर्म, शिक्षा और साहित्य आज भी इतनी विशाल, सहिष्णु और उदार है कि हर कोई इसमें रंग ही जाता है। यहां पर अनेक प्रकार के धर्म अपनाए गए हैं। अनेक जातियां निवास करती हैं। सबकी बोलियां, रहन-सहन, आचार-विचार सब कुछ अलग हैं। ऐसे में अनेकता में एकता वाली बात सिद्ध हो ही जाती है। भले ही यहां पर अलग-अलग वेश-भूषा, खान-पान हो लेकिन फिर भी यहां के लोगों की संस्कृति एक ही है। यहां अलग-अलग देवी-देवता की पूजा की जाती है। चाहे विदेशों में किसी भी देवता को न माना जाता हो, लेकिन फिर भी विदेशों से लोग यहां आकर मंदिरों में दान करते हैं। यह भारतीय संस्कृति का ही प्रभाव है जो उन पर दिखाई दे रहा है। बौद्ध धर्म भी भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार करने में संवेदनशील भूमिका निभाता रहा है। बौद्ध धर्म के अनुयायियों का कार्य था सभी को सत्य का पाठ पढ़ाना। इन्हीं मूल्यों और संस्कारों की जरूरत आज संपूर्ण विश्व को है, जब सारा विश्व बारूद की ढेर पर बैठा है, युद्ध जैसी भयावह भय से आतंकित है, पर्यावरण और पारिस्थितिकी संकटों से गुजर रहा है, दूर्भिक्ष और महामारी जैसे आपदाओं का सामना कर रहा है, तब भारतीय संस्कृति, धर्म, शिक्षा और साहित्य ने सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता, उदारता, मानवता, परदुःखकातरता, भावुकता, संवेदनशीलता, सहानुभूति आदि उच्च गुणों की जो शिक्षा प्रदान करती है, वह संपूर्ण विश्व के लिए अनुकरणीय और ग्रहणीय है तथा प्रासंगिक भी। 'वसुधैव कुटुंबकम्' जो भारतीय सभ्यता संस्कृति, धर्म, शिक्षा और साहित्य का मूल भाव है। वह विदेशियों को बहुत आकर्षित करता है। जब विदेशी अपने देश में भी भारतीयों की आत्मीयता को देखते हैं तो इस भाव से वे भी अनुप्रेरित होते हैं।

संदर्भ सूची :-

1. सदाशिव, पांडुरंग एवं गुरु, साने, भारतीय संस्कृति, प्रस्तावना, पृष्ठ -5
2. सिंह, सोहन (डॉ.), भाषा संस्कृति और समाज, पृष्ठ-31
3. टैगोर, रवीन्द्र नाथ, द सेंटर ऑफ इंडियन कल्चर, पृष्ठ-15
4. सिंह, रामधारी दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ -53
5. अग्रवाल, वासुदेव शरण, साहित्य और संस्कृति, भूमिका, पृष्ठ -5
6. स्वावमी, विवेकानंद, कर्मयोग, पृष्ठ-85
7. सिंह, सोहन (डॉ.), भाषा संस्कृति और समाज, पृष्ठ -101

पत्राचार : 2, ए.टी. घोष रोड़, पोस्ट - गरीफा, जिला : उत्तर 24 परगना, पिन 743166

दूरभाष 7980309818, ईमेल : tumpazen369@gmail.com



संगम Impact Factor : 4.553

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037
SANGAM

विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक

Vol. 11, Issue 10(1)
पृष्ठ : 157-163

Exploring Gender Dynamics in Indian Culture : An Analysis of Representation, Empowerment, and Global Implications

Dr. Ruchi Thakar

Assistant Professor, Dept. of English, Madhav University, Pindwara, Rajasthan.

Abstract :-

This research article undertakes a comprehensive examination of the intricate gender dynamics within the multifaceted landscape of Indian culture. It conducts a thorough analysis of how gender roles are represented and how women's empowerment is promoted in Indian literature, art, and culture. Furthermore, it investigates the relevance and impact of these representations in the broader global discourse on gender equality.

Keywords :- Gender Dynamics, Indian Culture, Representation, Empowerment, Global Implications, Gender Roles, Feminism in India

Introduction :-

India, a nation celebrated for its intricate tapestry of history, culture, and diversity, has long captivated the curiosity of scholars and observers alike in the realm of gender dynamics. The juxtaposition of tradition and transformation deeply woven into the cultural fabric of India has given rise to a profound and intricate terrain of gender roles and women's empowerment. This research article embarks on an ambitious journey of comprehensive exploration into these multifaceted dynamics within Indian society, with a keen focus on how gender is conceived, represented, and practiced.

The significance of delving into the intricacies of gender dynamics in Indian culture transcends the nation's geographical boundaries. India's influence radiates into the very heart of global conversations on gender equality and social justice. By scrutinizing the nuanced gender roles and representations within Indian literature, art, and culture, we gain invaluable insights into the broader human experience. Recognizing that understanding and addressing the challenges and successes in India's gender dynamics is pivotal not only for the well-being of its citizens but also for advancing the

global discourse on gender equity, this research embarks on a multifaceted journey. Our research objectives encompass an examination of the historical foundations of gender roles and expectations in Indian culture, tracing their evolution through ancient texts and societal norms, an exploration of the representation of gender roles and women's empowerment in classical and contemporary Indian literature, an investigation into how gender is portrayed in Indian visual arts and media, and how these representations shape societal perceptions, an evaluation of government policies, programs, and grassroots initiatives aimed at promoting women's empowerment in India, and an assessment of the relevance and impact of Indian gender dynamics in the global context of gender equality. To achieve these objectives, we employ a methodology that involves a comprehensive review of relevant literature, an analysis of primary and secondary sources, and a critical examination of government policies and initiatives. Adopting an interdisciplinary approach, we aim to provide a well-rounded understanding of gender dynamics in Indian culture and its profound implications, recognizing the complexity of the subject matter and the significance of our endeavor in contributing to the ongoing global dialogue on gender equality and social justice.

Historical Perspectives :-

This section conducts a comprehensive exploration of the intricate historical perspectives that have shaped gender dynamics in India, recognizing that to comprehend the contemporary landscape, one must delve into the past.

Historically, India boasts a rich tapestry of gender roles and norms. Ancient Indian scriptures, such as the Vedas and Upanishads, acknowledged the vital role of women in society, with deities like Saraswati and Lakshmi personifying wisdom and prosperity. However, as time progressed, societal structures evolved, giving rise to the caste system and the relegation of women to subordinate positions. The patriarchal norms that prevailed during the Mughal and British colonial periods further solidified gender inequalities.

The quest for gender equality gained momentum during the 19th and 20th centuries, spearheaded by social reformers like Raja Ram Mohan Roy and Mahatma Gandhi, who advocated for women's rights and emphasized their active participation in the national movement for independence. Following independence, the Indian Constitution enshrined gender equality as a fundamental right, ushering in legal reforms and affirmative action policies.

In recent decades, globalization has left an indelible mark on gender dynamics in India. The nation has witnessed a transformative shift in women's representation, with female leaders in politics, business, and the arts shattering longstanding barriers. The ascent of feminism, digital media, and education has emboldened women to challenge traditional gender roles and norms, fostering a more

inclusive and diverse society.

Nevertheless, formidable challenges endure, including gender-based violence, economic disparities, and deeply entrenched cultural norms. "Exploring Gender Dynamics in Indian Culture" offers a nuanced analysis of these historical perspectives, elucidating their enduring influence on India's journey toward gender equality and their reverberations on a global scale. A profound comprehension of this intricate history stands as a cornerstone for forging a more equitable and inclusive future for all.

Gender Representation in Indian Literature :-

The exploration of gender dynamics in Indian culture would be incomplete without a comprehensive analysis of how these dynamics have been depicted in Indian literature throughout the ages. Indian literature, spanning millennia, serves as a mirror reflecting evolving societal attitudes towards gender roles, women's empowerment, and the broader narrative of equality.

Classical Indian Literature :-

Classical Indian literature, characterized by its profound philosophical and mythological narratives, offers a window into the gender norms and societal values of its time. In these ancient texts, such as the Vedas and Upanishads, we find both subtle and overt indications of gender roles. The cosmic duality of male and female principles, often personified as deities, underscores the significance of balance and harmony in ancient Indian thought. Yet, these texts also reveal a stark gender hierarchy, with male deities often holding dominion over female counterparts. The complexities of these representations lay the groundwork for understanding the intricate interplay of gender in Indian culture.

Epic Narratives - Ramayana and Mahabharata :-

The epic narratives of Ramayana and Mahabharata, revered as foundational texts in Hinduism, provide a vivid portrayal of gender roles in ancient India. In Ramayana, Sita emerges as the quintessential female archetype, embodying qualities of purity, devotion, and sacrifice. Her unwavering loyalty to Lord Rama has long been upheld as the ideal of womanhood. In contrast, Mahabharata introduces us to Draupadi, a character marked by her strength, resilience, and defiance against injustice. Her multifaceted persona challenges conventional expectations of feminine passivity. These epic narratives not only depict the archetypal roles assigned to men and women but also reveal tensions and contradictions within these roles, reflecting the intricate nature of gender dynamics in Indian society.

Contemporary Indian Literature :-

Moving forward in time, contemporary Indian literature offers a modern lens through which we can assess the changing landscape of gender representation. Acclaimed authors like Arundhati

Roy and Jhumpa Lahiri have explored the complexities of gender, identity, and empowerment in their works. Roy's "The God of Small Things" delves into the experiences of women within the constraints of traditional society, while Lahiri's stories navigate the complexities of Indian diaspora and its impact on gender roles. These authors challenge traditional narratives and provide fresh perspectives on the evolving dynamics of gender in modern India.

In sum, Indian literature, both classical and contemporary, serves as a treasure trove of insights into the ever-evolving tapestry of gender dynamics in Indian culture. It offers a nuanced exploration of societal attitudes, expectations, and challenges faced by individuals of diverse gender identities. As we navigate this literary landscape, we gain a deeper appreciation of how literature not only reflects society but also has the power to shape and reshape the narrative of gender in Indian culture.

Gender in Indian Art and Media :-

Indian art and media provide a multifaceted canvas through which gender dynamics have been both reinforced and challenged over the centuries. From traditional art forms that depict societal norms to contemporary media that push the boundaries of gender representation, these mediums play a pivotal role in shaping perceptions of gender in Indian culture.

Traditional Art Forms :-

Indian art, with its deep-rooted traditions in painting, sculpture, and dance, has historically reflected prevailing gender norms and societal expectations. Traditional paintings, such as those found in the Ajanta and Ellora caves, often depict idealized images of femininity and masculinity, reinforcing traditional gender roles. The depictions of goddesses like Lakshmi, Saraswati, and Durga represent the divine feminine, embodying qualities of beauty, wisdom, and power. On the other hand, sculptures like those in Khajuraho celebrate human sensuality and desire while adhering to established gender hierarchies.

Evolution in Visual Arts :-

In contemporary Indian art, there is a discernible shift towards challenging and reinterpreting these gender norms. Artists like Amrita Sher-Gil and Tyeb Mehta have created thought-provoking works that question conventional representations of gender. Sher-Gil's "Two Women" explores female intimacy in a way that defies societal taboos, while Mehta's "Diagonal" portrays a male figure in a vulnerable, fragmented state, disrupting traditional notions of masculinity. Modern Indian artists engage in a dialogue with traditional forms, pushing the boundaries of gender representation and fostering a more inclusive artistic discourse.

Indian Cinema and Gender :-

Indian cinema, particularly Bollywood, has played a significant role in shaping popular culture

and reinforcing or subverting traditional gender roles. Historically, Bollywood has been known for its elaborate narratives of love and family, often accompanied by gendered stereotypes. While iconic figures like Raj Kapoor and Madhubala have set romantic archetypes, they have also perpetuated gender norms. However, in recent years, Indian cinema has witnessed a transformative shift. Films such as "Queen," "Kahaani," and "Piku" have presented complex, independent female protagonists who challenge societal expectations. These cinematic narratives reflect evolving aspirations and values in Indian society and contribute to discussions about gender equality.

Media's Role in Gender Representation :-

Indian media, including television, advertisements, and digital platforms, continues to exert significant influence on societal perceptions of gender. Advertisements featuring empowered women challenging stereotypes, like the "Fearless Nadia" campaign, have garnered attention and praise. Television shows explore a diverse range of gender identities and relationships, fostering greater acceptance and understanding. The rise of social media provides a platform for voices that challenge traditional gender roles and promote inclusivity.

In conclusion, Indian art and media offer a dynamic landscape where gender dynamics are both reflected and reimagined. While traditional art forms uphold age-old norms, contemporary artists and media creators are pushing boundaries, contributing to a more inclusive and equitable representation of gender in Indian culture. These creative expressions are not just reflections of society but catalysts for change, challenging deeply ingrained perceptions and paving the way for a more progressive understanding of gender roles and identities in India.

Women's Empowerment Initiatives :-

India has witnessed a multitude of government policies, programs, and grassroots initiatives aimed at promoting women's empowerment. These initiatives have played a pivotal role in challenging traditional gender norms and advocating for women's rights. The Indian government, recognizing the urgency of addressing gender disparities, has introduced various schemes. The "Beti Bachao Beti Padhao" (Save the Daughter, Educate the Daughter) campaign, for instance, focuses on addressing the skewed sex ratio and promoting female education. Similarly, the "Pradhan Mantri Matru Vandana Yojana" supports pregnant and lactating women, ensuring better healthcare and nutrition. Moreover, grassroots movements, led by organizations such as the Self-Employed Women's Association (SEWA) and the Gulabi Gang, have made significant strides in challenging traditional gender norms. These movements have not only empowered women economically but also provided a platform for women to assert their rights and demand justice. These initiatives, albeit facing challenges and limitations, underscore the collective effort to dismantle barriers and advance women's empowerment in India.

Global Implications :-

The global relevance of Indian gender dynamics cannot be understated. As India continues to grow economically and socially, its gender dynamics serve as a reflection of broader global trends. Indian women have increasingly assumed leadership roles in politics, business, and academia, influencing international conversations on gender equity. Collaborations between India and other nations in addressing gender-related issues provide valuable insights into cross-cultural approaches to gender equality. The Indian diaspora, scattered across the globe, carries with it diverse perspectives on gender dynamics, contributing to a broader dialogue on the subject. Furthermore, India's presence in international forums and organizations brings attention to its unique experiences in navigating the complexities of gender. As a global community, we must recognize the interconnectivity of gender issues and the importance of cross-cultural dialogue in advancing the cause of gender equality.

Challenges and Progress :-

While India has made significant strides in women's empowerment and gender equality, numerous challenges persist. Gender-based violence, unequal access to education and healthcare, and traditional societal expectations continue to hinder progress. Discriminatory practices such as female foeticide and child marriage persist in certain regions. However, there are encouraging signs of change. Women are breaking barriers in fields such as science, technology, politics, and sports. Advocacy efforts, driven by both women and men, are gaining momentum, pushing for legal reforms and societal change. Grassroots movements, supported by government initiatives, are challenging patriarchal norms and promoting gender-sensitive education. Progress is evident, but the journey toward gender equality is ongoing, requiring sustained effort and collaboration.

Conclusion :-

In the intricate tapestry of Indian culture, the exploration of gender dynamics has unveiled a narrative as diverse as the nation itself. This research has undertaken a comprehensive journey through time, delving into ancient texts, classical literature, visual arts, and contemporary media to dissect the complex interplay of gender roles and women's empowerment. It has illuminated the historical foundations of these dynamics, revealing both traditional norms and evolving perspectives.

Moreover, this research has assessed the global relevance of Indian gender dynamics. India's transformation, its ascent on the global stage, and the growing influence of Indian women in leadership positions have underscored the nation's contributions to the broader discourse on gender equality. Collaborations and cross-cultural exchanges have enriched this dialogue, emphasizing the importance of shared experiences in the pursuit of a more equitable world.

While strides have been made in India, challenges persist. Gender-based violence, inequalities

in education and healthcare, and deeply rooted societal expectations continue to pose obstacles to progress. However, the resilience of Indian women and men, the power of grassroots movements, and the impact of government initiatives offer hope and inspiration.

In closing, this research serves as a reminder that gender dynamics are a reflection of a society's values and aspirations, and they have far-reaching implications. By understanding and dissecting these dynamics, we contribute to a global conversation that seeks to break down barriers, challenge norms, and create a world where all genders are treated with dignity, respect, and equality. India's story is not isolated; it is woven into the larger narrative of humanity's pursuit of a more just and inclusive world for everyone.

References :-

1. Sen, A. (2001). *The Argumentative Indian: Writings on Indian History, Culture, and Identity*. Farrar, Straus and Giroux.
2. Chatterjee, P. (1993). The Nationalist Resolution of the Women's Question. *Economic and Political Weekly*, 28(14), 579-585.
3. Das, V. (2007). The Language of Violence: Partition, Muslims in India, and Bhagat Singh. *Social Research*, 74(1), 173-216.
4. Menon, R. (2018). Gender and Culture in India: Historical Perspectives. In M. S. Gupta (Ed.), *Gender and Society in India: Issues and Challenges* (pp. 23-42). Sage Publications.
5. Government of India. (2021). *National Policy for Empowerment of Women*. Ministry of Women and Child Development, Government of India.

Mail ID : thakar.ruchi@gmail.com

Mobile No : 09825604020



संगम Impact Factor : 4.553

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037
SANGAM

विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक

Vol. 11, Issue 10(1)
पृष्ठ : 164-171

RELEVANCE OF BUDDHISM IN THE MODERN ERA

Dr. Kanchan Babarao Jambhulkar
Academician, Wardha (Maharashtra)

Abstract :-

Buddhism is one of the major religions of the world. It is an empirical that is based on experience rather than logic and is an anti-metaphysical religion. Buddhism is a non-theistic religion (no belief in God) it is a philosophy as well as a science which originated in India Buddha came in the 5th and 6th centuries BCE(before the Christian era). Buddhism would mean the principles in a system of belief as noted in the Buddhist literature. Buddhism is the culture which has extended to all parts of Asia over the past 2,500 years. The Buddha came to understand that desire and attachment are the causes of human suffering because they ignore the true nature of existence people insist on permanent states of life, resist change, hold on to what they know and show great sadness about what they lost. Nothing in life is permanent. The situation changes but one could find a spiritual discipline which helps to recognize the inner beauty of life. It also prevents from capturing the attachments of people, objects, and situations.

Buddhism offers simple and effective methods to deal with such situations Buddhism plays an important role in our life. The present study focuses on Panchsheel, the four Noble truths, the eight four paths and the significance of Buddhism in the world.

Keywords :- Buddhism, Panchsheel, the four Noble truths, eightfold Path, Modern era.

Introduction :-

Buddhism is one of the four major religions of the world, the others being Hinduism, Islam, and Christianity. Buddhism is a philosophy, a science and a religion. Buddha's teaching is timeless (akalika). It can be followed in the 21st century of the modern era of Science and technology. In the modern era, Buddhism plays a special role because just like other religions it put forward the concept of Independence. Tibetan spiritual leader Dalai Lama said, " The 20th was a century of War and violence, now we all need to work to see that the 21st century is of peace and dialogue".

The religious aspects of Buddhism are related to the practices and principles of Buddhism alone. Buddhism is the science of mind and human emotions which benefits everyone. The leaders said that' modern science has developed a highly sophisticated understanding of the physical world, including the subtle workings of the body and the brain. Buddhist science on the other hand has devoted itself to first-person understanding of many aspects of emotions- areas that are still new to modern science.

Buddhism around 2,500 years old still holds its significance in today's world Buddhism's five principles (Panchsheel), the four noble truths and the eightfold paths all guide us towards a joyful life. In today's world which is harmed by violence, greed, intolerance and degradation of human values Buddhism teaches effective ways to deal with these Maladies. Buddhism teaches practical remedies methods of interception and motivation and awakening shows the troubles of humans.

Buddhism laid down ethical concepts for a fulfilling life in the world of the 21st century, where people other to devices and practices that deviate them from the main purpose, Buddhism's core principles of self-control, self-discipline, mindfulness serve as antidotal remedies to a clean mind and body which gives a stressful life. Buddhism teaches to connect us our inner self and the path of eternal knowledge and happiness. Buddhism contains such powerful messages that its quality is so clear that it exceeds the stated limits of culture and religion. These messages to the Modern era are becoming significant in the present context to guide the sustainable approach of the future.

Buddhism contains teachings for the welfare of every creature in the world of wisdom giving advantage and responsibility for the betterment of society it also teaches, "AatmaDepoBhava"- every man can be light unto himself -meaning self-realisation. It is a path which teachers to move forward for a better tomorrow. Dr BR Ambedkar in his essay, "The Ancient Regime - the State of the Aryan Society" wrote, "Buddhism is a Revolution it was as great as the French Revolution. Though it began as a religious Revolution it became more than a Religious Revolution. It became a Social and Political Revolution".

Buddhism teaches moral laws, wisdom, and compassion. It teaches how to reduce greed. Buddhism helps to realise truth which further helps to avoid conflict and accept the opinions of others. His four Nobel Truth and the Suffering is a noble eightfold path that teaches ethical and sustainable practices.

Origin of Buddhism :-

- Buddhism was founded in the late 6th century BCE approximately 2,500 years ago in North or North-Eastern Asian countries.
- It is one of the major religions founded as the way of life with the capacity to transfer the life

of a person.

- The religion was founded by SiddharthGautam who was born 563 BCE.
- He was born into the Shakya Clan's royal family who ruled from KapilaVastu in Lumbini near the Indo-Nepal border.
- SiddharthGautam left home at the age of 29 to find out the causes of suffering, the existence of pain and the misery of life.
- Gautama attended enlightenment under a Pipal Tree in Bodhgaya (a small village in Bihar)after 49 days of meditation. He achieved Shakya Muni and preached(sermon) a path of Salvation (protecting from harm) to his followers.
- Gautam Buddha delivered his first speech in Sarnath, near Banaras, Uttar Pradesh.
- This is called Dharma Chakra Pravartana(turning of the wheel of law).
- He died at the age of 80 in 483 BCE in Kushinagar, a town in Uttar Pradesh this event is known as Mahapari Nibbana.
- The Buddha created a religious and intellectual revolution in India creating a belief system.
- Buddhism was a school of thought that arose in response to Hindu tradition which field to satisfy the needs of people.
- It remained a school of thought until the role of great Ashoka(268 -232 BCE) of the Mauryan Empire 322 -185 BCE). He accepted and spread the belief system not only in India but also in Central and Southeast Asia where the form of Buddhism called Hinayana or, in the Pali tradition Therwada (the way of the Elders) is practiced.

Panchsheel of Buddhism :-

The panchasheel of Buddhism, five precepts or 5 rules of training is the moral code for people. They are the course of ethics one must adhere to. These rules teach us to avoid killing living beings, stealing, lying, sexual misbehaviour, and intoxication. These five precepts emphasise the awareness of human beings. The five precepts of Panchsheel were prevalent in the 6th century BCE in India. These teachings are found mainly in SuttaPitika.

Buddhism has given five basic principles, and codes for all of us they are as under :-

- Panatipataveramanishikkhapadamsamadhiyami - to abstain from killing any living creature; one must not indulge in violence.
- Adinnadanaveramanisikkhapadamsamadhiyami- to abstain from stealing; one must not indulge in stealing. The value of the stolen item determines the severity of the theft. These include fraud, forgeries, cheating etc.
- Kamesumicchacaraveramanishikkhapadamsamadiyami - to abstain from all sexual activities.

- Musavadaveramanisikkhapadamsamadhiyami- to abstain from telling lies; one must not be indulged in speaking lies This percept is considered second in significance first in Buddha's teachings. Suramerayamajjapamadatthanaveramanisikkhapadamsamadhiyami- to abstain from all intoxicants; one must not indulge in substance abuse. People who violate the fifth face negative outcomes for themselves and from families. This is according to an early Chinese translation of the Tripitaka.

- The Chinese tradition of the Upasikashila Sutra, as well as the Pali version of SigalovadaSutra, both mention negative effects such as illness, loss of money, and property, a badreputation in society and reincarnation to hell. The Dirgha Agama says, that when substance abuser quarrel, their intelligence deteriorates. The Mahayana Brahamjala Sutra uses strong language to describe the ill effects of drinking, particularly the sale of alcohol. These are the five basic moral conduct and ethical rules one must adhere to.

The four Nobel truths (path to the end of suffering) :-

- Suffering exists.
- Suffering has a cause.
- Suffering has an end.
- There is a path that leads to the end of suffering.

These Noble truths of Buddhism are central to the Theravada tradition. It is encouraged by all schools of Buddhism. These illuminate the light of Buddha's teachings. The four noble truth tells us that there is a great pain in life. As there is a pain it has a solution too.

Some people may say that pain is a part of life but even when we are happy, in our human life we must get old, we will get ill and someday we will die. Those who are broad and open-minded have the power to face the tragedies of life and make themselves free from unnecessary pain.

Suffering exists (the truth of suffering) (Dukkha) - The first Nobel truth is that suffering exists. The work suffering means "Dukkha" in Sanskrit. It is also called pain. All life is suffering but everything changes. Nothing in life is permanent. One day we will be getting older. We are born into an impermanent world in which nothing lasts forever. These uncertain things keep us dissatisfied.

Suffering has a cause (samudaya) :-

The second Nobel truth is that suffering has a cause and craving is the cause of any suffering. This craving or greed keeps us linked. No one wants to suffer but the greediness or desire for objects and people leads to dissatisfaction. It is mistakenly believed that once our desires get satisfied we will satisfied forever. To maintain Ego and superiority causes ourselves and others nothing but pain.

Suffering has an end (nirodha) :-

There is a root cause of suffering which enables us to overcome it. Buddhism explains the

Third Noble Truth as -"It is possible to attend the complete cessation of dukkha. It is a complete cessation of that very craving, giving it up, renouncing it, release from it ". It means that through practice and practice only we can end up craving.

There is a path that leads to the end of suffering(magga) :-

This Noble Truth presents us with a map that leads to the end of suffering. This map is the Noble eightfold path, Arya Ashtanga Marg. It teaches us to live ethically with moral conduct, meditate, and develop wisdom. It comes with practice. Instead of devoting our life to the right view, right intention, right speech, meditation, mindfulness and concentration we spend it triggering the causes that lead to pain.

These four noble truths are known as Dharma, the teaching of Buddhism. By doing this, we make ourselves Noble. Moreover, Buddhism presented the four noble truths (as diagnosis) for the identification of human existence :-

- The first Noble truth is identifying as a disease of suffering.
- The second noble truth is the cause of suffering.
- The third offers the prognosis whereas,
- The fourth Noble Truth provides an antidotal remedy to the end of the suffering i.e., the eightfold path. This helps to ameliorate the suffering.

The Eightfold Path of Buddhism :-

Within the four Noble truths, one finds the Noble eightfold path which guides one to the end of suffering. These eight parts are categorised into three elements of Buddhist practice, moral conduct, mental discipline and wisdom.

- Right understanding (sammaditthi)
- Right thought (sammasankappa)
- Right speech (sammavaca)
- Right action (samma Karman)
- Right livelihood (sammaajiva)
- Right efforts (sammavayama)
- Right mindfulness (samma sati)
- Right concentration (sammasamadhi)

These eightfold paths are not to be followed rather, these are to be developed according to the capacity of each individual. These paths are interlinked together and each one helps to the improvement of the others.

These eight factors focus on promoting these three essentials of Buddhism namely - Ethical

conduct (sila)

Mental discipline (samadhi)

Wisdom (panna).

It is easier if it is understood according to these headings.

Ethical Conduct (sila)

Ethical conduct (sila) is built on love and compassion for all the living beings of the universe. The Buddha gave his teaching "for the good of the many, for the happiness of the many, out of compassion for the world". Sila is based on love and compassion and includes factors namely; right speech, right action, and right livelihood.

Right speech means, avoid telling lies. Avoid talks that bring about this harmony and hatred among people. Avoid using rude, harsh, impolite polite, abusive and toxic language. Avoid gossiping. Speech should be friendly, polite, kind, gentle, meaningful and useful. Speak carefully at the right place and at the right time. Speak something useful and meaningful else keep "noble silence". Right action means, ethical peaceful and honorable conduct. It wants us to destroy life, not to steal, not to behave dishonestly, or not to have illegitimate sex. We should also help others to lead a peaceful life in the right way and right action.

Right livelihood means one should not bring harm to others by trading weapons, intoxicants and poisons. One should not cheat others. One should not kill animals. All these are the unjust means of livelihood.

Buddhism strongly opposed to any kind of war. These three factors constitute ethical conduct which aims for a happy and harmonious life for an individual. This moral conduct helps to achieve higher spiritual attainments.

Mental discipline :-

It includes 3 other factors of the eightfold path namely right efforts, right mindfulness and right concentration.

Right efforts means it prevents evil deeds. It produces wholesome states of mind. It helps develop perfection.

Right mindfulness means, it is aware with regards to activities of the body(kaya), feelings (vedana), activities of the mind (chitta), ideas and thoughts (dhamma). The practice of concentration on breathing (anapansatiprakriya) is the best exercise to develop the mental state. However, there are other ways of meditation. About feelings, one must be aware of how they appear and disappear.

With regard thoughts, one must be aware of how they appear and disappear. These are the forms of meditation which are given in Satipathanasutta (setting up of mind fullness).

Right concentration means it consists of four stages via. Dhyana, called as trance. In this stage, lust, will, worries, and restlessness are destroyed and feelings of happiness and joy are maintained.

In the second stage, all intellectual activities are suppressed, "one-pointedness" develops and feelings of joy and happiness are still retained. In the third stage, the feeling of joy disappears, but happiness and mindfulness (even when stressed) are still retained.

Finally, the Fourth Stage is the stage of Dhyana. All sensations including joy and happiness, unhappiness, and sorrow disappear and only a pure and calm mental state and awareness remain. Through the process of meditation, the mind develops.

Wisdomit constitutes only two factors via right thoughts and the right understanding.

Right thoughts means, it means denotes thoughts of love, and non-violence. Wisdom is provided with noble qualities.

Right understanding means understanding is the highest wisdom which sees the Ultimate Reality. According to Buddhism, "Understanding" is knowledge. This is also called anubodh. It is not very deep. Deep understanding also called "penetration"(pativedha) is seeing things with true nature, without its name and label. Pativedha is possible only when the mind is free from impurities.

The eightfold path if followed or practised leads to self-development and self-self-purification. It has nothing to do with religion, prayer, worship etc. It can be followed by a common man which leads to Ultimate Reality, happiness, moral and spiritual peace and intellectual perfection.

Relevance :-

The main goal of Buddhism is to eliminate sorrow, unhappiness and suffering. All of us to a more or less extent are suffering from psychological problems. Buddhism teaches how to overcome such difficulties. Buddhism teaches how to overcome future lifetime problems, it teaches how to get free from rebirth and enlightened as Buddha.

Conclusion :- To conclude, I have discussed how Buddhism focused on the issues which are relevant or important today. It includes the importance of education and motivation, the importance of moral values, and the importance of universalism. It also contributes to nature and the demands of the universe in which we, human beings are surviving. Technical development offers only insecurity and tension. But Buddhism teaches very easy and effective methods to combat it. For this thing (panchasheel, four noble truths, and eightfold paths) one must not have to be Buddhist. It can be practised by every man living in the world.

References :-

1. Royal Classics, (2010). Buddha. The Dhamapada.

2. Walpola S. R. (1907-1997), a Sri Lankan monk, was the author of What the Buddha Taught and a Professor at North Western University.
3. The Four Noble Truths, VenAjahnSumedho, Amaravati Publications.
4. Mitchell, Donald W. (2002). Buddhism: Introducing the Buddhist Experience. New York. Oxford University Press. ISBN 0195139526.
5. Reddy, Ravichandra. Buddhism and its relevance in the modern world, Research Scholar, Acharya Nagarjuna University, Guntur, Andhra Pradesh.
6. Sen, Amartya. The contemporary relevance of Buddha.
7. International Journal of Economics and Financial Issues. Buddhist world in the Global context; Mergen Sandzhievich Ulanov, Valery Nikolavich Badmaev. ISSN 2146-4136. 2015, 5 (Special issue) 15-17.
8. www.religionworld.in
9. www.timesofindia.indiatimes.com
10. www.telanganatoday.com
11. www.indianexpress-com.cdn.ampproject.org
12. www.bbc.co.uk
13. www.mindwork.org
14. history.org
15. www.pbs.org
16. www.prepp.in
17. www.asiasociety.org
18. www.brambedkar.in
19. www.worldamity.wordpress.com
20. www.newworldencyclopaedia.org

Mob.- 9764964111

E-mail - drkanchanjambhulkar@gmail.com



Study of psychosocial distress among orphan children living in orphanage care in Udaipur

Dr. Bhavna Devi

Assistant Professor, Janardan Rai Nagar Vidyapeeth Deemed to be University, Udaipur (Raj)

ABSTRACT :-

The aim of this research was to Study of Psychosocial Distress among Orphan and Vulnerable Children Living in Institutional Care in Udaipur. A descriptive qualitative study was used to collect data from Udaipur orphaned children receiving orphanage care. Purposive sampling was employed to select 3 orphanage centers from which 65 orphaned children were recruited. A semi-structured interview guide relevant to the study objectives was developed from the literature and was used to guide the focus group interviews. Data was analyzed by way of thematic analysis. There were 23 male and 42 female orphans; orphans without one or both parents were 27 and 38 respectively. 28 orphans were in primary school and 37 orphans were in secondary education. Research findings exposed that the orphanages provided a higher degree of material support compared to psychosocial support services, such as emotional or counseling assistance. The orphanage schedule needs to include time for caregivers and children to talk about their feelings regarding the type services provided at their center, in particular educational services.

Key words : Psychosocial distress, Orphan child, Orphanage and Coping strategies.

INTRODUCTION :-

Recent estimates from United Nations Children's Fund show there are 140 million children worldwide who have lost one or both parents. Statistics show that India is home for the 30 million orphan children, the largest in the South Asian region. According to Ministry of Women and Child Development, adoption rates in India have declined from 6286 to 2762 during 2010 to 2016, making the situation alarming but, the unfortunate fact is that not all children residing in institutional care are orphan, most have been abandoned by the parents. Due to poverty, family disintegration, household violence, disability, and social unrest the number of orphans are expected to increase in the future. These children are most helpless and are at increased risk of exposure to child labor, trafficking,

prostitution, abduction, stigma and discrimination. Orphans are more susceptible than other children because they have already lost the parental protection and care. Childhood experiences determine the future social, emotional and psychological dynamics and functioning of individuals in their adulthood life. Adverse and painful childhood experiences can sabotage psychosocial wellbeing of children. Psychosocial wellbeing affects children's ability, intellectuality, productivity and social functionality.

Post parental loss children experience sorrow, anxiety, depression, lack of support and care. The trauma of losing parents can have adverse psychosocial effects on children like feelings of mistrust, inferiority, shame, guilt, insecurity and improper conduct. To cope with psychosocial distress children indulge in harmful activities like substance abuse, violent and delinquent behavior. Children are the responsibility of the state, and therefore, various governmental, nongovernmental and faith-based institutions are established to supplement or substitute parental care and supervision, to promote the overall well-being of orphan children. The Juvenile Justice reiterated the need for a child-friendly to ensure care, protection, development, treatment and social reintegration of orphan while fulfilling their basic needs. Studies have reported that efficiently catering to the materialistic needs sometimes leads to compromised psychological needs of children. This childfriendly approach will remain an elusive dream until care providers understand the psychosocial needs and coping strategies of children.

This paper focuses on the psychosocial issues and needs of children living in orphanage in Udaipur. The current research also tries to expose the coping strategies used by orphanage for improvement. The results might provide facts and help Govt. and NGO to identify the unattended psychosocial troubles of children and direct them to deal with these troubles.

METHODOLOGY :-

This research used a qualitative exploratory design. This research used the primary data from a survey carried out in orphanage's homes of Udaipur during March to December 2022.

Study area :-

This research was carried out in Udaipur (Raj). It was based on primary data collection from three orphanages.

Study design :-

The present research used an exploratory approach for data collection. Such research design allowed to get insights into the experiences of children while residing in orphanage's. It helped us to get familiarized with the troubles of Orphan children's.

Study Area :-

Sample Design :

Researcher was adopted non-probability purposive sampling technique for the study. For the

present study, three orphanages (Non-Governmental) were randomly selected for conducting in-depth interviews. Study population constituted Orphan children's living orphanages in Delhi. Researcher used Non- probability purposive sampling to select children for this research. Purposive sampling was employed to select 3 orphanage centers from which 65 orphaned children were recruited. A semi-structured interview guide relevant to the study objectives was developed from the literature and was used to guide the focus group interviews. Data was analyzed by way of thematic analysis.

There were 23 male and 42 female orphans; orphans without one or both parents were 27 and 38 respectively. 28 orphans were in primary school and 37 orphans were in secondary education. The inclusion- criteria were: 1) children of age 6-18 years; 2) living in the orphanage for past one year; and 3) willing to participate in the present research.

Survey Instruments :-

This research is part of a larger study conducted in orphanages of Udaipur during March to December 2022. Prior to starting the survey, the investigator made numerous visits to the orphanages to develop a rapport with the participants. In-depth interview was used to collect data, considering the sensitive nature of the study. A semi-structured open-ended guideline was used to gather data from respondents. This guideline covered information of children's history, their admission in the orphanage, education, nutrition and physical, psychological and social wellbeing. Probes were also utilized by the researcher to extract the desired information from Orphanage children's in superlative the feasible way.

Ethical Considerations :-

Researcher met with all the directors, caregivers and the orphaned children and responded to questions relating to the study, objectives, and procedures, issues of confidentiality, the importance of voluntary participation and the need for individual informed consent. The directors, as legally appointed guardians, signed the consent form for the children. The recruited children were told about the general purpose of the study and their responses were anonymous. For every orphanage, permission to talk to 20 to 25 children from 22 of the total sample of 3 orphanages was further sought from each orphanage director. The caregivers were then informed of the purpose of the study and voluntarily accepted and assisted in identifying the required respondents. Confidentiality of information and anonymity of respondents were maintained throughout the survey.

Operational Definitions :-

1) Orphan child :

The orphan child is a child of age less than 18 years who had lost parent regardless of the cause of the loss and lived in the orphanage at the time of the survey

2) **Orphanages :**

Children's homes are the institutions established by the government or non-governmental agencies to provide care, protection, and support to orphanages.

3) **Psychosocial Distress :**

Psychosocial Distress describes the unpleasant feelings or emotions that a child may have when he/she feels overwhelmed.

4) **Coping Strategies :**

Coping strategy refers to how children respond to stress as they contend with real-life problems.

Data Analyses :-

Study samples were purposively selected from three orphanages. The sessions began with the researcher thanking the participants for their acceptance to participate in the study; and a brief introduction of the research purpose. This was followed by the investigator reading out the written informed consent so that each participant was well-informed before he/she could make a decision to participate in the study or withdraw. It was stressed that participation in the study was entirely voluntary. The participants were encouraged to be open and honest in discussions. They were also asked to give their personal opinions, comments, seek clarifications or say anything related to the discussion. The researcher then carefully outlined the norms applicable to such group discussions and assured them that privacy and confidentiality will be observed regarding the contents of the discussion. It was also emphasized that any experience revealed or anything said by a group member represented his/her personal opinion. In present research following aspects of the psychosocial wellbeing of children were measured: impact of parental loss or separation, self-concept, depression, anxiety, emotional, love, affection and also the coping strategies to overcome these challenges.

Findings :-

Basic provisions :

Orphan children's were differently opinionated regarding the schemes of essential services. The majority children were glad to be in the orphanage because they not only got access to food, clothes, and shelter but also to the health and educational facilities. A 16-year-old orphaned girl who lived in the orphanage for over 6 years had to say: "I am glad to be here because now we can fulfill our essential requirements. I get to eat on a daily basis. I don't have to sleep hungry anymore or fend on the streets without proper clothing. My mother could only send my sister to school and admitted me here, and I am glad that she did because here I not only get food but also I got to go to the school, as I always wanted to." At this time I could sleep well without having to tension about the

foodstuff for next day.” one more 14-year-old orphaned girl who lived in an orphanage for four years expressed her unhappiness over residing in the orphanage. She criticized the poor quality conditions of the orphanage and poor quality of services. She stated that I don't like the clothes provided here. . If given a chance, I would not mind leaving because living here is no less than imprisonment. The most of children were glad in the children's home because they were able to access essential facilities other than there were a small number children's of who found it difficult to live in the poor quality conditions of the orphanage.

Psychological troubles :-

The most of children were found to be facing one or the psychological issue as listed below.

i. Hopelessness and anxiety :

Research exposed that the majority of children felt unhappy and depressed due to their stay in the orphanage and also due to parental bereavement.

“One 17-year-girl stated that I was much younger when, my mother was passed away. My father was alcoholic dropped me in the orphanage, and it feels bad to live here. But I had no choice.

A 12-year girl before joining this orphanage, I used to live on streets sad, depressed and scared until child line rescued me and shifted me here. After coming here, I never had to stress about fulfilling my daily necessities.

ii. Lack of self confidence and purpose :-

Children in orphanages reported low levels of self-confidence and lacked motivation in life. The most of children felt they were valueless and good for nothing. One thirteen year old boy who lived there since six years stated that, “When I compare myself to my peer group I feel dissatisfied about how unpleasant my life has turned out to be. I have nothing; I every time wish life could be a slight improved.

Accordingly all such children, there were a number of who thought they were no less at par than any other children their age. They supposed that the education provided at schools would help them get an improved life and bright future. They assumed that understanding of orphanage would help them become a strong and better person just the once they age out of the orphanage.

iii. Lonesomeness and defenselessness :-

During detail interviews of participants showed that the majorities of them were feeling alone and often felt dependent. Two real sisters described (13-year-old and 11-year-old) described that, “We feel we are a burden on others. There is no one concerned to know how was our day at school or how we are feeling. Nobody bothers concerning us.” If we get a trouble we attempt and resolve it

ourselves because we do not have any person to assist us. Other children's also express a same opinion that we have no one to share our troubles. We cannot inform caretakers they may feel snubbed. Here is not anything to hold on to or something that is our personal. On the opposing, there were children who enjoyed being with other inmates and poured their heart out to them.

iv. Love and belongingness :-

Finding also showed that due to parental bereavement children were longing for love and belongingness particularly the younger ones; they would not be aware of why they ended up living in an orphanage. A 14-year-old child described that I feel why the God did this to me. Another thirteen year old girl said that "I frequently see my mother in dreams. I miss my parents. On the other side, some children's were still little happy because other inmates had become their family and they cared for each other. A 17 year old girl described that "I am grateful that I got to live here at least I am not wandering on streets. I have made lots of best friends here, and now this is my only family." The most of children described that they still miss their parents and frequently have a difficulty falling asleep due to their reminiscences. Seeing other children's with parents often reminded them of their families.

Societal challenges :

i. Behavioral Problems :

The majority of the children reported troubles with behavior and lack of involvement. They were introverted and were less interactive and expressive outside the orphanage. A twelve-year-old girl described how she felt hesitation to interact with someone outside of the children's home: "I often prefer to interact with someone like me. A 16-year-old boy stated that I never feel comfortable while chatting to other students at school. I feel they will make fun of me." At any time I would give my judgment on anything I would be made fun of, and other students will laugh at me. At present I never express myself at school to avoid humiliation. Emotional disorders were also reported amongst participants. It is observed that the majority of the children reported that they were happy with inmates of the orphanage but due to the provision of transfer of children's from one orphanage to other children avoided interacting with newcomers.

ii. Lack of supervision and advocacy :

The most of orphanage reported that they lack guidance and advocacy. While children were going to school, they did not be acquainted with what to do next or what they will do once they go out of the orphanage. A fifteen year-old girl stated that, "I am in 10th class but I had no clue about further studies. I want to know from you that how one could take up different courses and continue the study." A fourteen-year-old boy unhappily explains "We do not have anyone to direct us about future or tell us what is good or bad for us"

iii. Segregation :

Children's staying in orphanages often feel segregated and rejected by own people. These depressed children enter children homes which in no ways can change familial love and care. One thirteen year-old girl described how his relatives turned their back on her– "I used to stay in a joint family with my parents, grandparents and uncle, aunt and cousins. Then my mother passed away, and my father also left me. My uncle and aunt looked after me, but a few months later they said they couldn't keep me anymore. Twomore twelve and sixteen years-old girls remembers how their parents rejected them that time they were extremely little when our parents left us as we are were girls. According to our parents we were burden on them and they wanted a boy. These statements prove how orphanage feel socially disowned particularly those who were left at the orphanage by their parents and relatives.

iv. Recognition and approval :

So many of the times orphanages have to experience stigmatization by community. A depressed thirteen year old girl replied after my mother's death my father got remarried for the second time. But she never accepted me she often taunted me and called me by mean names. Even my step brother and sister use to call me bad words. I was not allowed to attend any auspicious function in the family. The majority of the children described even the children's studying in our class do not behave well with us. They don't consider us as their friends. They think that we are orphans; we don't parents so we are dirty. They feel that if they consider us as their friends then they will also become dirty.

Security :

These orphanages live a stressful life. They always think about that once they go out of orphanage so what will be their future? Nobody will take care them. They are likely to slip into poverty. A seventeen year-old girl responded very soon I will be going out of the orphanage, but I have nothing to secure my future neither a very high education nor any better job. Orphanages believed that their future is quite insecure. They often felt there is no one to guide for them if something went incorrect.

v. Segregation :

It was the very common dilemma of children living in orphanage. The majority of orphanages felt that they were free enough to mingle with community outside the orphanage. A twelve year-old child stated that I don't want to be here like this because I feel I'm trapped here. I want to get to out of here and see the outside world. The majority of the orphanages stated that we experienced disconnect from the outside world. Sometimes we become exasperating. We want to interact with other people. Orphanages responses showed that they felt left out and isolated from in the orphanage.

Coping strategies :-

Orphanage used diverse coping strategies to deal with psychosocial issues they faced on a daily basis which is given below as following :

i. Meditation as a coping strategy :

The majority of the orphanages reported that whenever they are anxious or sad about something they prayed to the God. Children's said that they frequently complained to the God about the hardships of life and felt better. A fourteen year old girl said I think God has given me troubles so he would help me get the ways to reach the solution and turn into a better human being.

ii. To prevent something from being expressed feelings :

Suppression happens when any one actively push his/her uncomfortable thoughts, feelings or memories out of consciousness. It was found that while the majority of the orphanage yearned for their parents and family, some considered that actively suppressing feelings and forgetting about troubles associated with parents is the key to psychological recovery and happiness. A sixteen year-old girl stated if I think about my family members they would never be forgotten. Therefore I endeavor not to think or talk about them so that I can live calmly. It is difficult but not impossible.

iii. Switch tasks :

While we may want to concentrate o particular task, some time we get stuck and our brain needs something fresh to focus on. Try to switching fresh to focus on. Various orphanages reported that whenever they felt down, they tried to concentrate on something else like any activity which made them cheerful like playing with other inmates, studying, and watching television or simply by going to sleep.

iv. Substance misuse as a coping strategy :

A number of older children accepted that many times they smoked and chewed tobacco to avoid tension and to feel better. Some other reported that they often used pain relieving balms as inhalants to relieve tension and anxiety.

v. Self-recrimination as a coping strategy :

These practices were more common among younger children or those who were new to the atmosphere of the orphanage they often sit alone, cry a lot, skip meals and isolate themselves which was harmful to their wellbeing.

vi. Misconduct with others :

A few children accepted that whenever they are stressed, they get irritated very easily on small things and felt agitated and therefore, took out their anger on fellow children and sometimes even on the caregivers.

vii. Detachment coping strategy :

In some cases children's detach from their emotions in response to trauma and stress as a means of self care. This is a willing step to that children's to avoid feeling overwhelmed and crumbling pressure. In orphanage several children also reported that to keep the emotions at bay they try not to be emotionally attached to people around them. They feel that detachment from others would save and secure them from getting hurt.

DISCUSSION AND CONCLUSION :-

This paper focuses on the psychosocial issues and needs of children living in orphanage in Udaipur. The current research also tries to expose the coping strategies used by orphanage for improvement. The results might provide facts and help Govt. and NGO to identify the unattended psychosocial troubles of children and direct them to deal with these troubles. Research findings exposed that the orphanages provided a higher degree of material support compared to psychosocial support services, such as emotional or counseling assistance. It was found that children had access to all the necessities of life like food, clothing, and shelter. They were able to attend school and get medical aids when needed. Children were grateful to receive these facilities in orphanages because previously they were not able to bear expenses of these facilities. Sufficient provision of basic services and facilities relieved orphanages from their daily sufferings. Despite all hardships, children were confident that the education received at the orphanage would help them fight all odds of life.

REFERENCES :-

1. Unicef. The state of the world's children 2015 executive summary: Re-imagine the future innovation for every child. New York: United Nations Children's Fund; 2014 Nov [cited 2017 Mar 18]. Available from https://www.unicef.org/publications/files/SOWC_2015_Summary_and_Tables.pdf
2. Unicef. The state of the world's children 2016: A fair chance for every child. New York: United Nations Children's Fund; 2016 Jun [cited 2017 Mar 18]. Available from https://www.unicef.org/publications/files/UNICEF_SOWC_2016.pdf
3. MoWCD. 2010-2011 annual report of the Ministry of Women and Child Development. New Delhi: Ministry of Women and Child Development, Government of India; 2011 [cited 2017 Mar 20]. Available from <http://wcd.nic.in/sites/default/files/AR2010-11.pdf>
4. MoWCD. 2016-2017 annual report of the Ministry of Women and Child Development. New Delhi: Ministry of Women and Child Development, Government of India; 2017 [cited 2017 Mar 20]. Available from http://wcd.nic.in/sites/default/files/FINAL%20WCD_AR_English%202016-17.pdf
5. Cluver L, Orkin M. Cumulative risk and AIDS-orphanhood: Interactions of stigma, bullying, and poverty on child mental health in South Africa. Soc Sci Med. 2009; 69(8):1186-1193.

6. Skinner D, Mfecane S. Stigma, discrimination and its implications for people living with HIV/AIDS in South Africa. SAHARA J. 2004;1(3):157-164.
7. Ogina TA. The use of drawings to facilitate interviews with orphaned children in Mpumalanga province, South Africa. S Afr J Educ. 2012;32(4):428-440.
8. Killian B, Durrheim K. Psychological distress in orphan, vulnerable children and nonvulnerable children in high prevalence HIV/AIDS communities. J Psychol Afr. 2008;18(3):421-429.
9. Zhao G, Li X, Fang X, Zhao J, Yang H, Stanton B. Care arrangements, grief and psychological problems among children orphaned by AIDS in China. AIDS Care. 2007;19(9):1075-1082.
10. Chipungu SS, Bent-Goodley TB. Meeting the challenges of contemporary foster care. Future Child. 2004;75-93.
11. Han T, Li X, Chi P, Zhao J, Zhao G. The impact of parental HIV/AIDS on children's cognitive ability in rural China. AIDS Care. 2014;26(6):723-730.
12. Kumar A. AIDS orphans and vulnerable children in India: Problems, prospects, and concerns. Soc Work in Public Health. 2012;27(3):205-212.
13. Lassi ZS, Mahmud S, Syed EU, Janjua NZ. Behavioral problems among children living in orphanage facilities of Karachi, Pakistan: Comparison of children in an SOS Village with those in conventional orphanages. Soc Psych PsychEpid. 2011;46(8):787-796.
14. Naqshb MM, Sehgal R, ul Hassan F. Orphans in orphanages of Kashmir and their psychological problems. Int NGOJ. 2012;7(3):55-63.
15. Sweeting H, West P, Richards M. Teenage family life, lifestyles and life chances: Associations with family structure, conflict with parents and joint family activity. Int J Law Policy Family. 1998;12(1):15-46.
16. Atwine B, Cantor-Graae E, Bajunirwe F. Psychological distress among AIDS orphans in rural Uganda. Soc Sci Med. 2005;61(3):555-564.
17. Cluver L, Gardner F, Operario D. Psychological distress amongst AIDS-orphaned children in urban South Africa. J Child Psychol Psychiatry. 2007;48(8):755-763.
18. Mehta N. Child protection and juvenile justice system. Mumbai: Childline India Foundation; 2008 [cited 2017 Mar 26] Available from <http://www.childlineindia.org.in/pdf/cp-jj-cnep.pdf>.
19. MoWCD. Juvenile justice (care and protection of children) act, 2015. New Delhi: Ministry of Women and Child Development, Government of India; 2016 [cited 2017 Mar 26]. Available from <http://www.indiacode.nic.in/acts-in-pdf/2016/201602.pdf>.
20. Skinner D, Davids A. (Eds). Multiple vulnerabilities: Qualitative data for the study of orphans and vulnerable children in South Africa. Cape Town: Human Sciences Research Council Press; 2006.
21. Tadesse S, Dereje F, Belay M. Psychosocial wellbeing of orphan and vulnerable children at orphanages in Gondar Town, North West Ethiopia. J Public Health Epidemiol. 2014;6(10):293-301.
22. SOS Children's Villages. India now home to 20 million orphans. Canada: SOS Children's Villages; 2011 [cited 2017 Apr 1]. Available from <https://www.soschildrensvillages.ca/india-now-home-20-million-orphans-study-finds>

23. Census of India. Provisional population totals census 2011. New Delhi: Office of the Registrar General and Census Commissioner of India; 2011.
24. United Nations. The world's cities in 2016. New York: Department of Economic and Social Affairs, United Nations; 2016 [cited 2017 Apr 7]. Available from http://www.un.org/en/development/desa/population/publications/pdf/urbanization/the_worlds_cities_in_2016_data_booklet.pdf.
25. Parks C. The most dynamic cities of 2025. Washington, D.C.: Foreign Policy Group; 2012 Aug [cited 2017 Apr 7]. Available from <https://foreignpolicy.com/2012/08/07/the-most-dynamic-cities-of-2025/>.
26. Kaur R. Issue of migration and migrants in Delhi. New Delhi: Maps of India; 2014 Dec [cited 2017 Apr 10]. Available from <http://www.mapsofindia.com/myindia/cities/issue-of-migration-and-migrants-in-delhi>.
27. National Crime Records Bureau. Crime in India 2015 Statistics. New Delhi: National Crime Records Bureau, Ministry of Home Affairs, Government of India; 2016 [cited 2017 Apr 15]. Available from <http://ncrb.nic.in/StatPublications/CII/CII2015/cii2015.asp>
28. Nyamukapa CA, Gregson S, Wambe M, Mushore P, Lopman B, Mupambireyi Z, et al. Causes and consequences of psychological distress among orphans in eastern Zimbabwe. *AIDS Care*. 2010;22(8):988-996.
29. Cluver L, Gardner F, Operario D. Poverty and psychological health among AIDS orphaned children in Cape Town, South Africa. *AIDS Care*. 2009;21(6):732-741.
30. Gilborn LZ, Nyonyintono R, Kabumbuli R, Jagwe-Wadda G. Making a difference for children affected by AIDS: Baseline findings from operations research in Uganda. New York: Population Council; 2001.
31. Govender K, Reardon C, Quinlan T, George G. Children's psychosocial wellbeing in the context of HIV/AIDS and poverty: A comparative investigation of orphaned and non-orphaned children living in South Africa. *BMC Public Health*. 2014;14(1):615.
32. Sengendo J, Nambi J. The psychological effect of orphanhood: A study of orphans in Rakai district. *Health Transit Rev*. 1997;7:105-124.
33. Bhat NM. A study of emotional stability and depression in orphan secondary school students. *International Journal of Educational and Psychological Researches*, 2014;3(2):95-100.
34. Zhao G, Li X, Kaljee L, Zhang L, Fang X, Zhao J, et al. Psychosocial consequences for children experiencing parental loss due to HIV/AIDS in central China. *AIDS Care*. 2009;21(6):769-774.
35. Barber BK, Stolz HE, Olsen JA, Collins WA, Burchinal M. Parental support, psychological control, and behavioral control: Assessing relevance across time, culture, and method. *Monogr Soc Res Child*. 2005;70(4):i-147.
36. Desforges C, Abouchaar A. The impact of parental involvement, parental support and family education on pupil achievement and adjustment: A literature review Nottingham: Department of Education and Skills Publications; 2003. Report No.: 1 84185 999 0.
37. Crenshaw DA, Garbarino J. The hidden dimensions: Profound sorrow and buried potential in violent youth. *J Humanist Psychol*. 2007;47(2):160-174.
38. Holahan CJ, Valentiner DP, Moos RH. Parental support and psychological adjustment during the transition

- to young adulthood in a college sample. *J Fam Psychol.* 1994;8(2):215.
39. Garvin MC, Tarullo AR, Van Ryzin M, Gunnar MR. Post-adoption parenting and socio-emotional development in post-institutionalized children. *Dev Psychopathol.* 2012;24(01):35-48.
 40. Tarullo AR, Bruce J, Gunnar MR. False belief and emotion understanding in post-institutionalized children. *Soc Dev.* 2007;16(1):57-78.
 41. Pilapil ACD. Unfolding the psychological well-being of orphans: A qualitative study of Filipino children in an orphanage. *Int J Human Soc Sci Res* 2015;3(3):404-415.
 42. Bray R. Predicting the social consequences of orphanhood in South Africa. *Afr J AIDS Res.* 2003; 2(1):39-55.
 43. Shumba J, Moyo G. Counseling needs of orphaned children: A case study of Harare metropolitan children. *Mediterr J Soc Sci.* 2014;5(11):145.
 44. Howard B, Matinhure N, McCurdy SA, Johnson CA. Psychosocial disadvantage: Preparation, grieving, remembrance and recovery for orphans in eastern Zimbabwe. *Afr J AIDS Res.* 2006;5(1):71-83.
 45. Hutchinson E. The psychological well-being of orphans in Malawi: “Forgetting” as a means of recovering from parental death. *Vulnerable Child Youth Stud.* 2011;6(1):18- 27.
 46. Ribbens McCarthy J. ‘They all look as if they're coping, but I'm not’: The relational power/lessness of ‘youth’ in responding to experiences of bereavement. *J Youth Stud.* 2007;10(3):285-303.
 47. Ellis J, Dowrick C, Lloyd-Williams M. The long-term impact of early parental death: Lessons from a narrative study. *J R Soc Med.* 2013;106(2):57-67.

Postal Address :

Dr. Bhavna Devi

Assistant Professor at Manikya Lal Verma Shramjeevi Evening College, Near Town Hall link road
Udaipur , Pin no. 313001 , Mob. No 8219565090, Email I'd is bhavnarana@gmail.com



पितृपक्ष में गया महात्म्य : एक अध्ययन

पूनम कुमारी

संस्कृत शोधार्थी, जनार्दन राय नागर राजस्थान
विद्यापीठ (डीम्ड-टू-बी) विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

प्रस्तावना :-

भाद्रपद महीने की पूर्णिमा से अश्विन कृष्ण पक्ष अमावस्या के सोलह दिनों को पितृ पक्ष कहा जाता है। पितर का अर्थ पालन या रक्षण करने वाला होता है। इस समय पर पितृ चाहे वह किसी भी रूप में अथवा किसी भी लोक में हों, पितृ पक्ष के समय अपनी तिथि पर पृथ्वी पर आते हैं। श्रद्धा के साथ जो भी उनकी तृप्ति के लिए शुभ संकल्प और तर्पण किया जाता है, उसे पितृ सूक्ष्म रूप में आकर अवश्य ही ग्रहण करते हैं। अपनी तिथि के दिन पितृ सुबह सूर्य की किरणों पर सवार होकर आते हैं तथा अपने पुत्र पौत्र एवं वंशजों से अपेक्षा करते हैं कि उनको अन्न-जल प्रदान करें। ब्राह्मण को भोजन कराने तथा पितृ पक्ष में उन्हें जल देने से वह एक वर्ष के लिए तृप्त हो जाते हैं। इन सोलह दिनों में न तो कोई शुभ कार्य किया जाना चाहिए और न ही कोई भी नई वस्तु खरीदनी चाहिए।

योग गुरु सुरक्षित गोस्वामी कहते हैं कि इस समय पर पितृ यमलोक से आकर हमारे घर में वास करते हैं, और सोलह दिनों तक अपना-अपना भाग लेकर ब्राह्मडीय ऊर्जा के साथ वापस चले जाते हैं। इस प्रकार से व्यक्ति अपने पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है।

ब्रह्माण्ड के दक्षिण दिशा में स्थित पितृलोक में निवास करने वाले पितृ केवल और केवल श्रद्धा और भाव के भूखे होते हैं। पितृ पक्ष में हमारे पास श्राद्ध करने के लिए कुछ भी न हो तो दोपहर के समय दक्षिण दिशा की ओर मुख करके जल दे दें या फिर उनकी याद में आंसू ही बहा दें श्राद्ध हो जायेगा। पितृ पक्ष को महालय एवं श्राद्ध पक्ष के नाम से जाना जाता है।

पुराणों के अनुसार कहा गया है कि मृत्यु के देवता यमराज पितृ पक्ष में जीव को मुक्त कर देते हैं, जिससे वह जीव अपने स्वजनों के पास जाकर श्राद्ध एवं तर्पण ग्रहण कर सकें। मांसाहार एवं शराब को पितृ पक्ष में पूरी तरह वर्जित माना गया है। पितृ पक्ष का महात्म्य उत्तर एवं उत्तर पूर्व भारत में अधिक है। महाराष्ट्र में इसे पितृ पंधरवडा, तमिलनाडु में आदि अमावसाई तथा केरल में करिकडा वावुबली के नाम से जाना जाता है। श्राद्ध को स्त्री या पुरुष कोई भी कर सकता है श्रद्धा से कराया गया ब्राह्मण को भोजन तथा पवित्रता से किया गया जल का तर्पण ही श्राद्ध का आधार माना जाता है अधिकतर लोग श्राद्ध एवं तर्पण घर पर ही करते हैं।

भारतीय धर्मग्रंथों के अनुसार मनुष्य पर प्रमुख तीन ऋण माने गये हैं – पितृ ऋण, देव ऋण, ऋषि ऋण।

इनमें से पितृ ऋण सर्वोपरि ऋण माना गया है। पितृ ऋण में पिता के अतिरिक्त माता एवं वे सब बुजुर्ग सम्मिलित हैं, जिन्होंने हमको अपना जीवन धारण करने एवं उसका पूर्णरूप से विकास करने में सहयोग दिया।

पितृपक्ष में हिन्दू लोग मन, कर्म तथा वाणी से संयम का पालन करते हैं, और मृत माता-पिता का श्राद्ध करते हैं। श्राद्धों में भी गया श्राद्ध का अपना विशेष महत्त्व है। वैसे तो इसका शास्त्रीय समय निश्चित है किन्तु 'गया सर्वकालेषु पिण्डं दधाद्विपक्षणं' बोलकर पिंडदान करने की अनुमति प्रदान की गयी है।

“एकैकस्य तिलैर्मिश्रांस्त्रींस्त्रीन् दद्याज्जलाज्जलीन्।

यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति।”

अर्थात् अपने पितरों को जो तिल-मिश्रित जल की तीन-तीन अंजलियाँ प्रदान करते हैं, इससे इनके जन्म से लेकर तर्पण तक के सारे पापों का नाश हो जाता है। हिन्दू धर्म दर्शन के अनुसार कहा गया है कि जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी निश्चित है। कुछ विरलो को ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। पितृपक्ष में पिता पक्ष की तीन पीढ़ी एवं माता पक्ष के पूर्वजों के लिए तर्पण किया जाता है। इन्हें ही पितर कहा जाता है। दिव्य पितृ दर्पण, देव तर्पण ऋषि तथा दिव्य मनुष्य तर्पण के पश्चात् ही स्व पितृ तर्पण किया जाता है।

गया माहात्म्य :-

पौराणिक कथाओं के अनुसार भस्मासुर के वंश में ही गयासुर नाम का एक दैवीय दानव था। जिसने कठिन तपस्या करके ब्रह्माजी से आशीर्वाद मांगा था कि उसका शरीर देवताओं की भाँति पवित्र हो जाये और उसके दर्शन करने मात्र से जीवन को पापों से मुक्ति मिल जाये। इस वरदान के बाद सब कुछ विपरीत मिल जाये। इस वरदान के बाद सब कुछ विपरीत होने लगा और स्वर्गलोक में लोगों की संख्या बढ़ने लगी। इससे बचने के लिए देवताओं ने एक पवित्र स्थल की मांग गयासुर से की जिस जगह पर यज्ञ किया जा सकें। तब गयासुर ने अपना स्वयं का शरीर ही देवताओं को यज्ञ के लिए दान दे दिया। गयासुर जब धरती पर लेटा तो उसका विशालकाय शरीर पाँच कोस में फैल गया। इसके बाद से ही इस जगह को गया के नाम से जाना जाता है।

श्राद्ध कर्म व पिंडदान करने के लिए देशभर में 55 स्थानों को महत्वपूर्ण स्थान माना गया है। लेकिन उसमें भी बिहार गया का स्थान सर्वोपरि माना है। इसको विष्णु का नगर एवं मोक्ष स्थली के नाम से भी जाना जाता है। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार जो श्रद्धालु गया तीर्थ में जाकर फल्गु नदी (निरंजना) के तट पर बालु का भी पिंडदान करते हैं उसे भी चावल के पिंडदान के बराबर माना जाता है। उनके 108 कुल तथा 7 पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है। गया तीर्थ में स्वयं भगवान श्री हरि विष्णु पितृ देवता के रूप में विराजमान रहते हैं। इसलिए इसे पितृ तीर्थ भी कहा जाता है। गया की इसी महत्ता के कारण यहाँ लाखों लोग हर वर्ष अपने-अपने पूर्वजों का पिंडदान करने आते हैं। यहाँ पिंडदान करने के बाद कुछ शेष नहीं रहता है और व्यक्ति पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है। यहीं पर भगवान श्रीराम और माता सीता ने राजा दशरथ की आत्मा की शांति के लिए पिंडदान किया था। कौरवों ने भी इसी स्थान पर श्राद्ध कर्म किया। यहाँ पर पितृ पक्ष के दौरान एक मेला भी लगता है, जिसे पितृ पक्ष मेला कहा जाता है। गया तीर्थ हिन्दुओं के साथ-साथ बौद्ध धर्म के लोगों का भी पवित्र स्थल है।

निष्कर्ष :-

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पितृपक्ष में अपने-अपने पूर्वजों की मृत्यु तिथि के अनुसार

उनका श्राद्धकर्म अवश्य किया जाना चाहिए। जो लोग पितृ पक्ष में पितरों की तीन पीढ़ियों का श्राद्ध कर्म एवं तर्पण नहीं करते हैं उन्हें पितृदोष लगता है। श्राद्ध कर्म एवं तर्पण करने से उनकी आत्मा को शांति एवं तृप्ति मिलती है। जो लोग हर साल गया में जाकर अपने पितरों की आत्मा की शांति के लिए पिंडदान करते हैं। उससे खुश होकर पितृ उसके पूरे परिवार को आशीर्वाद देते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. पितृ तर्पण विधि – 'कुल भूषण' पं. रमादत्त शुक्ल, प्रकाशक – कल्याण मंदिर प्रकाशन, श्री चण्डीधाम, प्रयाग।
2. अथ तीर्थ श्राद्ध विधि: – नारायण प्रसाद उपाध्याय कौशिक, प्रकाशक – बाबू माधवप्रसाद शर्मा, वाराणसी (2006)
3. श्राद्धपद्धति: – केदारनाथ उपाध्याय कोठारी, प्रकाशक – बाबू माधवप्रसाद शर्मा, वाराणसी (2006)
4. श्राद्ध स्वरूप – हेरम्ब स्वरूप शर्मा, प्रकाशक – आयुर्वेद संस्कृत हिन्दी पुस्तक भण्डार, जयपुर (2023) ISBN - 9789392133329
5. महालय श्राद्ध पद्धति: – डॉ. बलराम पाण्डेय, प्रकाशक – चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी (2015)
6. श्राद्ध पिंडदान एवं गया – डॉ. राकेश कुमार सिंहा 'रवि', प्रकाशक एक्सप्रेस पब्लिशिंग एन इम्प्रिन्ट ऑफ नेशन प्रेस (2020) ISBN - 9781636699059
7. गया श्राद्ध पद्धति – पं. रामकृष्ण शास्त्री, प्रकाशक – गीता प्रेस, गोरखपुर (2022)
8. गरुड़ पुराणम् – कृष्णद्वैपनमहर्षिव्यास विराचितम्, सम्पादक डॉ. महेश चन्द्र जोशी, प्रकाशक चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, ISBN - 978-81-218-0368-7

पूनम कुमारी, संस्कृत शोधार्थी

पता – 26, आनंद विहार रोड़ नं. 2, टेकरी, उदयपुर (राजस्थान)

ईमेल – poonamdhakar305@gmail.com

मोबाइल – 8741870123

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gagan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

50

THE GAZETTE OF INDIA : EXTRAORDINARY

[PART III—SEC. 4]

तालिका- 2

शैक्षणिक/ शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसे: प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान/ अभियांत्रिकी/ कृषि/ चिकित्सा/ पशु-चिकित्सा/ विज्ञान संकाय	भाषा/ सामाजिक/ पुस्तकालय/ शिक्षा/ शिक्षा/ वाणिज्य/ अन्य संबंधित विधाएं	मानविकी/ कला/ विज्ञान/ शारीरिक प्रबंधन तथा
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र	
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)			
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :			
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12	
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10	
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05	
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10	
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08	
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य			
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03	
	पुस्तक	08	08	
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान- अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास			
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05	
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 www.bohalsm.blogspot.com

✉ grsbohal@gmail.com

☎ 8708822674

📞 9466532152